# सहेली

## हम से आप तक

वर्ष 3 अंक 1 | जुलाई 1994 | सिर्फ निजी वितरण के लिए

## अनुक्रम

आबादी–क्या यह असली समस्या है ? 2

नई आर्थिक नीतिः नारी आन्दोलन के लिए चिन्ता के विषय 6

गर्भ निरोधक सूइयाँ–साम्राज्यवाद के गुप्त हथियार 8

भारत में महिला आन्दोलनों पर पांचवा राष्ट्रीय सम्मेलन : तिरुपति, 23-26 जनवरी 1994. 14

*तकरीबन 6 साल के बाद हम से आप तक फिर एक संवाद की कोशिश हम फिर शुरू कर रहे हैं। इस दौरान पूरे देश में ही नही बल्कि सहेली में कई बदलाव आए हैं। 1994 की सहेली 1988 की सहेली से बहुत ही कम समानता रखती है। पिछले चार साल से सहेली में संकट ग्रस्त महिलाओं की मदद का केन्द्र नही चल रहा और कम से कम एक और वर्ष यह काम फिर शुरू नहीं किया जाएगा। इस अंक में हम अपनी गतिविधियों के बारे में कम ही जानकारी रख रहे हैं हाँलाकि हमारी पत्रिका में पहले से कहीं अधिक पन्ने हैं। अगले अंको में यह जानकारी अवश्य शामिल होगी। आशा है कि हमारी पत्रिका की अब भी आपका पहले सा सहयोग मिलेगा।*

'सहेली' विमेन्स रिसोर्स सेन्टर, डिफेन्स कालोनी फ्लाई ओवर के नीचे, साउथ साइड,
नई दिल्ली-110024. टेलीफोन : 4616485.

# आबादी-क्या यह असली समस्या है ?

आबादी को समस्या मानने की विचारधारा पिछली शताब्दी में माल्थस नामक एक विचारक के जमाने में शुरु हुई। उसी का यह कहना था कि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन जुटा पाना सम्भव नहीं है। इतिहास ने तो माल्थस को गलत ठहरा दिया, आज भी भारत जैसे देश में खाद्यान की अपने–आप में कोई कमी नहीं है। पर माल्थस की दुहाई देने वालों ने जनसंख्या नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित रखा है। नव माल्थस वाद के अनुसार भूख, गरीबी, पर्यावरण इत्यादि सभी समस्याओं का सबसे बड़ा कारण है जनसंख्या। इसी समझ के साथ विश्व के तकरीबन 93 देशों में दमनकारी जनसंख्या कार्यक्रम चल रहे हैं जिनके तहत् गरीबों को खत्म किया जा रहा है गरीबी को नहीं, क्योंकि ये संसाधनो तक लोगों की पहुँच, बेरोजगारी इत्यादि समस्याओं की पूरी उपेक्षा करते है। असल में आज बढ़ती हुई असामनता ही गरीबी और भुखमरी का मूल कारण है। नीचे हम जनसंख्या सम्बंधी सवालों का फिर जवाब देंगे।

**क्या धरती बढ़ती हुई जनसंख्या के जीवित रहने के लिए साधन जुटा सकती है ?**

धरती पर पड़ रहे जनसंख्या के बोझ का सवाल आज वन विनाश व प्राकृतिक साधनों की कमी के कारण उठा है। इस सवाल से कुल मिलाकर एक ही निष्कर्ष निकाला गया है – एशिया, अफ्रीका व लातिन–अमरीका की आबादी पर फौरी रोक लगाना आवश्यक है। जनसंख्या नियंत्रण के प्रवर्तक जान बूझकर कई तथ्यों को नजर अंदाज कर देते हैं।

1. आज के सबसे बड़े अनुमान से भी विश्व की जनसंख्या 1500-1600 करोड़ की सीमा को पार नहीं करेगी। दूसरी ओर कुछ अनुमानों के अनुसार धरती 4000 करोड़ मनुष्यों को जीवित रख सकती है।

2. लातिन अमरीका, व अफ्रीका के कई देशों में आबादी का धनत्व बहुत कम है। एशियाई देशों में आबादी ज्यादा है पर फिर भी यूरोप के कई देशों से इन देशों में आबादी का धनत्व कम हैं। सिर्फ आबादी बढ़ने की दर ही इन पिछड़े हुए देशों में ज्यादा है।

3. पर्यावरण व संसाधनों के स्तर में गिरावट की समस्या का चित्रण ही इस ढंग से किया गया है जिससे पश्चिमी देशों की तरफदारी हो। जनसंख्या के प्रभाव को रहन–सहन के स्तर व तकनीकी के प्रभाव से हो रहे विनाश के बराबर माना गया है। पर वास्तव में विनाश में रहन–सहन के स्तर व मुनाफे के लिए प्राकृतिक सम्पदा के शोषण का प्रभाव कहीं ज्यादा है। विकसित देशों की आबादी तो विश्व का मात्र 22% है पर इन देशों में विश्व की 70% उर्जा, 75% धातुएँ, 85% लकड़ी, व 60% खाद्य पदार्थ की खपत होती है। इसी प्रकार विश्व के वायु मंडल में उगली जाने वाली तीन चौथाई कार्बन डाइऑक्साइड भी यहीं से आती है।

4. इसी प्रकार अविकसित देशों का समृध तबका भी खपत के लिए कहीं अधिक जिम्मेदार है। उदाहरण के लिए भारत के सबसे अमीर 1.5% लोग 75% साधनों की खपत करते हैं। यह बात परिवार के स्तर पर भी साफ हो जाती है 6 बच्चों वाला गरीब परिवार भी 1-2 बच्चों वाले उच्च मध्यम वर्गीय परिवार से खपत की तुलना में बड़ा ही फीका पड़ता है क्योंकि समृध लोग ही मोटर कार, बिजली के संयत्र, इत्यादि की भरपूर खपत करते हैं।

**ढांचागत बदलाव कार्यक्रम**
**(Structural Adjustment Program)**

विदेशी कर्जे के बोझ के तले दबे भारत पर अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक ने ढाँचागत बदलाव का कार्यक्रम थोपा है, जिसके तहत् भारत ने मुद्रा का अवमूल्यन, निजीकरण, निर्यात को बढ़ावा देने, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को न्योता देने, वेतन वृधि पर रोक लगाने, खाद्य पदार्थों के दाम बढ़ाने व सामाजिक सेवाओं में कटौती करने जैसे कदम उठाए हैं। पिछले तीन वर्षों से सरकारी सेवाओं में निरंतर कमी हो रही है और दूसरी ओर

विलासिता का सामान बेचकर मुनाफा देश के बाहर ले जाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सुविधा दी जा रही है।

आज स्वास्थय सेवाओं पर खर्च कम हो रहा है, राशन वितरण प्रणाली को खत्म किया जा रहा है, गरीबी बढ़ रही है, रोजगार कम हो रहा है। ऐसे में एक ओर तो बाल मृत्यु दर बढ़ेगी और दूसरी ओर बच्चों की श्रम में भागीदारी भी बढ़ेगी। बच्चों पर भावी निभर्रता भी बढ़ेगी क्योंकि बुढ़ापा ओर भी लाचार हो जाएगा। ये सभी ज्यादा बच्चे चाहने के कारण हैं और अगर वाकई जनसंख्या विस्फोट जैसी कोई बात है तो उसकी पूरी सम्भावना बन जाएगी।

**बड़े परिवार की चाह क्यों है ?**

जनसंख्या बढने के प्रमुख कारण हैं लोगों की कंगाली व उनकी उत्पादन व्यवस्था में भागीदारी न होना। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटिश राज स्थापित होने से पहले भारत की आबादी स्थिर थी, व 10-12 करोड़ तक सीमित भी थी। शोषण बढ़ने के साथ आबादी भी बढ़ी और यह बदलाव मृत्युदर घटने से पहले ही आ गया था।

स्वतंत्रता मिलने पर भी बढ़ोतरी जारी रही। क्योंकि स्वतंत्र भारत में भी अधिकांश नागरिक आर्थिक अधिकारों से वंचित रहे। बच्चे ही गरीबों की पूँजी है जो बचपन से लेकर जवानी तक माँ बाप के काम आते हैं। आज भी गरीब तबकों में बाल मृत्युदर इतनी अधिक है कि एक औरत को औसतन 6 बच्चे पैदा करने पड़ते हैं ताकि कम से कम एक लड़का जिंदा रहकर माँ बाप के बुढ़ापे की लाठी बने।

स्वतंत्र भारत में अपनाई गई विकास नीति ने असमानता को बढाया है और कई लोगों के हालात पहले से भी बदतर हो गए हैं। हाशिए पर जी रहे किसानों की भूमि छिनने से वे बड़ी संख्या में खेतिहर मजदूरों की कतार में शामिल हो गए हैं। इस वर्ग का जीना ही दूभर है और इनकी बाल मृत्यु दर भी सबसे अधिक है। खेतिहर मजदूरों के बच्चे उनपर बोझ नहीं है। आज भी इन बच्चों की श्रम में भागीदरी बढ़ रही है और वे अपने परिवार के जिंदा रह पाने में अहम् भूमिका निभाते हैं।

**सरकार की जनसंख्या नीति क्या रही है ?**

स्वतंत्रता मिलने के तुरंत बाद से ही हमारी सरकार जनसंख्या नियंत्रण की नीति अपनाए हुए है और उसे अंतर्राष्ट्रीय जनसंख्या नियंत्रण संस्थाओं व देश के समृध तबकों का पूरा सर्मथन प्राप्त है। इस कार्यक्रम को पहले परिवार नियोजन व बाद में परिवार कल्याण का नाम दिया गया।

पर जनसंख्या वृध्दि पर रोक लगाने के लिए न्यूनतम वेतन, भरपेट भोजन, स्वास्थय सेवाएँ, शिक्षा इत्यादि की जरुरत होने के बावजूद सरकार ने इन कार्यक्रमों के प्रति कोई कटिबध्दता नहीं दिखाई। इसके ठीक विपरीत गरीबों मे ज्यादा बच्चे होने को ही उनकी गरीबी का मुख्य कारण बताया गया। अतः परिवार नियोजन कार्यक्रम का लक्ष्य लोगों की मदद करना नहीं वरन् औरतों की प्रजनन शक्ति पर प्रत्यक्ष रोक लगाना बनाया गया। यहाँ तक कि औरतों की शिक्षा को भी इसलिए महत्व दिया गया कि शायद पड़–लिख कर वे कम बच्चे पैदा करें इसलिए नहीं कि शिक्षा आज हर नागरिक का अधिकार है।

इस जनसंख्या नीति का सबसे कम हानिकारक पहलू रहा है छोटे परिवार को बढ़ावा देना और सबसे घिनौना पहलू रहा है जबरन नसबंदी करना!

सरकार के अनुसार गरीब बगैर सोचे बच्चे पैदा करते हैं, इसलिए उसकी पूरी कोशिश यह रहती है कि उन्हें गर्भनिरोधक "स्वीकारने" के लिए "प्रेरित" किया जाय। बढ़ती आबादी की मूल सामाजिक समस्या का तकनीकी हल ढूंढा जा रहा है। निरोध के जमाने से लेकर आज सूइयों द्वारा ही इस समस्या का समाधान माना जा रहा है। सरकार लक्ष्य निर्धारण करके स्वास्थय कर्मियों को उन्हे पूरा करने के लिए मजबूर करती है। स्वास्थय कर्मी हर हथकंडा अपनाकर लोगों को गर्भ निरोधक अपनाने के लिए मजबूर करते हैं। ऐसे कार्यक्रम ने पूरी तरह लोगों, विशेषकर औरतों के स्वास्थय की अवहेलना की है।

जब प्रेरणा से फल नहीं निकला तो दण्ड देना शूरु किया गया–कभी तनख्वाह रोक ली गई तो कभी प्रमोशन। जबरदस्ती से चलाए गए इन कार्यक्रमों पर से लोगों का विश्वास पूरी तरह

से उठ चुका है, क्योंकि गर्भनिरोधक अथवा नसबंदी थोप देने के बाद सरकार के लिए औरत का कोई मूल्य नहीं रहता।

**औरतों के स्वास्थय के दम पर जनसंख्या नियंत्रण ?**

पहले पहल परिवार नियोजन कार्यक्रम में निरापद तरीके अपनाए गए। जैसे निरोध, डायफ्राम जैली इत्यादि। इनके साथ सीमित संख्या में नसबंदी ही उस जमाने के विकल्प थे। पर जब सरकार को मालूम हो गया कि लोग 1-2 बच्चों के सरकारी लक्ष्य को स्वीकारने को तैयार नहीं है तो ऐसे तरीकों को लाया गया जिनमें स्वेच्छा का अंश कम था जैसे कापर–टी, व खाने की गोलियाँ जिनमें कुछ खतरे भी निहित थे। इस पर भी जब बात न बनी तो लोगों की स्वेच्छा व स्वास्थय दोनों को ही तिलांजली दे दी गई। सूईयों व प्रतिरोपित गर्भ निरोधकों पर औरतों का वश नहीं चलता और ये लम्बे असर तक काम करते हैं – जैसे नॉरप्लांट 5 वर्ष तक।

**औरतों के स्वास्थय के दम पर जनसंख्या नियंत्रणः**

पहले तो परिवार नियोजन कार्यक्रम में अपेक्षाकृत निरापद तरीके अपनाए गए जैसे निरोध, डायफ्राम व शुक्राणु खत्म करने की दवा। इसके साथ–साथ सीमित रुप से नसबंदी ही उस दौरान के विकल्प थे। पर जब सरकार को मालूम हो गया कि लोग सरकारी लक्ष्यों को मानकर एक–दो बच्चों से खुश नहीं थे तो उसने खतरनाक तरीके भी प्रचलित करना शुरु किया जैसे कापर टी व खाने की गोलियाँ। जब पता चला कि औरतें गोलियों के मामले में भी कुछ नियंत्रण कर पाती है तो सरकार ने ऐसी तकनीकों का प्रचलन शुरु किया कि गर्भ नियंत्रण का फैसला ही औरतों के हाथ से जाता रहे, जैसे सूईयां व प्रतिरोपित हार्मोन। ये गर्भ निरोधक लम्बे समय तक असर रखते हैं जैसे नॉरप्लाट 5 साल तक काम करता है। दिखावे के लिए आज भी गर्भ निरोधकों का फायदा मातृ मृत्यु दर में कमी लाना व दो बच्चों के बीच अंतराल बढ़ाने वाले तरीकों का फायदा गिरती हुई बाल मृत्यु दर बताया जाता है।

औरतों को विकल्प देने के नाम पर एक से एक बढ़कर खतरनाक गर्भ निरोधक जारी किए जा रहे है और साथ ही जनसंख्या नियंत्रण पर परिवार कल्याण का आवरण चढ़ाने के लिए मातृ व शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम भी इसमे जोड़ दिया गया है। पर सच्चाई यह है कि विकल्प देने के बजाय औरत से गर्भनिरोधक विषयी विकल्प छीन लिया जाता है व साथ ही उसके स्वास्थ्य को हानि पहुँचाई जाती है। आज कई गर्भ निरोधक इतने खतरनाक हैं कि इनसे होने वाली बिमारियाँ मौजूदा मातृत्व सम्बंधी बिमारियों व मृत्युदर से ज्यादा ही है कम नहीं। अतः कुल मिलाकर औरतें यह चुन सकती हैं कि वे मातृत्व से बीमार होना चाहती हैं अथवा गर्भ नियत्रण से। आज भी न तो शरीर के हार्मोन प्रणाली के बारे में समुचित जानकारी है न ही रोग से लड़ने की प्रणाली के बारे में पर यह अवश्य पता है कि इनसे खिलवाड़ करने के परिणाम भयंकर हो सकते हैं, पर क्योंकि इन प्रणालियों का इस्तेमाल गर्भनियंत्रण के लिए भी हो सकता है बाकी दुष्प्रभावों को या तो नजर अंदाज कर दिया जाता है अथवा छोटा खतरा बताया जाता है।

**आने वाले समय की एक झलक**

अंतराष्ट्रीय जनसंख्या नियंत्रण संस्थाए व भारत सरकार आज जनसंख्या की समस्या से युद्ध स्तर पर जूझने को तैयार है। आज भोजन, घर, व रोजगार तो सरकार खुले क्षेत्र में छोड़ दे रही है जहाँ पर बाजार सर्वोच्च, है पर वह यह तय करना चाहती है कि किस व्यक्ति के कितने बच्चे हों।

ढाँचागत सुधार के तहत् सरकार ने स्वास्थय सेवाओं समेत सभी सामाजिक क्षेत्रों में खर्च कम कर दिया है पर "परिवार कल्याण" के मत में खर्च बढ़ता ही जा रहा है। अंतराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ आज ऐसे कई समझौते किए जा रहें हैं जिनके चलते गर्भनियंत्रकों के वितरण व स्वास्थय सेवाओं के बीच कोई नाता ही नहीं रहेगा। अब तो मातृ व बाल कल्याण की बात तक नहीं की जा रही क्योंकि इन समझौतों का फायदा है "न पैदा होने वाले बच्चे" – अर्थात् हमारे देश के नागरिक अब देश के लिए "आबादी" नहीं "बरबादी" हैं। ऐसे कानून बन रहे हैं जिनके चलते दो से ज्यादा बच्चे होने से लोगों को नुकसान उठाना होगा। न तो औरतों को तीसरे बच्चे के लिए अवकाश मिलेगा, न माँ बाप चुनाव लड़ पाएँगे, न उन्हें सरकारी नौकरी मिलेगी, न राशन। बाकि सच्चाइयों को नजर अंदाज करते हुए ऐसे छोटे परिवार के आदर्श को स्थापित करना एक खरतरनाक

कदम है। लड़के की चाह व साथ में परिवार छोटा रखने की इच्छा ने आज फिर बालिका वध व मादा भ्रूण हत्या जैसी घिनौनी प्रवृतियों को जन्म दिया है। ऐसे में जनसंख्या नियंत्रण तो हो जाएगा पर सामाजिक विकृतियाँ भी चरम सीमा पर पहुँच जाएंगी।

**क्या गर्भ नियंत्रण की आवश्यकता है ?**

लोगों ने हमेशा से ही अपनी प्रजनन क्षमता पर काबू पाने की कोशिश की है। दूर रहने, स्तनपान कराने, जड़ी बूटियों का इस्तेमाल, गर्भपात् जैसे तरीके अपनाएं है। साथ ही नए गर्भ निरोधकों का भी लोगों ने स्वागत किया है अगर वे उन्हें अपनी इच्छाएँ पूरी करने के लिए सहायक महसूस होते हैं।

ऐसे गर्भ निरोधको की अवश्य ही आवश्यकता है जो असरकारक हों पर साथ ही निरापद भी हों। इन्हें स्वेच्छिक रुप से उपल्बध कराना सरकार का कर्तव्य है। आज बाधाकारक तरीकों (जैसे निरोध, डायफ्राम, जैली) इत्यादि की आवश्यकता है वनिस्पत सूइयों व नॉरप्लाट को जो पूरे शरीर पर असर डालते हैं व डाक्टरों के वश में होते हैं। जीवन की अन्य जरुरतों के साथ–साथ औरतों को गर्भनिरोधकों की जरुरत है पर उनकी जरुरतों को पूरा करना ही सरकार का लक्ष्य होना चाहिए न कि जनसंख्या नियंत्रण। लोगों विशेषकर औरतों के हक में हमारा कहना है कि संसाधनों की बराबरी से उपलब्धि, जमीन का पट्टा, रोजगार की सुविधा, व न्यूनतम सुविधाएँ सामाजिक व आर्थिक बराबरी के लक्ष्य हैं। इनमें से किसी को भी जनसंख्या कार्यक्रम का अंग नही होना चाहिए।

SAP जिससे गरीबी बढ़ती है खत्म होना चाहिए। जनसंख्या नियंत्रण के सभी उपायों का विरोध होना चाहिए। भले ही उन्हे स्वदेशी अथवा विदेशी ऐजंसी लागू करे। सामाजिक सुरक्षा (जैसे इलाज की व्यवस्था, बुढ़ापे में भोजन व देखभाल इत्यादि) सबके लिए उपल्बध हो। लोगों की जरुरत अनुसार प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं सबको उपलब्ध हों। ऐसे सभी गर्भनिरोधक बन्द हो जो खतरनाक हैं व जिन्हें औरते इच्छा से लगवा–निकलवा नहीं सकती। लक्ष्य आधारित जनसंख्या नियत्रण कार्यक्रम समाप्त किये जाएं। निरापद गर्भ निरोधक एवं गर्भपात की सुविधाऐं उपलब्ध हों।

# नई आर्थिक नीतिः नारी आन्दोलन के लिए चिन्ता के विषय

पिछले वर्षों में भारत सरकार की नीतियों के परिणाम स्वरुप देश में औरतों पर आर्थिक और सामाजिक दबाव बढ़े हैं। देश की अर्थव्यवस्था में आमूल परिर्वतन यानि कि 'ढांचागत–समायोजन' के कार्यक्रम के अर्न्तगत, अर्न्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व–बैंक की हिदायतों के अनुसार तैयार आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की वजह से औरतें इन नीतियों से सबसे अधिक प्रभावित हुई है, और आने वाले वर्षो में भी उन्हें इन नीतियों से कुछ विशेष फायदा नहीं होने वाला है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और निजीकरण की बढ़ती प्रवृतियों, पर जोर दिया, समाज कल्याण से जुड़े क्षेत्रों में सरकारी खर्चे में कटौती, कुशलता और मुनाफे पर अत्यधिक जोर, संक्षेप में सारी आर्थिक प्रक्रियाओं का आधार समाजिक न्याय के स्थान पर मुनाफा बना देने से भारतीय समाज में पहले से व्याप्त अर्न्तद्वन्द और तेज होंगे।

सरकारी नीतियों के फलस्वरुप मुद्रा–सफीति की दर तो बढ़ी ही है, कीमतों में वृद्धि का असर समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग–अलग तरीके से हुआ है। इस वृद्धि का गरीब वर्गों पर सबसे बुरा प्रभाव हुआ है क्योंकि दैनिक उपयोग की वस्तुओं के दामों मे सबसे अधिक वृद्धि हुई है। दिसम्बर 1992 से अक्टूबर 1993 के दौरान अनाज की कीमतों में 12.7 प्रतिशत वृद्धि हुई, जबकि गेहूँ के दामों में 12 प्रतिशत बाजरा के दामों में 17 प्रतिशत और जौ में 25.9 प्रतिशत। दालों के दामों में 37.6 प्रतिशत और चने के दामों में 72.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सब्जियों के दामों में भी 40.8 प्रतिशत की बढ़ौतरी हुई, जिसमे प्याज की कीमतें 16.5 प्रतिशत और आलू की कीमतों मे 60.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। चीनी, खाण्ड–सारी और गुड़ की कीमतों मे भी क्रमशः 20.5 प्रतिशत, 22.3 प्रतिशत और 37.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषि उत्पादनों के निर्यात को बढ़ावा देने की नीतियों का प्रभाव सबसे अधिक समाज के गरीब तबकों पर पड़ता है क्यूँकि कृत्रिम अभाव के नाम पर कीमतों में जो वृद्धि होती है उसके फलस्वरुप कई उपभोग की वस्तुऐं गरीबों की पहुँच से बाहर हो जाती हैं। परिवार में आहार–वितरण से सम्बन्धित अध्ययन यह बताते हैं कि जब भी घर में खाने की वस्तुओं में कमी होती है तो इसका सबसे अधिक प्रभाव परिवार की औरतों पर पड़ता है क्यूँकि वे यह सुनिश्चित करने की कोशिश करती है कि परिवार के अन्य (पुरुष) सदस्यों को पूरा भोजन मिले।

इन नीतियों का श्रम–बाजार के ढ़ांचे पर काफी असर होगा। इस प्रकार की प्रवृतियाँ नजर भी आने लगी हैं। संगठित क्षेत्रों में रोजगार में कमी आने और असंगठित क्षेत्र रोजगार के अत्यधिक विस्तार से, औरतों के रोजगार में पिछले वर्षों में अवश्य वृद्धि हुई है, लेकिन काम करने की परिस्थितियाँ बहुत अधिक बिगड़ी हैं। अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र में अनियमित और असुरिक्षित प्रकार के काम में औरतों की संख्या बढ़ना और साथ ही उनकी बिगड़ती हुई आर्थिक परिस्थितियाँ, 'आर्थिक सुधारों' के नाम पर अपनाई जानी वाली नीतियों पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। असंगठित क्षेत्र में औरतों की अधिकता वास्तव में उनकी श्रम बाजार में असहाय स्थिति का सूचक हैं।

बिगड़ती हुई आर्थिक परिस्थितियों में, जबकि कमाने के लिए काम करने के दबाव बढ़ने लगे हैं, छोटी लड़कियों की परिवार में बच्चों की देखरेख की जिम्मेवारी बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरुप छोटी लड़कियों का स्कूल जाना बन्द होता जा रहा है। यह स्थिति भविष्य में उनको आर्थिक रुप से सक्षम बनाने की संभावनाओं को कमजोर कर रही है।

एक अन्य चिन्ता का विषय है प्रकृतिक संसाधनों का बेरोकटोक शोषण, जोकि सरकार द्वारा दी छूट की वजह से ही नहीं बल्कि निर्यात को बढ़ावा देने की नीतियों की वजह से भी हो रहा है। औरतें, जोकि परिवार की भोजन, लकड़ी, पानी इत्यादि की जरुरतों के लिए इन संसाधनों पर निर्भर करती है, इन नीतियों की वजह से बेहद मुश्किलों का सामना कर रही हैं।

सरकार के द्वारा सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में अलग करना और गैर–सरकारी संगठनों का बढ़ावा देने की नीति की वजह से भी कई मुश्किलें पैदा हो रही हैं। सरकार के द्वारा अपनी जिम्मेवारी को इन गैर–सरकारी संस्थाओं पर डाल देने से सरकारी नीतियों की दिशा पैसा देने वाली संस्थाओं की मर्जी

से निर्धारित हो रही है। इस पैसे और कर्जे के पैसे का एक बढ़ा हिस्सा स्वास्थय के नाम पर दिया जा रहा है जोकि वास्तव मं जनसंख्या नियन्त्रण पर खर्च किया जा रहा है। स्वैछिक क्षेत्र को भी इस दिशा में काम करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। यह सब न केवल औरतों की मूलभूत स्वास्थय की जरुरतों को अनदेखा कर के किया जा रहा है बल्कि इन जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों के माध्यम से अत्यन्त हानिकारक गर्भ–निरोधको को बढ़ावा दिया जा रहा है ताकि इनका उत्पादन करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को मुनाफा मिल सके। डन्कल प्रस्तावों और 'गैर' सन्धियों पर सरकारी सहमति से सरकारी नीतियों को गरीबों की जरुरतों से जोड़ने की संभावनाऐं और कमजोर पड़ गई हैं।

संक्षेप में, चाहे गर्भ–निरोधकों से जुड़ी नीतियाँ हों या सार्वजनिक वितरण प्रणाली से यदि इन नीतियों में कमजोर और गरीब वर्गों की जरुरतों के लिए कोई जगह नहीं है तो यह समाजिक न्याय की प्राप्ति के रास्ते में खतरा है। इसके अतिरिक्त सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा महिला संस्थाओं और मुद्दों को पैसा देकर आत्मसात् कर लेने से महिला आन्दोलन को खतरे अत्पन्न हुए हैं। यह एक गम्भीर चुनौती है और इन सरकारी नीतियों के विरुद्ध सामूहिक संर्घष की मांग करती है। यदि समाज में समाजिक न्याय की अभी कुछ भी अहमियत है तो औरतों का शोषण करने वाली नीतियों का रोकना जरुरी है।

■■■

# गर्भ निरोधक सूइयाँ—साम्राज्यवाद के गुप्त हथियार

अर्तराष्ट्रीय मुद्राकोष व विश्व बैंक द्वारा मनवाई गई शर्तों के तहत् ढाँचागत परिर्वतन के प्रोग्राम का असर हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी पर पिछले तीन सालों से स्पष्ट देख रहे है। हममे से अधिकांश को यह बात बखूबी मालूम है कि कैसे इन नीतियों के फलस्वरुप नौकरियाँ छिन रही हैं, दाम बढ़ रहे हैं, व सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही सार्वजनिक सेवाएँ सिमटती जा रही हैं, पर शायद हमें यह बात मालूम नहीं कि इन संस्थाओं ने प्रजनन के क्षेत्र में क्या कहर ढाया है। ढाँचागत परिर्वतन के तहत् थोपी जाने वाली शर्तों में से एक है आर्थिक स्वास्थय लाभ के नाम पर जनसंख्या नियंत्रण। इस शर्त का लोगों की जिंदगी को बेहतर बनाने से कोई मतलब नहीं, पर यह शर्त सुनिश्चित करती है कि हर हथकडा अपना कर किसी भी हाल में औरतों की प्रजनन क्षमता पर अंकुश लगाया जाय। विशेषकर ऐसे हालात में जब जनसंख्या वृध्दि की आग में घी का काम करने वाली शक्तियाँ जैसे बढ़ती मृत्युदर, सामाजिक असुरक्षा इत्यादि, देश में प्रभावी हो रही हैं। ढाँचागत परिर्वतन में व्यापार तो बाजार की माँग के हवाले कर दिया गया है पर सरकार यह अवश्य तय करना चाहती है कि लोगों के कितने बच्चे हों।

नाम के वास्ते तो जनसंख्या नियंत्रण के कार्यक्रम को परिवार–नियोजन का कार्यक्रम कहा जाता है पर बच्चों की संख्या का फैसला परिवार के हाथ में नहीं बल्कि सरकार द्वारा तय की गई सीमा पर निर्भर करते हैं। आज दो बच्चों की माँ अगर सरकार के सम्पर्क में आ जाए, भले वह अस्पताल जाएँ, अथवा मजदूरी माँगे या महज चुनाव ही लड़ना चाहे उसपर अवश्य नसबंदी कराने के लिए दबाव डाला जाएगा।

पिछले तीन दशकों से भारत सरकार का परिवार नियोजन कार्यक्रम जन विरोधी ताकतों के वश में रहा है। साठ के दशक मे अमरीका द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से जुड़ी शर्तों ने भारत सरकार को जनसंख्या नियंत्रण की नीति के रास्ते पर ला खड़ा किया। सरकार के जन विरोधी चरित्र को भी यह रास्ता पसंद आया क्योंकि गरीबी के लिए गरीबों को जिम्मेदार ठहराने वाली यह सोच सरकार के चरित्र पर पर्दा डाल सकती थी।

जनसंख्या नियंत्रण के लिए पहला हथियार रहा नसबंदी, हालाँकी तब भी गर्भ नियंत्रण के कई तरीके अपलब्ध थे। इसका तर्क असान था–कार्यक्रम का ध्येय कभी यह तो था नहीं कि इसकी मदद से लोग अपने प्रजनन सम्बंधी लक्ष्य हासिल कर सकते वरन् यह था कि लोग बच्चे पैदा करना बंद कर दें व जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आए। आपरेशन हो जाने पर उन ओरतों व मर्दों को लेकर सरकार की चिंता दूर हो जाती थी। पर अगर इसके विपरीत लोग निरोध, डायफ्राम इत्यादि जैसे अस्थायी तरीके इस्तेमाल करते तो प्रजनन क्षमता पर उनका नियंत्रण कायम रहता।

पर नसबंदी मात्र से सरकार जनसंख्या नियंत्रण नहीं कर पाई। नसबंदी कार्यक्रम में कई ज्यादतियाँ हुई कुछ सब को पता है, जैसे इमरजेंसी के दौरान जो कुछ हुआ, पर अधिकांश पर पर्दा डला रहा जैसे नसबंदी का निशान न दिखाने पर महिलाओं को मजदूरी न मिलना, अथवा महाजन के कर्जे की अदायगी के लिए नसबंदी कराकर पैसा पाना इत्यादि। पर जल्दी ही यह बात स्पष्ट हो गई कि नसबंदी कराने के लिए लोग अपना परिवार पूरा करने के बाद ही पहुंचते थे। साथ ही सरकार की आंखो में वे गर्भनिरोधकों का इस्तेमाल करने में गैर जिम्मेदार साबित हुए, क्योंकि उनके व्यक्तिगत लक्ष्य सरकार के लक्ष्य से मेल नहीं खाते थे और गर्भनियंत्रण उनकी प्राथमिकताओं में बहुत ऊँचा स्थान नहीं रखता था।

जनसंख्या वृध्दि की दर कम न कर पाने पर सरकार ने प्रजनन अवधि को कम करने व दूसरी ओर बच्चों के बीच अंतराल रखने के लिए तरीके ढूँढे। एक ओर तो सरकार की कोशिश यह रही कि लोग शादी व पहला बच्चा देर से पैदा करें, फिर बच्चों के बीच स्वास्थय के नाम पर कम से कम तीन वर्ष का अंतर रखे व जल्दी ही नसबंदी करा लें। ऐसे में अल्पकालिक गर्भनिरोधकों को कार्यक्रम में दोबारा महत्व दिया गया। और वह सरकार जो आज भी अधिकांश भारत–वासियों को गेहूँ–चावल के बीच चुनाव कर भरपेट खाना दिलाने में असमर्थ रही है– इस बात के लिए तैयार थी कि इन भूखी औरतों को दुनिया की नई

से नई गर्भनिरोधक तकनीकों में से एक को चुनने की सुविधा मिले। वैसे बात तो "चुनने की स्वतंत्रवता" की हो रही थी पर सच तो यह था कि गर्भ निरोधकों के बीच अब चुनने को कुछ रह ही नहीं गया था क्योंकि सिर्फ हार्मोन पर आधारित लम्बी अवधि तक असर रखने वाने गर्भनिरोधक ही उपलब्ध कराए जा रहे थे। इनकी खासियत यह है कि प्रभावी बने रहने के लिए औरत की मर्जी पर निर्भर नहीं हैं व कमोबेशी औरतो और उनके बच्चों के लिए अनजाने खतरे पैदा कर रहे हैं। "चुनने की स्वतंत्रता" का एक पहलू यह भी था कि औरते चुने, पर वे गर्भनिरोधक को चुने गर्भधारण को नहीं। नाना प्रकार के गर्भनिरोधक औरतों को उपलब्ध कराए गए, कृत्रिम हार्मोन इस्ट्रोजन व प्रोजेस्टोजन के अलग–अलग मिश्रणों से बने (कभी–कभी हार्मोन विरोधियों का भी इस्तेमाल किया गया) और इनको औरतों के शरीर में पहुँचाने के लिए अलग–अलग रास्ते भी अपनाए गए, खाने की गोलियों से शुरु कर, सूइयों, चमड़ी के अंदर रोपे जाने वाले कैप्सूल, योनि में रखे जाने वाले छल्लों, व नाक में छिड़की जाने वाली दवा तक, जिनका असर 2 महीने से लेकर 5 साल तक कायम रहता है।

60 के दशक में ही हार्मोन से बनी गोलियों और लूप/कॉपर–टी से शरीर को हो रहे नुकसान का काफी अंदाजा लग गया था और इसका व्यापक प्रचार भी हुआ, क्योंकि मुख्य रुप से इनका इस्तेमाल अमीर देशों की गोरी औरतों ने किया था। दवाओं पर हो रहे शोध का नफे से घनिष्ट सम्बंध होने के कारण सावधानी को ताक पर रख दिया गया था और इनका इस्तेमाल सिर्फ गर्भ नियंत्रण के लिए ही नहीं वरन् प्रजनन सम्बंधी हर बिमारी के लिए किया गया। यह स्पष्ट था कि इस्ट्रोजन व प्रोजेस्टोजन से बनी गोलियाँ गम्भीर बिमारियों की सौगात लेकर आई थी जिनमें शामिल थीं दिल व रक्तचाप की बिमारी, थक्के जमने की बिमारी, कैंसर, पाचय सम्बंधी गड़बड़ियाँ, भ्रूण पर विपरीत असर इत्यादि। इसी दौरान एक भयानक दुर्घटना प्रकाश में आई। डायइथाइल स्टिलबेस्टरॉल नामक इस्ट्रोजन आकस्मिक गर्भपात रोकने के लिए औरतों को दी गई। इसके पश्चात् पैदा हुई लड़कियों को किशोरावस्था में योनि द्वार का एक कैंसर हुआ जिससे पता लग गया कि हार्मोन से खिलवाड़ के नतीजे गम्भीर थे व उनका असर अगली पीढ़ी पर भी हो रहा था। पर अधिकांश डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने इसे नजर अंदाज कर दिया। ऊपर से बगैर जाँच पड़ताल के हार्मोनो के सभी गम्भीर दुष्प्रभावों को भी केवल इस्ट्रोजन के मत्थे मढ़ दिया।

इसी दौरान दो नई सूइयों का अविष्कार हुआ–जर्मनी की शेरिंग एजी नामक कम्पनी की बनाई नेट–एन व अमरीका की अपजॉन कम्पनी की बनाई डेपो प्रोवेरा जिनमें इस्ट्रोजन थी ही नहीं व गर्भ नियंत्रण सिर्फ प्रोजेस्टोन से हो रहा था अतः ये गोली खाने में अविश्वसनीय कही जाने वाली औरतों के लिए भी प्रभावी गर्भ निरोधक थे। इनका व्यापक रुप से औरतों की समस्याओं के लिए वरदान के रुप में स्वागत किया गया। परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए भी इनका इस्तेमाल बड़ा ही आसान था क्योंकि एक इंजेक्शन के बाद 2-3 महीने तक कार्यकर्ता निश्चिंत हो जाते। (डेपो प्रोवेरा का एक बड़ा इंजेक्शन भी था जो पूरे 6 महीने तक गर्भ नहीं ठहरने देता था)।

पर यह कहानी अब तीस साल पुरानी हो गयी। ये सूइयाँ इंजेक्शन संस्कृति से प्रभावित औरतों की जिंदगी में कोई जगह नहीं बना पाई (जैसे गरीब भारतीय औरतें) हर प्रकार की औरत, गरीब हो या अमीर, पढ़ी लिखी हो या अनपढ़, भारतीय हो या बाँगलादेशी, सभी ने इन सूइयों को एक स्वर से अस्वीकार कर दिया। सिर्फ जबरदस्ती की शिकार औरतें ही इन्हे लगवाती हैं जिन्हें दूसरे गर्भ निरोधक उपलब्ध नहीं होते अथवा जिन्हें शादी करने के पहले सूई लगवाने के लिए मजबूर किया जाता है।

इस अनुभव के बावजूद इन सूइयों को नए देशों में प्रचलित करने की हर कोशिश की जा रही है। हालाँकि नेट–एन और डेपो प्रोवेरा में कई अंतर हैं इनके शरीर पर होने वाले प्रभाव में कई समानताएँ भी हैं। ये प्रभाव भी दो स्तर पर होते हैं पहला वह जिसे औरतें तुरंत ही अनुभव करती हैं व सूईयों के उपयोग से जोड़ सकती हैं और दूसरा स्तर वह जो एक लमबे समय के बाद अपना असर डालता है व औरतें इस दुष्प्रभाव को सूई से जोड़ नहीं पाती हैं।

**दुष्प्रभाव जिन्हे औरते सूई के साथ जोड़ सकती हैं :** इन सूईयों से औरतों की माहवारी पूरी तरह गड़बड़ा जाती है। अगर किसी की माहवारी पूरी तरह बंद हो जाती है, तो किसी के हर समय खून रिसता है, व कई औरतों के इतना खून जाता है

कि उन्हें इसके लिए उपचार की आवश्यकता पड़ती है। हालांकि इनमें हार्मोन वही हैं जो खाने वाली गोलियों में भी होता है पर सभी सिर्फ प्रोजेस्टोजन से बने गर्भ निरोधकों का माहवारी पर यही असर होता है भले ही वह नॉरप्लांट हो, मिनोडिल अथवा इन्जेक्शन। साथ ही इन्जेक्शन की एक और खासियत है कि वे लम्बे समय तक असरकारक होते हैं। इनमें हार्मोन की मात्रा ज्यादा होती है व उनका खून में अनुपात बहुत ज्यादा होता है जिसके शरीर से निष्कासित होने में भी बड़ा समय लगता है। अतः दुष्प्रभाव भी लम्बे अर्से तक चलते हैं।

सूई लगवाने के बाद औरतों का शरीर फूल जाता है, चक्कर आते हैं, सरदर्द की शिकायत, थकान, भूख लगना अथवा अत्यधिक भूख लगना, वैवाहिक सम्बंधों में अरुचि, इत्यादि के लक्षण होते हैं। अगर वे बच्चे को स्तन पान करा रही है तो दूध की मात्रा व गुणवत्ता पर असर होता है। पेट व स्तनों को छूने से दर्द, नसों में गठन, घबराहट व उदासी की बिमारी, सूई से एलर्जी, हृदय रोग, खून में थक्के जमने की बिमारी भी हो सकती है। कुल मिलाकर डेपो–प्रोवेरा के निर्माता ने 78 दुष्प्रभावों को स्वीकार किया है व नेट–एन के सम्बंध में की गई शोध में भी तकरीबन इतने ही दुष्प्रभाव दर्ज हैं। ऐसा नहीं हे कि ये दुष्प्रभाव विरली ही औरतों को सहने पड़ते हैं विशेष रुप से माहवारी का गड़बड़ा जाना वजन में परिवर्तन व मानसिक अवस्था में बदलाव। नेट–एन के एक परीक्षण में पाया गया कि 10 में से 9 औरतों को साल में एक बार भी सही समय पर सही माहवारी नहीं हुई।

इतने दुष्प्रभावों के रहते इस बात में कोई आश्चर्य नहीं है कि सूई की ओर आर्कषित होने वाली औरतें पहली सूई तो लगवा लेती हैं पर फिर इनके पास भी नहीं फटकती हैं। सरकारी कार्यकर्ता औरतों को मुगालते में डालते हैं और बताते हैं कि धीरे–धीरे सब ठीक हो जाएगा व दूसरी सूई के लिए जरुर कुछ औरतों को **पटाने में** सफल हो जाते हैं, पर एक तिहाई औरतों के लिए एक सूई ही काफी है।

इनका बार–बार औरतों द्वारा अस्वीकृत किया जाना अप जॉन व शेरिंग (सूई बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों) के लिए रुकावट नहीं बना है। ये कम्पनियाँ उन देशों में सफलता पाती हैं जहाँ सरकारें जनसंख्या नियंत्रण के लिए हर हथकंडा अपनाने को तैयार है। वैसे भी ये कम्पनियाँ सूईयों को प्रचलित करवाने के लिए भ्रष्टाचार, झूठ हर रास्ते पर चलने को तैयार हैं।

**दुष्प्रभाव जिनसे औरतें अनभिज्ञ रहती हैं :**

माहवारी की स्वाभाविकता औरतों के शरीर व मानस की भलाई के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैसे तो गर्भावस्था में शरीर में भी काफी मात्रा में प्रोजेस्टोन रहती है पर यह स्वाभाविक है पर कृत्रिम रुप से दी गई प्रोजेस्टरोन में इसके कुछ ही गुण हैं। साथ ही हार्मोन का संतुलन व प्रभाव सिर्फ प्रजनन अंगो पर ही असर नहीं करता है वरन् दिमाग के कई केन्द्रों से भी सीधा सम्बंध रखता है। यह सवाल अपने आप में अहम् है कि क्या गर्भ नियंत्रण के लिए शरीर, दिमाग व मानस से इतना बड़ा खिलवाड़ तर्क संगत है भी या नहीं।

इन इंजेक्शनों के साथ एक बड़ा सवाल है, उनके इस्तेमाल से कैंसर होने का। वैसे तो सभी दवाओं में कुछ न कुछ दुष्प्रभाव होते हैं, पर उनका इस्तेमाल प्रायः एक छोटी अवधि के लिए कुछ बीमार लोगों द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत गर्भनिराधकों का इस्तेमाल एक व्यापक पैमाने पर, तंदरुस्त लोग अपनी युवावस्था में करते हैं। अतः इनके दीर्धकालिन प्रभाव जिनमें कैंसर भी शामिल है पर विशेष ध्यान दिया जाता है। नेट–एन व डेपो प्रोवेरा के विषय तें विवाद उठने के पहले सभी हार्मोन से बने गर्भ निरोधकों का व्यापक परीक्षण जानवरों पर किया जाता था, ताकि कैंसर की सम्भावना का सही मूल्यांकन किया जा सके। इसके लिए शिकारी कुत्तों, बंदरियों, चूहों की दो प्रजातियों का इस्तेमाल होता था। नेट–एन व डेपो प्रोवेरा से सभी जानवरों में कैंसर हुआ। पर इन्हें बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की इतनी पहुँच थी व उन्हें जनसंख्या नियंत्रण करवाने वालों का इतना समर्थन था कि इन इंजेक्शनों को अस्वीकृत करने के बजाय जानवरों को परीक्षण के लिए अनुपयुक्त ठहराया गया। यह सवाल किसी ने नहीं पूछा कि अगर ये जानवर अनुपयुक्त थे तो अब उन हार्मोनो का क्या होगा जो इन्हीं पर परीक्षण करके निरापद ठहराए गए थे। किसी ने यह भी नहीं पूछा कि अब भी कैंसर शोध के लिए इन जानवरों का इस्तेमाल क्यों किया जा रहा है। यहाँ तक कि खुद विश्व स्वास्थय संगठन ने भी जोश के साथ कहा कि जानवर के मॉडल उपयुक्त न होने के कारण कैंसर

सम्बंधी शोध सीधे तीसरी दुनिया की औरतों पर होने वाले असर से ही की जाय। माना कि हम अमीर देशों के नजरिए से जानवरों के ही बराबर है परन्तु विश्व स्वास्थय संगठन ने तो हद ही कर दी। उसने डेपो प्रोवेरा इस्तेमाल करने वाली औरतों पर शोध तो की और स्तनों में कैंसर भी पाया (यही बात जानवरों में भी पाई गई थी) पर यह कह दिया कि शोध की योजना सही नहीं थी। अर्थात् चाहे जो हो जाए डेपो प्रोवेरा निरापद है और अगर शोध में कुछ और फल सामने आता है तो शोध गलत है। डेपो प्रोवेरा के विरोध में बोलने वालों को सरे आम गलत ठहराया जाता है – और इसी श्रेणी में शामिल हैं औरतों के संगठन। ऊपर से अपजॉन को अब यह अधिकार दे दिया गया है कि वह सरेआम कहे कि डेपो प्रोवेरा निरापद है क्योंकि उसका इस्तेमाल कैंसर के इलाज के लिए भी किया जाता है। पर अगर यह बात विकिरण पर लागू की जाए तो देखिए कैसा अजीब निष्कर्ष निकलता है विकिरण से एक ओर तो कैंसर होता है और दूसरी ओर उसका इस्तेमाल कैंसर के इलाज के लिए भी होता है क्या उसे निरापद ठहराया जाता है और स्वस्थ्य लोगों को विकिरण लेने को कहा जाता है ?

दूसरा बड़ा खतरा इन सूइयों से है माँ के पेट में पल रहे बच्चे को अथवा दूध पीते बच्चे को। डेपो प्रोवेरा पर शोध से यह पता चला है कि माँ के पेट में रहते शिशु को अगर डेपो मिलता है तो उसके जीवित रहने की सम्भावना भी कम होती है और जन्म के समय उसका वजन कम होता है। साथ ही इन दोनों सूइयों के गर्भावस्था में गलती से दिए जाने से अथवा सूई फेल होने से जन्मे बच्चों के प्रजनन अंगो में विकलांगता की सम्भावना रहती है। इस बात की पुष्टि जानवरों में हुए शोध से भी हुई है। इसी प्रकार दूध पीते बच्चों की चर्बी की कोशिकाओं में हार्मोन मिले हैं। इन सूईयों को निरापद घोषित करते समय इस बात को पूरी तरह से नजर अंदाज कर दिया जाता है।

विकलांगता की सम्भावना देखकर अन्य बड़ी मात्रा में दी जाने वाली हार्मोन दवाओं पर प्रतिबंध भी लगाया जा चुका है। फिर गर्भनिरोधकों के साथ पक्षपात क्यों ? क्या परिवार नियोजन का लक्ष्य सुखी परिवार व स्वस्थ बच्चे नहीं हैं ? क्या पैदाइश के समय मौजूद विकलांगता से सुख बढ़ सकता है ?

इन दवाओं से माँ के दूध की रचना भी प्रभावित होती है। साथ ही इनके इस्तेमाल से औरतों में रोग से लड़ने की क्षमता भी कम होती है। कई विकसित देशों में धात्री माताओं के लिए इन सूइयों के उपयोग पर प्रविबंध है। भारत में शिशुओं के लिए माँ का दूध पोषण का लम्बे अर्से तक प्रमुख आधार रहता है। वैसे तो सरकार माँ का दूध बच्चों के लिए साफ व जरुरत के अनुसार सबसे उपयुक्त मानते हुए उसके प्रचलन को बनाए रखने की कोशिश करती है। साथ ही यह भी माना जाता है कि माँ का दूध बच्चे को बिमारी से लड़ने की शक्ति देता है। फिर आखिर पोषण के इस अमूल्य स्रोत को दूषित क्यों किया जा रहा है ? क्यों सरकार यह दावा कर रही है कि सूईयों को बच्चों के बीच अंतराल बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है ?

यह भी समझने की आवश्यकता है कि माहवारी के गड़बड़ाने के पीछे क्या छुपा हुआ है – जिसे सूइयों का असर माना तो जाता है पर यह कहकर टाल दिया जाता है कि यह मात्र असुविधा है दुष्प्रभाव नहीं। जब हम वैज्ञानिक दस्तावेजों को देखते हैं तो पाते हैं कि विशेषज्ञों को भी यह मालूम नहीं है कि माहवारी गड़बड़ाने की बजह क्या है।

**माहवारी तीन प्रकार से प्रभावित होती है**

रक्तस्राव बंद हो जाना अथवा अनियमित रुप से धब्बे लगना, अथवा बड़ी मात्रा में खून जाना। बढ़ा हुआ रक्तस्राव गम्भीर स्थिति पैदा करता है। अकेले न्यूज़ीलैंड के एक शहर के जनाना अस्पताल में औसतन हर सप्ताह इस शिकायत को लेकर डेपो प्रोवेरा लेने वाली एक औरत को भर्ती करना पड़ता है। इस तरह के रक्तस्राव का कोई इलाज भी नहीं है व ऐसी तकलीफ डेपो प्रोवेरा इस्तेमाल करने वाली 15% तक औरतों में पाई जा सकती है। इसका इलाज अंधेरे में तीर मारने सा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन तक के पास कहने को तरीका है – पहले इस्ट्रोजन की गोली दीजिए, उससे बात न बने तो इस्ट्रोजन की सूई दी जाए अगर उससे भी काम न चले तो बच्चेदानी की बार–बार सफाई कीजिए जब तक रक्तस्राव बंद न हो जाए। औरतों का तो यह भी अनुभत रहा है कि सफाई से काम न चलने पर आपरेशन से बच्चेदानी ही निकाल दी जाए – कैसी अंजीब "असुविधा" है।

बॉगलादेश में कई स्थानों पर नियम से डेपो प्रोवेरा के साथ–साथ गर्भनिरोधक गोलियाँ भी खाने को दी जाती हैं – इस उम्मीद से कि माहवारी ज्यादा न गड़बड़ाए। कई जगह तो बड़ी ही अजीब बात की जाती है–रक्तस्राव रोकने के लिए डेपो का एक और इंजेक्शन लगा दिया जाता है–इस उम्मीद से कि शायद दूसरे इंजेक्शन से माहवारी रोकने वाला असर हो जाए। कुल मिलाकर डाक्टरी प्रेक्टिस में इससे ज्यादा तर्कहीन उपचार शायद ही मिले। उपचार, तकलीफ चाहे जो भी हो डेपो प्रोवेरा को कार्यक्रम में शामिल रखना जरुरी है।

इसके साथ ही जब हम समझने की कोशिश करते हैं कि वैज्ञानिकों के अनुसार माहवारी गड़बड़ाने के कारण क्या हैं तो पाते हैं कि उनके लिए औरतों के स्वास्थय का कोई महत्व ही नहीं है। बस किसी भी कीमत पर प्रजनन को रोकना ही विज्ञान का काम रह गया है। भारी रक्तस्राव का कारण उनके अनुसार शायद एलर्जी है। इसी प्रकार धब्बे लगने का अर्थ है रक्त वाहिकाओं के चरित्र में परिवर्तन जो सिर्फ बच्चेदानी तक सीमित नहीं है बल्कि थक्के जमने की बिमारी का लक्षण है। इसी प्रकार माहवारी का रुक जाना बच्चेदानी की परत के क्षय के कारण होता है जो अस्थायी भी हो सकता है व स्थायी भी। स्थायी होने का मतलब है औरत का बाँझ हो जाना। इस गम्भीरता के बावजूद विश्व स्वास्थय संगठन अपनी किताबों में यह कहता है कि स्वास्थयकर्मी औरतों को ठीक से समझाये कि माहवारी गड़बड़ाना कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है ताकि औरतें इन गड़बड़ियों को स्वीकार कर लें। पर इंजेक्शन देना आवश्यक है। भला साथ में गोली देने का क्या मतलब है, क्यों न औरतें सूई न लगवाकर सिर्फ गोली खा लें।

इन सूईयों के विपरीत असर की एक और खासियत है – वे गर्भनिरोधक असर के खत्म होने के साथ–साथ खत्म नहीं होते हैं। कई औरतों की तकलीफें सालों तक होती रही हैं वैसे भी अगर वे शरीर पर विपरीत असर डालते हैं तो इनके असर को मारने की कोई दवा नहीं है।

30 साल से माहवारी गड़बड़ाने व उसका कारण न जानने के बावजूद आखिर 1990 में ही विश्व स्वास्थय संगठन ने इसे शोध का विषय माना। इस बीच लाखों औरतें इससे पीड़ित हुई हैं। पर शोध तब की जा रही है जब यह बात भी मान ली गई है कि औरतें इनका इस्तेमाल नहीं करती हैं। अब परीक्षण मासिक सूईयों पर हो रहा है जिनमें प्रोजेस्टोजन के साथ–साथ इस्ट्रोजन भी है तथा अपेक्षाकृत इनसे नियमित रक्तस्राव होता है। सरकारी लिखित सामग्री के अनुसार इनमें से एक साइक्लोफेम भारत में लाया लाएगा। दूसरे शब्दों में मिश्रित हार्मोन का चक्कर तो पूरा हो गया है पर इस बीच निरापदता के सवाल का कोई जवाब नहीं मिला है। इस्ट्रोजन को न देने का कारण था उससे सम्बंधित खतरे पर अब मात्र असुविधा कही जाने वाली समस्या के हल के लिए यह खतरनाक घटक अब फिर शामिल कर लिया गया है। अब अगर इन बड़ी संस्थाओं का कोई वैज्ञानिक हार्मोनके विरुद्ध मुँह तभी खोलता है जब वह रोग से लड़ने की क्षमता पर आधारित गर्भनिरोधकों के पक्ष में कुछ कहना होता है – तब विश्व स्वास्थय संगठन के विशेषज्ञ अवश्य यह मानते हैं कि हार्मोन का उपयोग करते हुए हम एक टाइम बम पर बैठे हैं।

**भारत में किसे सूइयाँ चाहिए :**

जब भी इन सूंइयों का विरोध किया जाता है तो उन औरतों का हवाला दिया जाता है जो तस्करी करके नेपाल से ये इन्जेक्शन लाकर उनका इस्तेमाल कर रही हैं। उनके पक्षे में यह भी कहा जाता है कि इन्जेक्शनों का इस्तेमाल औरतें बगैर अपने परिवार की जानकारी के कंर सकती हैं। यह भी बताया जाता है कि इन्जेक्शन कितने सूविधाजनक हैं क्योकि इन्हे लेना याद नहीं रखना पड़ता है। पर अगर हम घ्यान से देखें तो इन तर्कों में कोई दम नहीं है। उदाहरण के लिए क्या यह सम्भव है कि माहवारी पूरी तरह से गड़बड़ा जाय व परिवार में किसी को पता ही न चले। सरकारी शोध के नतीजे यह बताते हैं कि औरतें इन्जेक्शन माँगती है, उन्हे आजमा भी लेती हैं पर उनके साथ टिकती नहीं अगर उन्हें कोई भी विकल्प उपलब्ध करा दिया जाय। अतः सुनी–सुनाई के आधार पर वे एक बार सीमा पार से इंजेक्शन ले भी आती हैं तो बार–बार तो उनका सीमा पार करना सम्भव ही नही है। साथ ही गोलियों को सम्हालने व उन्हें नियमित रुप से लेने से बचने का फायदा हमेशा रक्तस्राव के लिए तैयार होने की कठिनाई के आगे फीका पड़ जाता है। यह तो सिर्फ सुविधा का सवाल है और अभी तो हमने औरतों और बच्चों के स्वास्थय की हानि की बात ही नहीं की है जो हर डॉक्टर की चिंता का विषय होना चाहिए। साथ ही हमारे देश में माहवारी

को लेकर जो सांस्कृतिक व धार्मिक कठिनाई पैदा होती है वह भी गौरतलब है।

पूरे विश्व में इन सूइयों को लेकर डाक्टर जो कर रहे हैं वह अनाचार की एक नई मिसाल है, व इस बात का सूचक है कि डाक्टर किस तरह से अपने मरीजों की भलाई को नजरअंदाज कर देते हैं और दूसरे ही लक्ष्यों से प्रेरित होकर उनके स्वास्थय की बलि चढ़ा देते हैं। मरीज की अक्लमंदी के बारे में उनके पूर्वाग्रह ही उन्हें इन सूइयों के इस्तेमाल के लिए प्रेरित करते हैं। अमेरिका के बच्चों के डाक्टर इसे काली चमड़ी की किशोरियों को उस समय से डेपो प्रोवेरा लगाते आ रहे हैं जब वहाँ की सरकार ने उसे स्वीकृति तक नहीं दी थी। इसी तरह से वहाँ के मूलवासी अमेरीका को न्यूज़ीलैंड के आदिवासियों को व इंगलैंड के अश्वेतों को यह सूई लगाई जा रही है। डेपो प्रोवेरा के भुक्त भोगी वे सभी प्रजातियाँ हैं जिनकी संख्या को सीमित रखना श्वेत नस्ल की अगुवाई बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

डाक्टरों को सूइयाँ इसलिए पसंद हैं क्योंकि उन्हें मरीजों को हिदायतें देने में समय बेकार नहीं करना पड़ता, पर फिर भी गर्भ नियंत्रण भली भाँति हो जाता है। ये उन्हें भी लुभावने लगते हैं जिन्हें विपरीत असर की जानकारी नहीं है। इसलिए यह पूरी तरह से सम्भव है कि भारत की अधिकांश गरीब औरतों को दो नहीं तो कम से कम एक सूई तो लगाई ही जा सकती है। इसलिए भारत में उन सूइयों की बिक्री का अनुमान ही चौंका देने वाला है। अगर हम यह ही मान लें कि यह सूई सिर्फ उन 1 करोड़ औरतों को लगाई जाएगी जो हर साल गर्भपात कराती हैं अथवा उन करोड़ों को जो स्वास्थय सेवाओं के सम्पर्क में आती हैं तब भी हम पाते हैं कि आराम से हर साल 10 करोड़ डालर की बिक्री तो हो ही सकती है। वैसे तो आज इनका दाम 125 रु॰ है पर यह दाम सिर्फ दिखावे का है। बल्कि इसे 1000 रु॰ प्रति सूई के हिसाब से मौजूदा अमरीकी दाम पर अमरीकी सहायता संस्था (यू. एस. एड.) खरीदेगी व भारत में चल रहे अपने नियत्रंण कार्यक्रम में स्वंयसेवी संस्थाओं के जरिए औरतों को लगवाएगी। हर इंजेक्शन से अप जॉन का 900 रु॰ का फायदा होगा पर भारतीय औरतों के जीवन में बेहिसाब दुख और बिमारी फैलेगी, वह भी ऐसे समय जब वे अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के फरमानों के तले दबी जा रही हैं। नेट–एन के परीक्षण के जरिए भारतीय औरतों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें ये सूइयाँ अमान्य हैं, पर बहुराष्ट्रीय कम्पनीयों के वाद्य–वृद्ध के शोर में उनकी आवाज भला कौन सुनेगा।

औरतों की संस्थाओं ने इन तकनीकों के प्रचलन को रोकने के लिए कई सालों से संघर्ष छेड़ रखा है। सुप्रीम कोर्ट में नेट–एन के खिलाफ हमारा केस चल रहा है। हमने मौजूदा गड़बड़ियों के विरुद्ध सरकार से इन पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की है, हमने बताया है कि कैसे दोनों सूइयों के बारे में सरकार ने इतना अलग–अलग रवैया अपनाया है जहाँ नेट–एन पर 14 साल तक परीक्षण करने के बाद ही उसे मान्यता दी वहाँ डेपो प्रोवेरा के विषय में यह निश्चित तक नहीं किया गया कि गर्भनियंत्रण के लिए इसको किस मात्रा में इस्तेमाल किया जाय। हमारे सवालों का तो किसी के पास जवाब है नहीं, उल्टे सरकार व डाक्टर इस बात पर आपत्ति कर रहे हैं कि हम सवाल उठाने की जुर्रत कर रहे हैं। हमारी हर बात का ठोस प्रमाण शोध के परिणामों पर आधारित है और हम उस नैतिक स्तर की बात करते हैं जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकारा गया है, पर फिर भी सुनवाई नहीं है क्योंकि हम डाक्टर नहीं हैं। पर स्वंय डाक्टर शोध के परिणाम के बदले अप जॉन द्वारा मुद्रित जानकारी मात्र पढ़कर विशेषज्ञ बन जाते हैं। औषिधि नियंत्रक सब कायदे कानून ताक पर रखकर देश के बाजार इन खतरनाक इंजेक्शनो के लिए खोल सकता है, मेक्स फार्मा चाहे जो कहने और लिखने के लिए स्वतंत्र है। औरतों के लिए सिर्फ यही उपयुक्त है कि वे सवाल न पूछे व अपने आप को डाक्टरों के हवाले कर दें।

अतः गर्भनिरोधक सूइयों विरोधी यह अभियान उन औरतों का अभियान है जो कह रही हैं कि हम अज्ञान में रहने को तैयार नहीं हैं। यह उन औरतों का अभियान है जो अपने शरीर को जनसंख्या नियंत्रण की बलि चढ़ाने के लिए तैयार नहीं हैं। ये उन औरतों का अभियान है जो निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी माँग रही हैं, व उन औरतों का अभियान है जो मानती हैं कि जानकारी ही शक्ति है।

■■■

# भारत में महिला आन्दोलनों पर पांचवा राष्ट्रीय सम्मेलन :
## तिरुपति, 23-26 जनवरी 1994.

अपने राधर्ष करने के तरीकों और अनुभवों को बांटने के लिए 1980 से स्वायत्त नारी संगठन राष्ट्रीय सम्मेलनों में मिलते रहे हैं। 1980 और 1985 में बम्बई में हुए दो सम्मेलनों के बाद, तीसरा सम्मेलन पटना में हुआ। पटना सम्मेलन में ग्रामीण औरतों, जन संगठनो और राजनैतिक दलों से बड़ी संख्या में औरतों ने हिस्सा लिया। 1990 में हुए कालीकट सम्मेलन में लगभग 2000 औरतों ने हिस्सा लिया जिनमें से अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों से थीं।

तिरुपति में, 23-24 जनवरी, 1984 को हुए पांचवे राष्ट्रीय सम्मेलन में लगभग 3,000 औरतों ने हिस्सा लिया। आन्ध्र प्रदेश को सम्मेलन का स्थान इस लिए चुना गया ताकि इस राज्य में बढ़ते हुए सरकारी दमन के मुद्दे को उठाया जा सके और शराब बन्दी से जुड़े औरतों के आन्दोलन के साथ एक–जुटता व्यक्त की जा सके। इस सम्मेलन का आयोजन एक नए समूह, महिला शक्ति, द्वारा किया गया, जिसमें कई अन्य महिला समूहों नें मदद की। इन सबकी एक राज्य स्तर की संयोजन समिति का गठन किया गया। सम्मेलन के लिए पैसा, कार्ड, केलेन्डर, बैग, इत्यादि बेचकर, कई कार्यक्रम आयोजित करके और रजिस्ट्रेशन फीस (जो कि 25 रुपए से 200 रुपए तक थी) के द्वारा किया गया। पहले सम्मेलनों की तरह, कोई संस्थागत पैसा नहीं लिया गया। देश भर से महिला समूह सम्मेलन में आए और उन्होनें विभिन्न प्रकार स इस सम्मेलन में हिस्सा लिया जैसे कि विभिन्न सत्रों में, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और विशेष ग्रुप सत्रों में और रैली में भाग लेकर। आखिरी दिन हुई रैली में लगभग 15,000 औरतों न हिस्सा लिया, और सरकारी दमन, नई आर्थिक नीतियों और सम्प्रदायवाद के विरुद्ध विरोध प्रदर्शित किया। सम्मेलन के विभिन्न सत्र निम्नलिखित विषयों पर थे:

1. नई आर्थिक नीति.
2. स्वास्थय और जनसंख्या.
3. औरतों के प्रति हिंसा.
4. यौनिकता.
5. एकल औरत – इसे एक विषय के रुप में पहली बार शामिल किया गया था।
6. जीने का संघर्ष (इसमें पर्यावरण सम्बन्धी संधर्ष भी शामिल किए गए)
7. औरत और राज सत्ता.
8. महिला आन्दोलन का अन्य आन्दोलनों के साथ सम्बन्ध.
9. संगठन की राजनीति.
10. सम्प्रदायवाद और पहचान की राजनीति.

सम्मेलन के दौरान कुछ विशेष सत्रों का आयोजन भी किया गया जिसमें दलित और आदिवासी औरतों के संघर्ष पर चर्चा हुई। एक छोटी सी बैठक "लेस्बयनिज़म" (औरत व औरत का रिश्ता) पर भी हुई।

इस सम्मेलन की पूरी रिपोर्ट अभी तैयार की जा रही है। यहाँ हम सहेली द्वारा संयोजित सत्र "औरत और राजसत्ता" का विवरण दे रहे हैं।

### औरत और राज सत्ता–सहेली (दिल्ली) द्वारा संयोजित

इस सत्र में नारी आन्दोलन की विभिन्न धाराओं से लगभग दो सौ औरतों ने हिस्सा लिया, जिसमें स्वायत्त संस्थाऐं, क्रांतिकारी वामपन्थी संस्थाऐं, गैर सरकारी संस्थाऐं, सरकार द्वारा संचालित कार्यक्रमों में शामिल औरतें और कई अन्य व्यक्ति शामिल थे। इस सत्र में किसी प्रकार के पेपर नहीं पढ़े गए। पूरी बहस इस समझ पर आधारित की गई कि वर्तमान समय में आंदोलनो के संस्थानीकरण और राज्य द्वारा नारीवादी मुद्दों को अपना लेने की प्रवृति बढ़ रही है। इस संदर्भ में नीचे दिए गए विषयों पर गहराई से विचार किया गया।

### कानून और नारी आन्दोलन

आरम्भ में नारी केन्द्रित कानूनों को बनवाने के लिए नारी आन्दोलन द्वारा चलाए गए अभियानो का ब्यौरा दिया गया। बहस के इन मुद्दों को उठाया गया: क्या इन कानूनों ने वास्तव में औरतों की मदद की है ? इन कानूनों का सामान्य रुप से समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है इन कानूनों में क्या कमियाँ हैं और इनके लागू करने में क्या समस्याऐं हैं। नारी आन्दोलन को औरतों के

न्याय दिलाने के लिए कानून को साधन के रुप में कहाँ तक इस्तेमाल किया जाना चाहिए ? इस संदर्भ में नारी के प्रति हिंसा से जुड़े कानूनों जैसे कि बलात्कार, दहेज और परिवारिक हिंसा पर बने कानूनों और जायदाद में लड़कियों के अधिकार और पारिवारिक कानूनों में व्याप्त असमानताओं और समान काम के लिए समान वेतन सम्बन्धी कानूनों पर चर्चा हुई।

बहस का एक मुख्य विषय औरतों के विरुद्ध बढ़ती हुई हिंसा और कानून और अन्य सरकारी ऐजन्सियों की इस संदर्भ में भूमिका रहा। औरतों ने अपने अनुभवों के माध्यम से राज्य के नारी–विरोधी स्वरुप को उजागर किया। यह महसूस किया गया कि कानून अपराधियों को सजा देने में असमर्थ है। आन्ध्रप्रदेश और तमिलनाडू की औरतों ने बताया की उनके भूमि–सम्बन्धी आन्दोलनो को दबाने के लिए पुलिस और सेना द्वारा ब्लात्कार एक रोजमर्रा की बात हो गयी है। उत्तर–प्रदेश और राजस्थान की औरतों ने सरकार के अपने विकास कार्यक्रमों में औरतों की आवाज दबाने के बारे में बताया। भंवरी और उषा धीमन को इस सन्दर्भ में उद्गत किया गया। ये उदाहरण इस तथ्य की ओर भी इशारा करते हैं कि नारीवादी संगठनो के दबाव के आभाव में न्याय प्राप्त करना लगभग नामुमकिन है। दहेज कानून के संदर्भ में धारा 304 (ब) और धारा 498 (अ) की प्रभावहीनता के प्रश्न को उठाया गया। इस बात पर जोर दिया गया कि पुलिस और अन्य सरकारी ऐजन्सियाँ अपराधियों को संरक्षण देती हैं। पूर्वाभासी (anticipatory) जमानत का सजा से बचने के साधन के रुप में इस्तेमाल की निन्दा की गई। लेकिन साथ ही यह भी महसूस किया गया कि इस संदर्भ में नारी आन्दोलन सख्त कानूनों की मांग भी नहीं कर सकता क्यूँकि ऐसे कानून अक्सर विभिन्न आन्दोलनों में रत सक्रिय क्रमियों के विरुद्ध इस्तेमाल किये जा सकते हैं। विशाखापटनम् से आई कई औरतों ने धारा 498 (अ) की पूर्णतया समाप्त करने की माँग उठाई, क्यूँकि ऐसे कानून की वजह से पुलिस दहेज–हत्या के मामलों को धारा 304 (ब) के अन्तंगत् दर्ज करने की बजय 498 (अ) में दर्ज करके दहेज हत्यारों को मदद करती है।

निजी कानूनों और सम्पति के अधिकारों से सम्बन्धित कानूनों पर भी चर्चा हुई। सम्पति अधिकारों में व्याप्त असमानताओं के प्रश्न को लगभग सभी उपस्थित औरतों ने उठाया। आन्ध्रप्रदेश से आई कुछ मुस्लिम औरतों ने बताया कि ज़मीन केवल बेटों और पोतों को दी जाती है, बेटियों को कभी नहीं। आन्ध्रा की ही औरतों ने एक नए तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि जबसे आन्ध्राप्रदेश अत्तराधिकार अधिनियम बना है, जिसके अनुसार औरतों को सम्पत्ति में बराबर का हक मिल गया है, लड़के वाले दहेज में जमीन मांगने लगे हैं। कई सम्प्रदायों में औरतो को ज़मीन दी तो जाती है परन्तु उस बेचने का अधिकार उन्हें नहीं मिलता। कई औरतों ने इस बात की ओर संकेत किया कि राज्य का रवैया अत्यन्त भेदभाव पूर्ण है जबकि कुछ हिन्दू कानूनों में कुछ सुधार किए गए हैं, मुस्लिम कानूनों को बिल्कुल छेड़ा नहीं गया है।

राज्य का नारी विरोधी रवैया इस बात से भी जाहिर होता है कि किसी भी आन्दोलन में औरत और पुरुष मिल कर हिस्सा लेते हैं लेकिन भूमि वितरण के समय केवल पुरुषों के नाम पर ही होता है। इस बात को बहुत जोर से उठाया गया कि औरत हालांकि जिम्मेवारी उठाती है लेकिन उस की पैतृक और विवाहित सम्पत्ति विहीनता उसे पुरुष और परिवार पर निर्भर कर कमजोर करती है।

कानूनों और अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञता एक अन्य समस्या है और इस संदर्भ में नारी आन्दोलन की चेतना जागृत करने की भूमिका पर जोर दिया गया। अक्सर कानूनों का लाभ सम्पत्तिवान और प्रभुत्वशाली वर्ग ही उठाते हैं। इसलिए यह जरुरी है कि विभिन्न नारीवादी समूहों का नेटवर्क बनाना चाहिए जो कानूनो के लागू करने से जुड़ी समस्याओं की पड़ताल करे और सुझाव दे। सरकारी तन्त्र द्वारा औरतों के प्रति बढ़ती हुई हिंसा के विरुद्ध भी नारी आन्दोलन की मजबूत करने पर जोर दिया गया। इस सत्र में शामिल अधिकतर औरतें ग्रामीण क्षेत्रों से थीं जो कि या तो भूमिहीन मजदूर थीं या बहुत ही कम भूमि की मालिक थीं। इन में से अधिकतर गुण्डों, पुलिस और सेना के अत्यधिक दमन का शिकार थीं। इसी कारण से सरकारी दमन के रुप में ब्लात्कार का मुद्दा एक बहुत ही महत्वपूर्ण और मूल समस्या के रुप में उठाया गया। इस संदर्भ में शेष इतना अधिक था कि कानून के कई अन्य पक्षों जैसे कि समान कानून संहिता, निजी कानूनों में सुधार, और नारी आन्दोलन के द्वारा मांगे गए कई अन्य कानूनों का प्रभाव हीनता, पर अधिक चर्चा न हो सकी।

**पंचायती राज संस्थाओं में औरतों के लिए आरक्षण**

इस विषय पर चर्चा में हालांकि काफी कम औरतों ने हिस्सा लिया लेकिन चर्चा काफी दिलचस्प और जानकारी बढ़ाने वाली

रही। सबसे पहले नए पंचायती राज कानून, जिसके द्वारा औरतों का पंचायतो में 33 प्रतिशत आरक्षण मिला है, की पृष्ठभूमि बताई गई। चर्चा के लिए ये मुद्दे उठाए गए क्या केवल आरक्षण होने से औरतों से सम्बन्धित समस्याऐं प्रभावपूर्ण तरीके से उठाई जा सकेंगी ? जिन क्षेत्रों में पहले से आरक्षण है वहाँ के क्या अनुभव हैं। क्या 33 प्रतिशत आरक्षण काफी है या हमें 50 प्रतिशत आरक्षण की मांग करनी चाहिए। क्या आरक्षण की नीति वास्तव में औरतों के हित में है या यह केवल राज्य द्वारा औरतों की राजनैतिक हिस्सेदारी के प्रश्न को कमजोर करने की चाल है ? आरक्षण का अन्य जन आन्दोलनो पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? क्या यह जन आन्दोलन को कमजोर करेगा ?

चर्चा में चार राज्यों के अनुभव मुख्य रुप से सामने आए। ये राज्य थे – कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश। कुछ समस्याऐं जो उठाई गई वे सभी राज्यों में समान रुप से पाई गईं। एक मुख्य समस्या यह पाई गई कि क्यूँकि महिला उम्मीदवार विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा चुनी जाती हैं, इस से औरतें राजनैतिक रुप से विभाजित हो जाती है। यह कारक औरतों की एकता में बाधक है। एक औरत ने कहा कि क्यूँकि औरतें राजनैतिक दलों के टिकट पर और पुरुष राजनीतिज्ञों के समर्थन से चुनी जाती हैं, निर्वाचित महिलाऐं औरतों के मुद्दों पर काम नहीं कर पाती हैं। इसी बात का दूसरा पहलू यह है कि वे औरतें जो वास्तव में नारी आन्दोलन से जुड़ी हैं या नारी मुद्दों पर काम कर रही हैं उन्हें चुनावों में उम्मीदवार चुना ही नहीं जाता।

बंगलोर के 'मानसा' समूह ने बताया कि सरकारी अधिकारी औरतों की योग्यता में विश्वास नहीं रखते। चुनाव सम्बन्धी कागज़ उन्हें केवल तब दिए जाते हैं जब वे या तो अपने पति या अन्य किसी दल के पुरुष के साथ आऐं। इस बात पर जोर दिया गया कि औरतों की हिस्सेदारी को सार्थक बनाने के लिए उनकी राजनैतिक शिक्षा जरुरी है। यह महसूस किया गया कि हालांकि आरक्षण जरुरी है लेकिन जाति, वर्ग और पितृसत्ता की समस्याऐं इस कदम को कम प्रभावी कर देती हैं। कई बार औरतों को परेशान किया जाता है ताकि वे राजनैतिक क्षेत्र में न आऐं। पैसे पर नियन्त्रण समस्या का एक और पहलू है। यह पाया गया कि कई बार पुरुष केवल इस कारण से औरतों के चुनाव में हिस्सेदारी को समर्थन दे देते हैं क्यूँकि चुनाव का मतलब है बहुत सा पैसा। और अक्सर पुरुष पैसे पर नियन्त्रण रखते हैं और इस का दुरुपयोग भी करते हैं जैसे शराब पी कर। इन कारणों से औरतें राजनैतिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने से हिचकिचाती हैं।

मध्य प्रदेश की 'एकता परिषद' और हिमाचल प्रदेश के 'सूत्र' समूह ने भी चुनावों में पैसे की भूमिका और राजनैतिक दलों के नारीवादी दृष्टिकोण रखने वाली महिलाओं को उम्मीदवार न चुनने की प्रवृति के प्रश्न को जोरदार तरीके से उठाया। कई उदाहरणों के माध्यमसे इस बात की पुष्टि की गई। 'सूत्र' ने कई और समस्याओं की चर्चा की जिनकी वजह से वे औरतें जो सक्रिय होना भी चाहती हैं ऐसा नहीं कर पाती। जैसे कि बैठकें अक्सर रात को की जाती हैं जिनमें औरतें हिस्सा नहीं ले पाती और न केवल महत्वपूर्ण निर्णय पुरुषों द्वारा ले लिए जाते हैं बल्कि यह शिकायत भी की जाती है कि औरतें बैठकों में नहीं पहुँचती।

पूने के 'आलोचना' समूह की एक कार्यकर्त्ता ने कुछ सशक्त अनुभव बताए। उन्होंने शेतकारी संगठन और उस की महिला शाखा, महिला अघाड़ी के काम के बारे में बताया। उनकी बातचीत से मूल बात जो सामने आई वह यह थी कि अगर किसी क्षेत्र में कोई मजबूत जन आन्दोलन या महिला आन्दोलन हो तो वहाँ पर आरक्षण जैसे कदम अधिक सफल हो सकते हैं। महाराष्ट्र में महिला अघाड़ी, शेतकारी संगठन और कई अन्य व्यक्तियों के काम की वजह से, वहाँ जन चेतना के स्तर और आन्दोलन के प्रभाव की वहज से न केवल वहाँ सम्पूर्ण महिला पंचायत बनी बल्कि औरतें पानी, जमीन, स्कूल इत्यादि की समस्याओं को जोरदार तरीके से उठा सकीं।

**सारी चर्चा से निम्न मुद्दे निकल कर आए :**

1. सबसे महत्वपूर्ण समस्या राजनैतिक दलों की दखल अन्दाजी से निपटने की है।

2. पैसे और उसके सही उपयोग की समस्या ।

3. सही महिला उम्मीदवारों को आगे लाने और पंचायतों में उनके मुद्दों को उठाने के लिए सशक्त महिला संगठनों और दूसरे जन आन्दोलनों के समर्थन की जरुरत।

4. 33% आरक्षण से भी पंचायतो में औरतों का अल्पमत रहेगा। इसलिए 50% आरक्षण की मांग पर चर्चा हुई, पर कोई निर्णय न लिया जा सका।

**सरकारी महिला विकास कार्यक्रम**

इस सत्र में हालांकि 30 के लगभग महिलाऐं ही उपस्थित थीं लेकिन सबने बहुत ही उत्साह से चर्चा में हिस्सा लिया। उत्तर प्रदेश और कर्नाटक के महिला समारव्या, राजस्थान के महिला विकास कार्यक्रम और तमिलनाडू और आन्ध्रप्रदेश में चल रहे सरकारी कार्यक्रमों के अनुभवों को बांटा गया। चर्चा के लिए निम्न मुद्दे उठाए गए :

1. सरकार द्वारा चलाए गए महिला विकास कार्यक्रम का क्या प्रभाव रहा है।

2. इन कार्यक्रमों को शुरु करने में सरकार के क्या उद्देश्य हैं। क्या इनका महिला आन्दोलन पर असर पड़ा है ?

3. सरकारी ढांचे के अर्न्तगत काम करने की क्या समस्याऐं और सीमाऐं हैं।

दो तरह के विचार सामने आए। एक के अनुसार सरकारी ढांचे के अर्न्तगत् काम करना प्रभावकारी नहीं हो सकता क्योंकि औरतों को आगे बढ़ाना सरकार का मुख्य उद्देश्य नहीं है। दूसरा विचार यह था कि सरकारी ढांचे में काम करना इसलिए जरुरी है क्योंकि इसकी पहुँच ज्यादा दूर–दराज के लोगों तक होती है। बांदा की महिला समाख्या की कार्यकर्ताओं ने बताया कि इस ढांचे के अर्न्तगत भी औरतों के अधिकारों के लिए लड़ना संभव हो सका है। उन्होंने वन अधिकारियों से औरतों को मजदूरी दिलाने, और विभिन्न गांवो में पानी के लिए अपने सफल संघर्षों की चर्चा की। उन्होंने यह भी माना कि उन्हें उच्च अधिकारियों के विरोध का भी सामना करना पड़ा है।

कुछ औरतों ने कहा कि यह समझना अधिक जरुरी है कि सरकार ऐसे महिला कार्यक्रमों को समर्थन क्यों देती है। अपने अनुभव के आधार पर उन का यह मानना था कि सरकारी समर्थन तब तक रहता है जब तक राज्य को कोई खतरा नहीं होता है। यदि ऐसा होता है तो समर्थन वापिस ले लिया जाता है। महिला समाख्या की कार्यक्रताओं ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा कि इस के बावजूद वे महसूस करती हैं कि इस कार्यक्रम में शामिल होकर दमन के विरुद्ध आवाज उठाना, कार्यक्रम में शामिल न होने से बेहतर है। क्योंकि जब तक कार्यक्रम है कोई और उसमें जुड़ जाऐंगे अगर वे छोड़ देंगी। उनके अनुसार, कार्यक्रम में रहकर नारी आन्दोलन के समर्थन से विरोध की आवाज उठाना वास्तविक चुनौती है। उन्होंने बताया कि नई आर्थिक नीति के संदर्भ में उन्हें परिवार नियोजन के लक्ष्य पूरा करने के लिए दबाव आ सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह और भी जरुरी हो जाता है कि नारी आन्दोलन उन्हें समर्थन दे न कि सरकारी पैसे का कार्यक्रम का हिस्सा होने का लेबल देकर उन्हें कमजोर करें।

**राज्य, गैर सरकारी संस्थाऐं (NGOs), पैसा और नारी आन्दोलन**

इस अप–विषय के अर्न्तगत नारी आन्दोलन पर पैसे के प्रभाव पर चर्चा हुई। गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियां स्वास्थय, शिक्षा इत्यादि के क्षेत्रों में पैसा दे रही हैं। इन क्षेत्रों में पहले राज्य की एक अहम भूमिका थी। नई आर्थिक नीति के संदर्भ में इन नई प्रवृतियों के प्रभाव को समझना जरुरी है। क्या सरकारी पैसे और विदेशी पैसे के इस्तेमाल में फर्क है। क्या इस प्रकार से पैसे के माध्यम से काम करने से औरतों के मुद्दों का संस्थानीकरण और राज्य द्वारा उन्हें अपनाना बढ़ गया है।

सरकारी पैसे के सन्दर्भ में, आन्ध्रा प्रदेश के महिला समूहों ने राज्य के दमनकारी और वर्ग चरित्र पर ध्यान दिलाया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार शराब बन्दी कार्यक्रम के दौरान, पुलिस थाने शराब की दुकान बन गए और पुलिस ने लोगों पर दबाव डाला। सरकार द्वारा संचालित अक्षर–ज्योति कार्यक्रम के अर्न्तगत, कहानी के माध्यम से बताया गया कि किस प्रकार एक औरत शराब पीकर घर आए पति को पीटती है और लोगों को संगठित करके परिस्थिति में सुधार लाती है। लेकिन जैसे शराब बन्दी आन्दोलन तेज हुआ इस कहानी को पाठ्य क्रम से हटा लिया गया। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि सरकार औरतों के कल्याण में दिलचस्पी नहीं रखती। कर्नाटक की औरतों ने भी इसी प्रकार के अनुभवों को बांटा। इस बात पर आम सहमति थी कि सरकारी कार्यक्रमों में काम करने की सीमाऐं हैं। अपने काम के स्वरुप को तय करने की स्वतन्त्रता भी नहीं है।

विदेशी पैसे द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों के स्वरुप पर भी चर्चा हुई। एक महिला कार्यकर्ता ने ऐसी ही संस्था में अपने अनुभव सुनाए और बताया कि ये संस्थाऐं अपने मर्जी के कार्यक्रम चलाने के लिए औरतों को इस्तेमाल करती हैं। काम के चुनाव, उसकी योजना और निर्णय लेने के स्तर पर उनको शामिल नहीं किया जाता, उनसे केवल काम करवाया जाता है। उन संस्थाओं के संगठनात्मक ढांचे अत्यंत अलोकतान्त्रिक है और औरतों के

स्वायत्त संघर्षों के लिए खतरा है। इन कारणों से संघर्ष के स्वायत्त स्वरुप को बनाए रखने के लिए वैकल्पिक तरीके ढूंढने जरुरी हैं।

**जन आन्दोलनों का राज्य द्वारा दमन**

इस सत्र में सबसे अधिक औरतों ने हिस्सा लिया। चर्चा का केन्द्र था – राज्य सत्ता द्वारा नारी और अन्य जन आन्दोलनों का बढ़ता हुआ हिंसात्मक दमन। इस विषय पर भी चर्चा हुई कि क्या इस हिंसात्मक दमन के स्वरुप में भी कोई परिवर्तन आया है। और इस दमन से जूझने के लिए क्या तरीके अपनाए जानें चाहिए।

देश भर से आई औरतों ने राज्य की विभिन्न एजेन्सियों – पुलिस, सीमा–सैन्य बल, वन अधिकारी, ठेकेदार इत्यादि के द्वारा उन पर किए गए अत्याचारों के अनुभव बांटे। आदिवासी औरतें विशेष रुप से वन–अधिकारियों और पुलिस के आतंक से सबसे अधिक प्रभावित पाई गई। बिहार के सन्याल परगना के एक समूह 'आल्टरनेटिव फॉर इण्डियन डवेलपमेन्ट' के कार्यकत्ताओं ने इस क्षेत्र में हो रहे दमन का ब्यौरा दिया। इस क्षेत्र की महिलाओं का एक मुख्य धन्धा जंगल से जलानें वाली लकड़ी इकट्ठा कर बेचना है। ये औरतें इस काम में स्वंय को अत्यन्त असुरक्षित पाती हैं। ब्लात्कार और अन्य प्रकार के अत्याचार इस क्षेत्र में आम बात हो गए हैं। लकड़ी इकट्ठा करने के लिए औरतों को बड़े झुण्डों/समूहों में घूमना पड़ता है, जबकि ठेकदारों को इन जंगलों में पेड़ काटने की पूरी अनुमति उन्हीं सुरक्षा गार्डों द्वारा आसानी से मिल जाती है जो कि औरतों के साथ अत्याचार करते हैं। नासिक क्षेत्र के आदिवासी शेतकारी खेतमजदूर संगठन के कार्यकर्त्ताओं ने भी इसी प्रकार के अनुभव बताए। विशाखा–पटनम के स्त्री शक्ति संगठन ने एक आठवीं कक्षा की लड़की के साथ जेल में हुए ब्लात्कार का मामला उठाया।

दिल्ली के 'सहेली' संगठन ने उड़ीसा में जयशंकपुर में हुई एक घटना का ब्यौरा दिया। यहाँ, उड़ीसा सशस्त्र सैन्य बल ने एक ज़मीन के मामले में दखल देते हुए, गांव की कई औरतों के साथ सामूहिक ब्लात्कार किया। इनके विरुद्ध न तो कोई केस ही दर्ज किया गया और न ही औरतों का मेडिकल चेक–अप किया गया। घटना के तीन महीने के बाद, अदालती आदेश के बावजूद कोई कार्यवाही नहीं हुई।

आन्ध्र प्रदेश के रैयत कुली संगठन के कार्यकर्त्ता ने 1980 में सिरिकाकुलम में हुए किसान आन्दोलन के अपने अनुभव बताए। इस सत्र में उपस्थित कई औरतों ने बताया कि इस आन्दोलन के दौरान उनके विरुद्ध कई झूठे मुकदमे बनाए गए और उन्हें किस प्रकार पुलिस की हिंसा और बर्बरता का शिकार होना पड़ा। उन्हें लम्बे समय तक जेलों में भी रहना पड़ा। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि राजनैतिक नेताओं और जमींदारों का कानून व्यवस्था बनाए रखने वाली ऐजन्सी–पुलिस–के साथ गठजोड़ था। कानून और पुलिस राज्य की भुजाएँ हैं जिनका इस्तेमाल शासक यथा–स्थिति बनाए रखने के लिए करते हैं।

इस बात पर भी चर्चा हुई कि राज्य–दमन के स्वरुप में भी परिवर्तन हुआ है। पहले समाज के सबसे कमजोर वर्ग, औरतें, दलित और आदिवासी पुलिस दमन का निशाना बनते थे लेकिन अब उनके अतिरिक्त सभी प्रकार के जन आन्दोलनों को सरकार व पुलिस के द्वारा दबाया जा रहा है। सेना द्वारा दमन के बारे में बताते हुए 'स्त्री–शक्ति' की एक सदस्या ने कहा कि उन्हें लगता है कि भारत की सीमाऐं तिब्बत्त के पास न हो कर आन्ध्र प्रदेश के पास हैं। पुलिस हिरासत में औरतों के साथ ब्लात्कार एक आम बात हो गई है। ये औरतें अगर गर्भवती हो जाती हैं तो उन पर दबाव डाला जाता है कि वे कहें कि उनके साथ नक्सलवादियों ने ब्लात्कार किया है। यदि वे इसका विरोध करती हैं तो उन्हें मार दिया जाता है।

कई महिलाओं ने बताया कि उन्हें किस प्रकार की यातनाऐं दी गई। पिटाई के अतिरिक्त, सिगरेट से शरीर को जलाना, गीले शरीर पर बिजली के झटके, गुप्तांग में मिर्चें डालना, पुलिस बर्बरता के नमूने हैं। डांडकरनेय में पुलिस यातना से 22 औरतों की मौत हुई। इन मौतों को पुलिस के साथ हुई झड़पों में हुई मौतों का रुप दे दिया जाता है। ऐसी संस्थाओं और संगठनो पर रोक लगा दी जाती है जो जमीन जोतने के मूल अधिकारों का लेकर संघर्ष कर रहे हैं। इसी प्रकार ब्लात्कार और दहेज हत्याओं के विरुद्ध निकाले गए जलूसों पर भी पुलिस ताकत का इस्तेमाल करती है। इस का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आन्ध्र प्रदेश के पूरे बजट का 48% पुलिस पर खर्च किया जाता है। महिलाओं ने राज्य को जनता का सबसे पहला शत्रु बताया।

तमिलनाडु, धर्मपली के 'आल्टरनेटिव फॉर इण्डियन डवेलपमेन्ट' समूह ने भी मूल अधिकारों के लिए लड़ रहे आन्दोलनो के सरकार द्वारा दमन का उल्लेख किया। इस समूह के कार्यकर्त्ताओं ने परिवारिक हिंसा के मामलों मे पुलिस की नकारात्मक भूमिका की चर्चा की। पुलिस न केवल पतियों के पक्ष में काम करती हैं बल्कि इन मुद्दों पर आवाज बन्द कर देने की कोशिश करती है। बिहार के एक समूह ने बांध परियोजनाओ से विस्थापित लोगों के संघर्षो की चर्चा करते हुए बताया कि किस प्रकार आदिवासी औरतें इन परियोजनाओं का विरोध कर रही थीं उनको पुलिस ने बुरी तरह से पीटा।

'स्त्री विमुक्ति' की एक कार्यकर्त्ता ने राज्य के दमन का दो स्तरों पर विश्लेषण किया – एक तो सीधा औरतो पर जो किसी भी संघर्ष का हिस्सा हैं और दूसरे उन औरतों पर जिनके परिवार संघर्ष से जुड़े हुए हैं। इस दूसरी प्रकार के दमन का उद्देश्य उनके पतियो, पिताओं, भाईयों और परिवार के अन्य सदस्यों को ढूँढना है। उसने कहा कि इतने दमन के बाद वे अब ब्लात्कार का केवल अपने शरीर पर हमला मानती हैं और अपने दिल–दिमाग को मजबूत रखती हैं क्यूँकि तभी संघर्ष को आगे बढ़ाया जा सकता है।

इस सारी चर्चा में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकला कि सरकार केवल उन्हीं संगठनो और आन्दोलनो का दमन करती है जो मूल मुद्दे उठाते हैं। ऐसे संगठन जो केवल विकास कार्यक्रमों में लगे हुए हैं इस दमन का शिकार नहीं होते। जैसे कि स्त्री विमुक्ति की एक सदस्या ने कहा कि यदि हम केवल दहेज हत्याओं के लिए विरोध करते हैं तो सरकार आतंकित नहीं होती, लेकिन अगर हम जमीन पर अधिकारों की बात करते हैं या शराब के व्यापार में सरकार की मिलीभगत का मुद्दा उठाते हैं तो सरकारी दमन बढ़ जाता है। इस संदर्भ में सरकार द्वारा 'टाडा' (TADA) के अत्यधिक इस्तेमाल का मुद्दा उठाया गया। देश की सुरक्षा और एकता को आधार बना कर जन आन्दोलनों में लगे लोगों पर झूठे आरोप लगा कर उन्हे बन्दी बना लिया जाता है। इस विषय पर बात करने के लिए पंजाब, कश्मीर और उत्तर पूर्व की औरतें उपस्थित नहीं थीं।

विभिन्न मुद्दों पर प्रस्ताव पास किए गए और इस प्रकार के दमन से लड़ने के लिए क्या नीति हो इस पर चर्चा हुई। इस बात पर आम सहमति थी कि राज्य द्वारा हिंसा के मुद्दे पर ध्यान आर्कषित कराने के लिए शुरुआत के तौर पर कुछ विशेष मामलों को उठाया जाए।

अपनी छपाई व डाक खर्च की पूर्ति हेतु सहेली न्यूजलेटर के प्रत्येक अंक की कीमत रु० 7.00–रखी गई है। इसी प्रकार हमारी वार्षिक सदस्यता भारत में रु० 35.00–केवल व विदेशों में रु० 120.00–रहेगी।

---

## कूपन

नाम/संस्था ----------

----------पता----------

----------

----------दूरभाष:----------

----------

आदायगी ☐ नकद ☐ डिमांड ड्राफ्ट ☐ मनीआर्डर ☐ चैक

चैक/डिमांड ड्राफ्ट का भुगतान सहेली के नाम से करें।

---

**सहेली के सदस्य** : अशीमा, अनीता, अल्पना, चित्रा, डोली, अलीज़ाबेद, कल्पना, लक्ष्मी, लता, प्रेम, रजनी, रंजना, साधना, सरवेश, सुधा, सुनीता, सुशीला, तारा, वाणी। लोपा, वृन्दा

मुद्रक : **मास प्रिन्ट**, फोन : ***2420836***

# सहेली

हम से आप तक

वर्ष 5 अंक 2 | जनवरी-जून 1995 | सिर्फ निजी वितरण के लिए

## अनुक्रम


- ☐ राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के विरुद्ध अभियान 2
- ☐ दमनकारी जनसंख्या नियंत्रण - भुक्तभोगियों की कहानी खुद की जुबानी 8
- ☐ लिंग जांच व चुनाव विरोधी अभियान नए विधेयक का विश्लेषण 10
- ☐ डेपो प्रोवेरा विरोधी अभियान 14
- ☐ मदद के लिए अपील 24
- ☐ समान नागरिक संहिता - महिला अधिकारों का मुद्दा 25
- ☐ संक्षिप्त खबरें 30
- ☐ आपस की बातें-गर्भ नियंत्रण, सुरक्षा और हमारा स्वास्थ्य - एक नई पुस्तिका 32


इस अंक के प्रकाशन में देरी होने के लिए क्षमा करें। अपनी कमी को पूरा करने के लिए हमने सामग्री बढ़ा दी है।

'सहेली' विमेन्स रिसोर्स सेन्टर, डिफेन्स कालोनी फ्लाई ओवर के नीचे, साउथ साइड,
नई दिल्ली-110024. टेलीफोन : 4616485

# राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के विरुद्ध अभियान

संसद में शीघ्र ही पारित की जाने वाली राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को प्रभावित करने की विभिन्न महिला संगठनों की कोशिश में हमने भाग लिया है। विश्व जनसंख्या दिवस 11 जुलाई 1994 को हमने इस विषय पर आम सभा की थी जिसके दौरान हमारे विश्लेक्षण को मानते हुए इसकी एक सदस्या ने अपने आप को राष्ट्रीय विशेषज्ञ दल से अलग कर लिया। अभी भी यह प्रारुप बहस का एक मुद्दा है व उड़ीसा जैसे कुछ राज्य इस नीति के बिन्दुओं को कानून बनाने में लगे हुए हैं। यहाँ हम अपने विश्लेषण व महिला संगठनों की व्यापक सहमति बयान कर रहे हैं।

**राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का प्रारुप व उसका विश्लेषण**

जुलाई 1993 में, श्री एम एस स्वामीनाथन की अध्यक्षता में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग द्वारा एक विशेषज्ञ दल का गठन किया गया, जिसका काम था राष्ट्रीय विकास काउंसिल की सिफारिशों के अनुसार एक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का गठन करना। इस विशेषज्ञ दल ने मई 1994 में अपनी रपट पेश की।

एक ओर तो काहिरा में होने वाले सम्मेलन के लिए तैयार की गई रपट में स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्रालय ने यह माना है "आज चल रहे आर्थिक सुधारों से गरीबों को खतरा है। ढ़ाँचागत परिवर्तन मदद के पहले परेशानियाँ बढ़ाता है। सबसिडी खत्म होने से दाम बढ़ते हैं। श्रमिक काम से अलग होते हैं, भले ही बाद में विकास के चलते ज्यादा रोजगार के अवसर बनते हों। ढाँचागत परिवर्तन की दीर्घकालीन सफलता के लिए आवश्यक है कि, मानव संसाधन विकास पर कहीं अधिक ध्यान दिया जाए।" लेकिन इस विषय पर विशेषज्ञ दल की सिफारिशें न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को कार्यान्वित करने तक ही सीमित हैं।

हालाँकि विशेषज्ञ दल के सदस्यों ने माना, "कि उन संगठनों व व्यक्तियों से इस प्रारुप पर व्यापक चर्चा की जानी चाहिए, जिन्हें जनसंख्या एवं विकास के विषय में व्यापक अनुभव व ज्ञान है" इस दल का पूरा काम गुप्त रखा गया। यहाँ तक कि दल द्वारा तैयार किया गया दस्तावेज न तो प्रेस, न ही सम्बद्ध संगठनों को प्राप्त ही कराया गया। इसे प्राप्त करना अपने आप में एक चुनौती रही पर फिर भी इसका विश्लेषण करके हमने विशेषज्ञ दल को एक ज्ञापन दिया, जिसमें इस प्रारुप में निहित अन्तर्विरोधों की तरफ ध्यान खींचा गया।

शुरुआत में ही विशेषज्ञ दल "भारत के समृद्ध सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषीय व राजनैतिक विविधता" को स्वीकारता है व मानता है कि नीति को "लैंगिक सवालों

पर सही नजरिया रखना होगा''। प्रारुप यह दावा करता है कि, उसमें स्त्री हित निहित है। पर ये सब बातें उसकी सिफारिशों से झलकती तक नहीं है।

**(क) प्रारुप का ढाँचा**

नीति मानती है, दुनिया के अमीर देशों की ही नहीं बल्कि भारत के अमीर लोगों की खपत बेलगाम है, जिसे पृथ्वी ढो सकने में असमर्थ है, और यह पर्यावरण के लिए खतरा पैदा कर रही है। वह यह भी मानती है कि, अमीर और अमीर हो गए हैं और गरीब अधिक गरीब। यह भीं माना गया है कि ''प्रकृति के साथ सामंजस्य करके जिंदा रहने के हालातों में सुधार लाने में असफलता भयंकर खतरा खड़ा कर रही है, जैसे कृषि की भूमि का गैर कृषि कार्यों के लिए इस्तेमाल, सिंचाई के लिए भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन, जहरीले व स्वतः नष्ट न होने वाले कूड़ा-करकट से प्रदूषण।'' भारत की विकास नीति के लिए ''प्रकृति व जनसंख्या के बीच सामंजस्य, आत्म निर्भरता व सामाजिक न्याय'' का भी जिक्र किया गया है। यह भी स्वीकारा गया है कि, ''वर्तमान विश्वव्यापी विकास के चलते गरीबों और अमीरों के बीच आय में अंतर बढ़ रहा है व रोजगार रहित आर्थिक विकास हो रहा है, साथ ही, जीवन को बनाए रखने वाली जमीन, पानी, वायुमंडल व पेड़ पौधों के संतुलन का नाश हो रहा है। यह गैर बराबर विकास लम्बे समय तक चल नहीं सकता।''

इन समस्याओं के समझने के बावजूद विशेषज्ञ दल ने पर्यावरण के विनाश का पूरा दोष ''अधिक जनसंख्या व गरीबी'' पर मढ़ दिया है। उसके अनुसार जनसंख्या नियंत्रण के अभाव में शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार की प्राप्ति महज सपना बन कर रह जाएगी। विशेषज्ञ दल अमीरों की बेहिसाब खपत के बारे में चुप है। पूरा जोर गरीबों की संख्या न बढ़ने देने पर केंद्रित है। ''समय आ गया है कि, मानवजाति को जीवित रखने के लिए जरुरी नैसर्गिक प्रणालियों की सीमाओं को मान्यता दी जाए'' पर हम यह नहीं समझ पा रहे कि, भारत जैसे देश में, जहाँ मुट्ठी भर लोग तीन चौथाई संसाधनों के उपभोग के लिए जिम्मेदार हैं वहां गरीबों की संख्या पर रोक लगा देने से ''सामाजिक न्याय'' व ''समानता'' के उद्देश्य कैसे प्राप्त होंगे।

समिति का प्रारुप उन आर्थिक नीतियों के बारे में चुप्पी साधे है, जिनके चलते गरीब, अमीरों की बढ़ती समृद्धि की कीमत चुकाने पर मजबूर हैं। प्रारुप विलासिता के साधनों पर एक्साइज ड्यूटी कम होने की बात नहीं करता, साल दर साल काले धन को सफेद बनाने के सरकारी उपायों की बात नहीं करता, कौड़ी के मोल पर सार्वजनिक क्षेत्र की फैक्टरियों के बेच दिए जाने की बात नहीं करता, राशन के दाम बढाए जाने की बात नहीं करता। वह पूँजी प्रधान तकनीकी के बेरोक-टोक देश में आने की बात नहीं करता व उद्योगों को बंद कर रोजगार के कम होने के विषय में भी चुप है जिसके चलते अर्थिक विकास के बावजूद नौकरियों की संख्या घट रही है। इस परिपेक्ष्य में, लैंगिक समानता की बात करना व जनसंख्या में संतुलन की जिम्मेदारी पंचायतों पर डालना सरासर अव्यावहारिक है।

इसके पश्चात यह प्रारुप उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक वातावरण व सरकार, समुदाय व परिवार व्यवस्था के सशक्तिकरण के बीच ताल-मेल बैठाने की बात करता है ताकि, परिवार कल्याण का लक्ष्य हासिल किया जा सके।

(अ) परिवार - अभी बच्चों को सीमित करने की औरतों पर पड़ रही पूरी जिम्मेदारी की दिशा बदली जाएगी व दम्पति की संयुक्त जिम्मेदारी को प्रोत्साहित किया जाएगा। इसके लिए पाठ्य पुस्तकों से लैंगिक भेदभाव दूर किया जाएगा।

पर बावजूद इसके विशेषज्ञ दल ऐसे किसी ढाँचागत् परिवर्तन की बात नहीं करता जैसे, सम्पत्ति व उत्तराधिकार के कानूनों में सुधार, नौकरी में भेद-भाव का अंत इत्यादि जिनसे औरतों व आदमियों के बीच सम्बंधों में अपेक्षाकृत कही अधिक बदलाव आएगा।

(ब) "हर पंचायत व नगरपालिका को हर गाँव व शहर के लिए लक्ष्यों की सूची तय करने के लिए तैयार किया जाएगा... जिनमें वहाँ के निवासियों से चर्चा करके तय किए जनसंख्या वृद्धि रोकने के लक्ष्य भी निहित होंगे।"

(स) "राज्य: राज्य सरकारों की जीवन की गुणवत्ता के सुधार के लिए उपाय करने में बड़ी भूमिका होगी, ये उपाय विशेष रुप से शिक्षा व जनसंख्या सीमित करने की ओर ध्यान देंगे। राज्यस्तरीय सामाजिक विकास व जनसंख्या समिति जिसमें विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि, गैर सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि, नारी व यूवा संगठन व संचार माध्यमों के प्रतिनिधि शामिल होंगे, विभिन्न प्रोग्रामों व सेवाओं को इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए केंद्रित करेगी। स्थानीय लक्ष्यों को समन्वित करके राज्यस्तरीय सामाजिक विकास व जनसंख्या कमीशन, राज्य के लिए लक्ष्य निर्धारित करेगी।"

इन सभी "सशक्तिकरण" के उपायों का एक मात्र उद्देश्य है- जनसंख्या नियंत्रण। कहने को तो नाम "सामाजिक विकास व जनसंख्या" है, पर उपायों के मद में सिर्फ जनसंख्या नियंत्रण ही शामिल है। सामाजिक विकास कैसे हो इसकी चर्चा गायब है।

### (ब) सुझाए गए सुधार

राष्ट्रीय स्तर पर मौजूदा नीति निर्माण तथा कार्यान्वयन ढ़ांचे में कुछ बुनियादी परिवर्तन सुझाए गए हैं, जिनका उद्देश्य "पंचायतों, नगरपालिकाओं तथा राज्य विधान सभाओं के माध्यम से विकेन्द्रीकृत प्रजातान्त्रिक नियोजन से वर्तमान संकीर्ण परिवार कल्याण कार्यक्रम को बदलना" है।

सुझाए गए परिवर्तन इस प्रकार हैं:

(i) "मातृ, शिशु स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन सेवाओं को स्वास्थ्य के साथ मिलाया जाएगा, जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य के प्रति एक समग्रतावादी तथा व्यापक दृष्टिकोण बनाना है।"

परिवार कल्याण कार्यक्रम को खत्म करके उसके स्थान पर स्थानीय जरुरतों पर आधारित स्वास्थ्य नियोजन एक अच्छा कदम हो सकता है। लेकिन फिर भी सचेत रहना जरुरी है। पिछला अनुभव बताता है कि इस प्रकार के कदमों से आम स्वास्थ्य सेवाओं पर विपरीत असर ही हुआ है और उनकी प्राप्ति और दुर्लभ हुई है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य सेवाओं में भी परिवार कल्याण सेवाओं पर ही अधिक जोर दिया गया है।

साथ ही, प्रारूप में भी फैमिली प्लानिंग को खत्म करने के बदले कहा गया है कि अब यह भूमिका "जिसके दायरे में नीति, नियोजन, नियंत्रण, मूल्यांकन व संचार शामिल है, सामाजिक विकास व जनसंख्या कमीशन के तहत सशक्त किए जाएंगे। इस कमीशन द्वारा लैंगिक समता को जनसंख्या लक्ष्यों से जोड़ा जाएगा व ऐसी नीतियाँ व रणनीतियाँ तय की जाएंगी जिनके चलते सभी दिशाओं में समन्वय हो और आपस में मिलने का सशक्तिकरण हो। पर इस कमीशन में कृषि, उद्योग, श्रम व रोजगार सम्बंधित किसी भी मंत्रालय को शामिल नहीं किया जा रहा है। न ही चौमुखे समन्वय में रोजगार व महिला सशक्तिकरण के वे कार्यक्रम ही शामिल हैं जो अन्य मंत्रालयों द्वारा चलाए जा रहे हैं। मतलब साफ है- कि समन्वय की बात केवल स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्रालय के प्रोग्रामों को ही लेकर की जा रही है। यह तो चौथी पंचवर्षीय योजना से हो ही रहा है और इस समन्वय के चलते स्वास्थ्य के सवाल पर फैमिली प्लानिंग इस कदर हावी हो गई है, कि समझ नहीं आता कि विशेषज्ञ दल फिर वही घिसा पिटा फार्मूला अपना कर क्या हासिल करने की आकांक्षा रखता है।

(ii) "केंद्रीय व राज्य सरकारें किसी भी गर्भ निरोधक विशेष के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं करेंगी।"

यह सही दिशा में एक कदम लगता है। लक्ष्य प्राप्ति के नाम पर लोगों पर जबरदस्ती होना आम बात है। पर ज्यादती रोकने की अपेक्षा यह कह कर "कि सन् 2010 तक प्रति औरत 2.1 बच्चों की दर प्राप्त

करनी है'', मात्र ज्यादती का स्वरुप बदल दिया गया है।

(iii) "गर्भ निरोधक अपनाने पर, अथवा इसके लिए प्रोत्साहित करने के लिए स्वास्थ्यकर्मी को केंद्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली प्रोत्साहन राशि व सामान को बंद कर दिया जाय'' इसके अलावा विदेशी सरकारों अथवा बहुराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा दी गई सभी राशि राष्ट्रीय जनसंख्या व सामाजिक विकास कमीशन के हवाले कर दी जाए। इस राशि का उपयोग ग्राम कस्बे, जिले व राज्य स्तर पर गठित सामाजिक विकास व जनसंख्या समितियों द्वारा बनाई गई योजनाओं के लिए किया जाएगा।

हालांकि प्रोत्साहन राशि बंद करना सही है पर जब सभी लक्ष्यों में से केवल प्रजनन दर कम करने का लक्ष्य ही स्प्ष्ट है जाहिर है कि समूचे फंड का उपयोग जनसंख्या नियंत्रण के लिए अधिक व विकास के लिए कम होगा। जाहिर है स्थिति बदतर ही होगी।

(iv) "जीवन बीमा निगम से संगठित क्षेत्र के मजदूरों तथा उनके परिवारों के समुहिक स्वास्थ्य बीमे के लिए उपयुक्त योजनाऐं तैयार करने के लिए कहा जाएगा।''

ऐसे समय में जब कि आर्थिक नीतियाँ अधिक से अधिक श्रमिकों को असंगठित क्षेत्र में धकेल रही हैं, यह सुझाव विश्वास पैदा नहीं करता।

### (स) सुझाव

सारी सिफारिशें का मुख्य उद्देश्य परिवार को सीमित करना है। बच्चे पैदा होने से रोकने के लिए हतोस्ताहन के सुझाव भरपूर दिए गए है।

(i) विशेषज्ञ दल के अनुसार हरियाणा और राजस्थान के अलोकतांत्रिक और असंवैधानिक पंचायती राज कानून (जिनके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को बच्चों की संख्या के आधार पर अयोग्य घोषित किया जाएगा) पूरे देश के लिए माडल बनने चाहिए, भारत में प्रजनन दर 3.6 मानी गई है, और इसके चलते बड़ी संख्या में औरतों और पुरुषों को सार्वजनिक पदों पर आने से रोका जा सकता है।

(ii) दो से अधिक बच्चे होना संगठित क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए अयोग्यता होगी।

"केन्द्रीय, राज्य सरकारों तथा उनके उपक्रमों की सेवा शर्तों में समुचित संशोधन किया जाएगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उनके कर्मचारियों द्वारा छोटे परिवार के आदर्श को अपनाया जा रहा है।..... प्रोन्नति की नीतियाँ भी ऐसी होनी चाहिए कि छोटे परिवार के आदर्श अपनाने को बढ़ावा मिल सके।''

ये कदम प्रोत्साहन व हतोत्साहन के सिवाय और कुछ नहीं हैं जिन्हें अन्य स्थानों पर विशेषज्ञ दल ने बंद करने की बात की है। चोला बदलने मात्र से मतलब नहीं बदल जाता।

(iii) बाल विवाह के शिकार, यानि कि लडकियाँ जिनका विवाह 18 वर्ष की आयु से पूर्व और लड़को जिनका विवाह 21 वर्ष की आयु से पूर्व हुआ है, को संगठित क्षेत्र में भर्ती से रोका जा सकता है। यह एक असाधारण सिफारिश है क्यूंकि यह परिवार, समुदायों और सरकार की इस कुरीति में भूमिका को नजर अन्दाज करती है जो कानून को सख्ती से लागू नही करते। विशेषज्ञ दल कानून के प्रभावी कार्यान्वयन के बारे में भी कुछ नहीं कहता।

(iv) इसी प्रकार बच्चा गोद लेने की सिफारिश भी विशेषज्ञ दल के अज्ञान की परिचायक है क्यूंकि कई पारिवारिक कानूनों में गोद लेने का प्रावधान नहीं है। 1970 मे ऐसा एक कानून बनाने की कोशिश असफल रही और इस बारे में फिर से कोई प्रयास नहीं किया गया।

### (ड) महिलाओं की स्थिति:

हाँलाकि विशेषज्ञ दल द्वारा सुझाए हतोसाही हथकडे किसी से छुपे नहीं है, शायद यह दल चाहता है कि परिवार नियोजन कार्यक्रम की छवि सकारात्मक रहे, अत: वह यह कहते नहीं थकाता कि औरतों को "चयन''

की स्वतंत्रता दी जाय व उनको समाज में बराबरी का दर्जा दिलाया जाया। उसका यह दावा है कि बगैर "सामाजिक सशक्तिकरण के उपायों" व भेदभाव की सबसे खराब प्रथाओं, जैसे दहेज, भ्रूण हत्या, बालिका वध आदि खत्म करे बिना औरतों की शादी के समय औसत आयु व उनके बीच गर्भनिरोधकों के प्रचलन को बढ़ाया नहीं जा सकता। पर विशेषज्ञ दल ने सरकार व अन्य विशिष्ट वर्गों द्वारा जनसंख्या नियंत्रण में सहायक लिंग निर्धारण, व बालिका वध को दी गई मौन स्वीकृति पर कोई टिप्पणी नहीं की है। कुल मिलाकर विशेषज्ञ दल भी उन्ही समूह का एक हिस्सा है जो जनसंख्या नियंत्रण के लिए औरतों को "व्यक्ति" नहीं बल्कि केवल एक सहायक माध्यम भर मानते हैं। क्या "लैंगिक बराबरी" एक लड्डू है जिसे नारी संगठनों के विरोध को चुप कराने के लिए यह प्रपत्र सामने टँगा रहा है?

"इस शताब्दी के समाप्त होने से पहले महिलाओं के खिलाफ सभी भेद-भाव समाप्त करने के प्रयास किए जाऐंगें। स्कूल में प्रवेश, कौशल निर्माण तथा आय कमाने की क्षमता के बढ़ाने के लिए कदम उठाए जाएंगें। विवाह की आयु बढ़ाने तथा गर्भ निरोधक उपायों को स्वीकार करने में भी यह सहायक होगा।"

ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषज्ञ दल के लिए शिक्षा और कौशल निर्माण का महत्व केवल इसकी 'जनसंख्या नियन्त्रण' में भूमिका से है, न कि सामाजिक विकास के लक्ष्य के रूप में।

### (इ) पंचायत सम्बन्धी सुझाव

नीति के अनुसार संसाधनों की उपलब्धि के आधार पर जनसंख्या नियन्त्रण सम्बन्धी लक्ष्य निर्धारित किए जाएंगे। लेकिन लोगों की जरुरतों के अनुरुप भूमि का बंटवारा, सिंचाई की सुविधाएं इत्यादि के बारे में कोई सुझाव नहीं दिए गए हैं। क्या पंचायत द्वारा किसी अमीर किसान को मंशीन की बजाए मजदूरों का इस्तेमाल करने के लिए कहा जा सकता है? यदि ऐसा नहीं है तो पंचायतें संसाधनों, उपभोग और जनसंख्या के बीच सामन्जस्य कैसे स्थापित करेंगी?

### (फ) सेना की भूमिका के बारे में सुझाव

हम दल के इस सुझाव से विशेष रुप से चिन्तित है कि "सैनिक व अर्ध सैनिक बल छोटे परिवार के आदर्श को प्रोत्साहित करें जैसे भारतीय सेना की इकोलोजिकल बटालियनें, जो देश के विभिन्न हिस्सों में पर्यावरणिक विकृतियों को दूर करने का कार्य करती हैं व ये बल जनसंख्या सीमित भी कराएं।"

### (ज) शिक्षा, अनुसन्धान व संचार माध्यम:

पिछले तीन दशकों में जनसंख्या सम्बन्धी शिक्षा ने मध्यवर्गीय सोच ऐसी बना दी है कि पर्यावरण प्रदूषण गरीबी, बेरोजगारी और अभावों के लिए गरीबों को दोषी मान लिया गया है। इस प्रकार की शिक्षा ने मेडिकल व्यवसाय के नैतिक मूल्यों को नष्ट किया है और जनसंख्या नियन्त्रण के नाम पर जन अधिकारों के उल्लंघन को सम्पन्न वर्ग की सहमति प्रदान की है। इसके बावजूद विशेषज्ञ दल इस संदेश के फैलाने के लिए और संसाधनों की जरुरत की बात करता है। उनके अनुसार, सूचना शिक्षा तथा संचार प्रयास, जनसंख्या नीति के सफल कार्यान्वयन के लिए आधारभूत ढांचा केन्द्र तथा राज्य दोनों में अपर्याप्त है।...जनसंख्या व सामाजिक विकास आयोग कुछेक स्थानों पर विश्वसनीय सूचना का प्रसार करने और विकेन्द्रकृत दृष्टिकोण को प्रोत्साहन, देने के लिए प्रचार संसाधन केन्द्र स्थापित करेगा।"

"जीव-चिकित्सा और समाज-विज्ञानों मे जनसंख्या स्थिरीकरण से सम्बन्धित अनुसन्धान को सशक्त किया जाएगा" हालांकि इस के कुछ उपयोगी परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। हमारे विचार में इस क्षेत्र की अपेक्षा प्राकृतिक संसाधन व्यवस्था और संरक्षण पर अनुसन्धान की अधिक आवश्यकता है।

प्रचार माध्यमों से आज जानकारी नहीं बढ़ाई जा रही वरन् प्रोपगेंडा कर के गर्भनिरोधकों के सम्बंध में गलत फहमी बढ़ाई जा रही है व छोटे सुखी परिवार

के झूठे सपने दिखाए जा रहे हैं। यह सुझाव तो विशेषज्ञ समिति के कुछ सदस्यों के मुद्रित विचारों के भी विपरीत है। वैसे हमें नहीं मालूम कि शिक्षा व संचार के नाम पर इसी बात को और जोर से दोहराने का किसे फायदा है?

### (एच) गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी

सरकारी, स्वैच्छिक तथा गैर-सरकारी संगठनों के बीच साझेदारी का एक नया वातावरण तैयार किया जाएगा ताकि जनसंख्या स्थिरीकरण और सामाजिक विकास के राष्ट्रीय कार्यक्रम में सभी चरणों और सभी स्तरों पर इन संगठनों की अधिक भागीदारी के बढ़ावा मिल सके। जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए इन संगठनों को वित्तीय व तकनीकी सहायता दी जाएगी। जनसंख्या व सामाजिक विकास फन्ड में से गैर सरकारी संगठनों को पैसा दिया जाएगा। इस प्रकार द्विपक्षीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय दाता अभिकरण गैर सरकारी संगठनों को पैसा देकर अपनी पहुँच और पैनी कर लेंगें। राजसत्ता स्पष्ट रुप से स्वैच्छिक संगठनों के प्रति जनता की सद्भावना का इस्तेमाल सरकारी कार्यक्रमों को मनवाने के लिए कर रही है क्यूँकि अन्यथा उन्हें आसानी से स्वीकार नहीं किया जाएगा। सरकार की इस तरह की चेष्टाओं से स्वैच्छिक क्षेत्र को सचेत रहने की जरुरत है।

### (आइ) पैसे के स्रोत (फन्ड)

"जनसंख्या और सामाजिक विकास निधि की आय के निम्नलिखित स्रोत होंगे:

(i) प्रोत्साहनों पर इस समय व्यय की जा रही धनराशियों सहित भारत सरकार की निधियाँ

(ii) दूसरी सरकारें

(iii) प्रतिष्ठान, बहुपक्षीय दाता तथा यू०एन०एफ०पी०ए० सहित संयुक्त राष्ट्र की एजेन्सियाँ

(iv) सहकारी क्षेत्र तथा कम्पनियाँ

(v) अनिवासी भारतीयों तथा विदेशी नागरिकों का स्वैच्छिक योगदान।"

सारी विदेशी सहायता को किसी एक निगम के हाथ में दे देने का अर्थ है जनसंख्या नियन्त्रण के आगे सामजिक विकास के लक्ष्यों का गौण बन जाना। बाहर के पैसे के इकट्ठा हो जाने से उन दाताओं का प्रभुत्व भी बढ़ जाएगा जो पहले से ही जनसंख्या नियन्त्रण पर जोर दे रहे हैं। ऐसे में शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरी सामाजिक सेवाओं के लिए पैसे की और कम हो सकते है।

### (जे) गर्भ निरोधक और चिकित्सा सेवाएं:

नीति में पुरुष गर्भ निरोधकों पर जोर दिया गया है, यह एक सही कदम है। लेकिन साथ ही 'सूचित चुनाव' के बहाने से सभी प्रकार के गर्भ निराधकों के भारत में प्रवेश के निर्णय से सहमत होना मुश्किल है।

विशेषज्ञ दल के अनुसार "भारत में गर्भ निरोधक तरीकों के परिवार कल्याण कार्यक्रम में प्रचलन के लिए उनकी निरापदता, प्रभावकारिता, विश्वसनीयता तथा स्वीकार्यता की जाँच के लिए एक सक्षम वैज्ञानिक ढांचा है।" वैज्ञानिक ढांचे में यह विश्वास बेबुनियाद सा है। उदाहरण के लिए इण्डियन काउँसिल फॉर मेडिकल रिसर्च जैसे "सक्षम वैज्ञानिक ढांचे" ने केवल नॉरप्लान्ट-2 गर्भ निरोधक के परीक्षण के बाद, उसी जानकारी के आधार पर नॉरप्लान्ट-6 को प्रचालित करने की कोशिश की, जिसपर परीक्षण नहीं हुए थे क्योंकि नॉरप्लान्ट-2 अब बाजार में उपलब्ध नहीं था। इस अनैतिक और अवैज्ञानिक कदम को दिल्ली के महिला संगठनों की कोशिश से ही रोका जा सका।

इस बात का आश्चर्य है कि विशेषज्ञ दल ने भारत जैसे गरीब देश में विभिन्न तकनीकों के औचित्य का पूरा विश्लेषण नहीं किया। उदाहरण के लिए, एक नॉरप्लांट की कीमत रु. 2000/-. है जोकि किसी उप-स्वास्थ्य केंद्र में शामिल 5000 की आबादी के लिए दवाइयों का बजट है। विदेश से आने वाले डेपा-प्रोवेरा के एक इंजेक्शन की कीमत 50 अमरीकी डालर या 6000 रुपया प्रति औरत सालाना है। इतने मंहगे गर्भनिरोधक अधिकतर लोगों की पहुँच से बाहर हैं। यदि स्वास्थ्य

विभाग द्वारा ऐसे मंहगे नये निरोधक उपलब्ध कराए जाते हैं तो इस का असर जरुरी दवाओं की उपलब्धि पर पड़ेगा।

भारत में इतने साधन नहीं है कि सभी प्रकार के गर्भ निरोधक तरीकों पर अनुसंधान हो सके।

हर प्रकार का अनुसंधान करना उतना ही बेतुका है जैसे भुखमरी में रहने वालों को रेस्तराँ का मेनू कार्ड हर वक्त पकड़ा देना। नए-नए गर्भ निरोधकों को सरकारी कार्यक्रम में शामिल कर देना ठीक नहीं है विशेषकर जब सरकारी शोध कह रही है कि सेवाओं में सुधार मात्र से मौजूदा गर्भ निरोधकों का इस्तेमाल काफी बढ़ सकता है।

यह कहना जरुरी है कि बच्चों की संख्या सिर्फ गर्भ निरोधकों पर आधारित नहीं है, जब भी लोगों के आर्थिक हालात सुधरे हैं व जीवित रह पाने की सम्भावनाएँ बढ़ी है जन्मदर अवश्य कम हुई है। आज भी भारत के विभिन्न राज्यों की जन्म दर व गर्भ निरोधक इस्तेमाल करने वाले दम्पत्तियों की संख्या में कोई स्पष्ट सम्बंध नहीं है।

**(के) उद्देश्य:** विशेषज्ञ दल ने अपनी रपट में सामाजिक विकास के लक्ष्यों को अंत में जगह दी है। ऐसा जान पड़ता है कि जैसे ये जबरन् जोड़ दिए गए है। और इनका मुख्य सुझावों से कोई लेन-देन नहीं है। हाँलाकि यह कहा गया है कि न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम पूरी प्रायमरी शिक्षा, बाल विवाह में कमी, बाल व मातृ मृत्यु दर में कमी लायी जाय- इन लक्ष्यों को राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त काने की कोई वयवस्था नहीं की गई है। जीविका का सवाल तो पूरी नीति के दायरे से बाहर ही है। हमारी राय में तो उचित पारिश्रमिक पर समाज के लिए काम आने वाला परिश्रम ही सामाजिक विकास की बुनियाद है।

आत्मनिर्भरता के मूल्य व विश्व बैंक से लिए जा रह ऋण के बीच कभी मेल नहीं हो सकता। साथ ही शोषण के कुछ आयामों के प्रभुत्व के समाप्त हुए बगैर बराबरी व साझे सामाजिक लक्ष्यों के लिए काम नहीं किया जा सकता। ये सब बातें इस रिपोर्ट से पूरी तरह गायब हैं।

हाँलाकि हम न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में बच्चों की देख-भाल के शामिल किए जाने का स्वागत करते हैं। यह बात गौरे तलब है कि इस कार्यक्रम से असमानता की खाई को पाटा नहीं जा सकता। समानता के लिए संसाधनों व सत्ता का बंटवारा सही ढंग से होना चाहिए।

अभी यह अभियान खत्म नहीं हुआ है क्योकि यह नीति अभी संसद द्वारा पारित नहीं हुई है। हमने कुछ सांसदों से मिलकर इस मामले में राय बनाने की चेष्टा की है- अगर आप भी हमसे सहमत हैं तो हम आपको अपने सांसद से समर्थन पाने के लिए हस्ताक्षर अभियान की चिट्ठी भेजेंगे।

■■■■

# दमनकारी जनसंख्या नियंत्रण - भुक्तभोगियों की कहानी खुद की जुबानी

"छोटा परिवार सुखी परिवार"- इस नारे से बच पाना मुश्किल है। सरकार का यह प्रचार और इसमें निहित झूठे वायदे दूर दराज के गाँवों तक पहुँच चुके हैं। सितम्बर 1994 में जनसंख्या और विकास पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान 10 सितम्बर को दिल्ली के ग्रुपों ने मिलकर भुक्तभोगियों की आवाज सुनाने के लिए एक सभा बुलाई। सभा में सहेली समेत जागोरी सबला संघ व ह्यूमन राइट्स ट्रस्ट ने भाग लिया।

इस सभा का उद्देश्य था, जमीन की सच्चाई व औरतों के भोगे यथार्थ द्वारा सरकारी जनसंख्या नीति का

पर्दाफाश करना। जब हमारी सरकार विश्व की वाह-वाही बटोरने में व्यस्त थी, तब उसकी नीति का जन-विरोधी व नारी-विरोधी स्वरुप उजागर करना आवश्यक था।

कुछ औरतों ने स्वयं अपनी कहानी सुनाई और कुछ की व्यथा का बयान बस्ती स्तर पर काम कर रही औरतों ने किया।

**संतोष:** 23 साल की संतोष दो बच्चों की माँ है। वह सीमापुरी में रहती है व उसका पति गृह मंत्रालय में चपरासी की नौकरी करके 1500 रु. महीना कमाता है। यह सोचकर कि, परिवार छोटा रहने से वह खुश रहेगी, उसने अप्रैल 1992 में स्थानीय स्वास्थ्य केंद्र में जाकर कॉपर टी लगवा लिया। अगले महीने उसे माहवारी में बहुत खून गया, फिर दो महीनों तक माहवारी ही नहीं हुई। क्योंकि पहले उसकी माहवारी समय पर हुआ करती थी वह चिंतित हो गई और अस्पताल गई। वहाँ उसे पता चला कि उसके गर्भ ठहर गया था। डाक्टर ने उसे सलाह दी कि वह गर्भपात न कराए क्योंकि चार महीने गुजर चुके थे। सवाल यह उठता है कि इस तीसरे बच्चे का भार कौन उठाएगा? अपना लक्ष्य पूरा करने के लिए स्वास्थ्य केंद्र के डाक्टर ने कापर टी तो लगा दी थी पर अब डाक्टर की कोई जिम्मेदारी नहीं बची थी।

**बिल्लोरानी:** भंदावर गाँव, जिला जयपुर की निवासी बिल्लो रानी की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। तीन लड़कों के बाद उसने परिवार नियोजन कैम्प में जाकर नसबंदी करा ली थी। इसके पूरे पाँच साल बाद अपने आप को गर्भवती पाकर उसे बड़ा धक्का लगा। आपरेशन फेल होने की जिम्मेदारी किसकी है?

**नत्थो देवी:** 19 साल की नत्थो देवी के पति का सरकारी कर्मचारियों ने जबरदस्ती नसबंदी का आपरेशन कर दिया। अजीब विडम्बना थी, कि यह आपरेशन फेल हो गया और नत्थो को दो बच्चे हुए। पर सरकारी लापरवाही नत्थो के लिए बड़ी मँहगी साबित हुई। हर जगह उसके चरित्र पर कीचड़ उछाला गया क्योंकि, सब सोच रहे थे कि बच्चे उसे पति से तो अब हो

ही नहीं सकते थे। वह मानसिक रूप से पूरी तरह से टूट गई। इसका जवाबदेह कौन है, कौन उसके मोहल्ले में जाकर उस पर लगा कलंक मिटाएगा?

**भगवान देवी:** सिर्फ 20 साल की उम्र में उसका शरीर लगातार खून जाने से कंकाल होकर रह गया है। दो बच्चों के बाद उसने कस्तूरबा गाँधी अस्पताल में जाकर नसबंदी करा ली थी। पर साल भर बाद पता चला कि ऑपरेशन फेल हो गया है क्योंकि, उसे बच्चा ठहर गया। गर्भपात करके उसकी फिर नसंबदी कर दी गई। दूसरा आपरेशन भी फेल हुआ और उसके फिर गर्भ ठहर गया। इस असफलता को भगवान की देन मानकर उसने दुबारा गर्भपात नहीं कराया बल्कि बच्चा पैदा कर लिया। तब से उसे बार बार खून जाता है व पिछले तीन महीनों से लगातार जा रहा है।

**आशा:** पैंतीस साल की उम्र में उसने अपने श्रमिक पति के साथ मिलकर फैसला लिया कि, चार बच्चों के बाद अब उसे और बच्चे नहीं चाहिए थे। दिल्ली के ही बाड़ा हिन्दू राव अस्पताल में डा. अलका ने 1990 में यह आपरेशन किया। पर आशा का आपरेशन

फेल हो गया और उसके दो बच्चे और हुए। पर दुविधा इस बात की है कि, आपरेशन के बाद से उसकी माहवारी भी बंद है और वह आसानी से अपनी गर्भावस्था को पहचान भी नहीं पाती है।

**शांति:** शांति की कहानी से नसबंदी कैम्पों की अमानवीय हालत बखूबी बयान होती है। नोएडा, उत्तर प्रदेश में कैम्प के डाक्टरों ने यह विश्वास करने से मना कर दिया था कि वह गर्भवती है। बगैर सुन्न किए हाथ पैर बाँधकर, मुँह में कपड़ा ठूसकर उसकी नसबंदी कर दी गई। नतीजन शांति के पेट में पल रहा 6 महीने का गर्भ गिर गया। साथ ही, नसबंदी के बाद से उसे लगातार पीठ में दर्द व सफेद पानी की शिकायत रहती है।

**मीना:** 40 साल की मीना का कहना था कि, उसका पति एक अच्छा आदमी था व उसके साथ अच्छा व्यवहार करता था। दूसरी औरतों के पतियों की तरह मार-पीट, झगड़ा कुछ भी नहीं करता था। उसके पति ने सन् 1975 में नसबंदी करा ली थी, पर इसके बावजूद साल भर बाद मीना को गर्भ ठहर गया था। अपने जैसी दूसरी औरतों से बात करके उसे पता चला कि, सरकारी तंत्र के हाथों कइयों का यही हश्र हुआ था। मीना का सन् 1981 में भी एक बच्चा हुआ। अब उसने निश्चिंत होने के लिए खुद की भी नसबंदी करा ली। पर नसबंदी के बाद से ही उसकी माहवारी गड़बड़ा गई है जिसके कारण वह आसानी थक जाती है व पहले जैसी कड़ी मेहनत के काबिल नहीं रह गई है।

इन सभी आपबीतियों से साफ है कि, परिवार कल्याण के नाम पर सरकार सिर्फ जनसंख्या नियंत्रण के लक्ष्य पूरे करती है। इस बात की उसे कोई चिंता नहीं है कि उसकी लापरवाही का औरतों की जिंदगी पर क्या असर पड़ता है।

कैम्प की गंदगी, वहाँ आए लोगों के साथ दुर्व्यवहार, विभिन्न गर्भ निरोधक उपायों के खतरे छुपाना - साफ दर्शाता है कि सरकार परिवार कल्याण नहीं वरन् जनसंख्या नियंत्रण में ज्यादा रुचि रखती है।

इन औरतों का कहना था कि, सरकार औरतों के बच्चे न चाहने का गलत फायदा उठा रही है। बार-बार ऑपरेशन कराना इस बात का सबूत था कि औरतें और बच्चे नहीं चाहती थीं, पर बार-बार नारा देने वाली सरकार उन्हें यह सुविधा देने में अक्षम थी। इस बैठक का निष्कर्ष था कि, सरकार निरापद गर्भ निरोधक उपलब्ध कराए व नारी आंदोलन प्रचलित उपायों के विरुद्ध अभियान चला कर उनके खतरे उजागर करे।

■■■■

# लिंग जांच व चुनाव विरोधी अभियान नए विधेयक का विश्लेषण

19 नवम्बर 1994 को कई महिला एवं अन्य जनसंगठनों ने अनेक डाक्टरों और नीम-हकीमों द्वारा लिंग-जांच और लिंग-चुनाव के तरीकों के गलत इस्तेमाल के विरुद्ध दक्षिण दिल्ली में प्रदर्शन किया। पुत्र-प्राप्ति की इच्छा में, स्त्री भ्रूणों के गर्भपात से जनसंख्या के लिंग-अनुपात पर भी असर पड़ रहा है और लड़कियों की संख्या लड़कों से कम होती जा रही है। इस पर चिन्ता व्यक्त करते हुए, प्रदर्शन में शामिल महिलाओं ने विभिन्न नारे लगाए, जैसे कि - लिंग जांच को रोककर नारी जाति के विनाश को रोको, मुनाफाखोरी खत्म करो न कि नारी जाति, लिंग-जाँच कर अजन्मी बच्चियों को न मारो,

अल्ट्रा-साउंड का दुरुपयोग बन्द करो, इत्यादि। इन चिकित्सा तकनीकों के दुरुपयोग के विरुद्ध जन-चेतना जगाने के उद्देश्य से सड़कों पर यातायात रोक कर पर्चियां बांटी गईं। इस विषय पर सरकारी रवैये को भी उजागर किया गया, जिसके रहते लिंग जाँच और लिंग-चुनाव की विधियों के दुरुपयोग के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया गया है।

गर्भ के लिंग का पता लगाने के लिए विभिन्न चिकित्सा विधियों का इस्तेमाल पिछले कई सालों से विभिन्न महिला संगठनों, मानव-अधिकार संस्थाओं, जन-विज्ञान और स्वास्थ्य समूहों एव अन्य संवेदनशील शिक्षा-शास्त्रियों, वकीलों, डाक्टरों एव पत्रकारों की चिन्ता का कारण रहा है। विभिन्न जांच पद्धतियों जैसे कि, एम्नियोसेंटेसिस और कोरियोनिक विलाय बायॉप्सी का मूल उद्देश्य जन्म-जात विकृतियों का पता लगाना था। पर अब इनका इस्तेमाल वास्तव में, डाक्टरों के व्यावसायिक लाभ के लिए हो रहा है। भारत के विभिन्न हिस्सों में, अधिकतर जननिक क्लिनिक और परीक्षण स्थल लिंग जांच का काम करते हैं, और स्त्री-भ्रूण पाए जाने पर गर्भपात कराया जाता है। पिछले वर्षों में, इस प्रकार के क्लिनिकों की बढ़ती हुई संख्या समस्त नारी जाति के लिए खतरा बन गई है।

इस कुप्रथा के प्रचलन के सही आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु कुछ अनुमानों के अनुसार इनकी संख्या लाखों में है। यह काम कितने मुनाफे का हो गया है इसका अनुमान आंकड़ों से लगाई जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार 1978-82 के दौरान देश भर में 78,000 स्त्री-भ्रूणों का लिंग-जांच के बाद गर्भपात कराया गया। 1986-87 के बीच में लगभग 30,000 से 50,000 स्त्री भ्रूणों की हत्या की गई। 1982-87 के बीच में ऐसे क्लिनिकों की संख्या कई गुना बढ़ गई। केवल बम्बई में ही यह बढ़ कर चौबीस हो गई। 1987-88 के दौरान दिल्ली के सिर्फ 7 क्लिनिकों में लिंग-जांच के लगभग 13,000 केस सामने आए। इस से भी अधिक चिन्ता का विषय है चिकित्सा जगत द्वारा पर्चों, तख्तियों, विज्ञापनों और दीवार-लेखन के माध्यम से लिंग-जांच के तरीकों का प्रचार। लिंग-जांच के लिए अब तो ट्रेनिंग कार्यक्रमों के विज्ञापन भी दिए जाने लगे हैं। अभी तक इस विषय में ऐसा कोई कानून भी उपलब्ध नहीं था जो लड़कियों के प्रति पूर्वाग्रहों को और मजबूत करने वाली इन तकनीकों के दुरुपयोग पर रोक लगा सके।

इन तकनीकों का समर्थन करने वाले डॉक्टरों के अनुसार इनके द्वारा औरतों को पुत्र-प्राप्ति की इच्छा में बार-बार बच्चे पैदा करने से बचाया जा सकता है और अनावश्यक बच्चियों के जन्म को रोक कर बच्चों की संख्या को कम किया जा सकता है। इस प्रकार इन तकनीकों के दुरुपयोग को जनसंख्या-वृद्धि रोकने के लिए काम में लाया जा रहा है। इस प्रकार के कुतर्क भी दिए जा रहे हैं कि औरतों की संख्या कम होने से औरतों का मूल्य अपने आप बढ़ेगा। इस प्रकार का तर्क देने वाले यह भूलते हैं, कि वर्तमान में भी भारत में औरतों की संख्या पुरुषों से कम है लेकिन इससे उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। बल्कि ऐसा देखा गया है कि जिन प्रदेशों में औरतों का अनुपात पुरुषों से काफी कम हैं वहां औरतों के विरुद्ध अत्याचार और अपराध बढ़े हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश और राजस्थान में।

महिला संगठनों के लगभग आठ साल के लगातार विरोध और दबाव के फलस्वरूप, सरकार ने इस समस्या से जूझने के लिए संसद ने पिछले मानसून सत्र में, लिंग-जांच पद्धतियों (नियमन और दुरुपयोग पर रोक) सम्बन्धी विधेयक, 1994 को पास किया है, जिसके नियम बनना अभी बाकी हैं। यह कानून बहुत ही सतही तरीके से लिंग-जांच की समस्या पर विचार करता है। वास्तव में, यह देश में प्रतिकूल जनसंख्या अनुपात को सही करने के लिए एकदम अनुपयुक्त है।

इस कानून के अनुसार लिंग-जांच की तकनीकों का इस्तेमाल पांच प्रकार की असमान्यताओं की जांच के लिए किया जा सकता हैं, जिनमें क्रोमोसोमल

असमान्यताऐं शामिल हैं। विधेयक के अनुसार इन तकनीकों के इस्तेमाल के लिए कुछ शर्तों को पूरा करना जरूरी है, जैसे कि अगर औरत की उम्र 35 साल से ऊपर हो, दो या अधिक बार अपने आप गर्भपात हो जाना, परिवार में मन्दबुद्धि या शारीरिक विकृतियों का इतिहास होना, या गर्भवती स्त्री का दवाओं, विकिरण, संक्रमण, प्रदूषण या रसायनों से प्रभावित होना।

विधेयक के अनुसार, ऐसे सभी जननिक परामर्श केन्द्रों, जननिक परीक्षण केन्द्रों और जननिक क्लिनिकों का रजिस्ट्रेशन/पंजीकरण होना जरूरी है, जो किसी भी प्रकार से लिंग-जांच सम्बन्धी गतिविधियों से जुड़े हुए हैं। लेकिन विधेयक में इन गतिविधियों को रोकने के प्रावधान बहुत ही कमजोर होने के कारण, रजिस्ट्रेशन उल्टे, प्राइवेट क्लिनिकों के नियमन में मदद देगा, जो अपने मुनाफे के लिए यह काम करते रहेंगे। निजी क्षेत्र के डाक्टरों के लाभ के लिए इन तकनीकों के दुरुपयोग को रोकने के लिए सामाजिक संगठनों ने यह मांग की थी कि, लिंग-जांच के लिए काम आ सकने वाले टेस्ट केवल सरकारी अस्पतालों में ही उपलब्ध होने चाहिए। इसके विपरीत, वर्तमान विधेयक निजी क्षेत्र के क्लिनिकों को वैधता प्रदान करता है अत: तकनीक के दुरुपयोग को रोकने में असमर्थ है। केवल यही नहीं, विधेयक अल्ट्रासाउन्ड और इस प्रकार की अन्य आधुनिक मशीनों के रजिस्ट्रेशन को जरूरी नहीं समझता, क्योंकि इनका इस्तेमाल अन्य परीक्षणों के लिए भी होता है। रजिस्ट्रेशन न होने से इन मशीनों के गलत इस्तेमाल का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, यह विधेयक भविष्य में विकसित होने वाली तकनीकों के दुरुपयोग को रोकने की क्षमता नहीं रखता है। वर्तमान समय में, जिस तेजी से तकनीकी विकास हो रहे हैं, उनके चलते इस कमी को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। भविष्य में विकसित होने वाली सभी तकनीकों को इस विधेयक की परिधि में लाया जाना जरूरी है, अन्यथा इस विधेयक की जल्दी ही कोई उपयोगिता न रह जाएगी। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि, विधेयक लिंग-चुनाव की प्रचलित तकनीकों के इस्तेमाल को भी नहीं रोकता है, जो भविष्य में और आसानी से उपलब्ध हो जाएंगी। इस बात पर ध्यान दिलाना जरूरी है कि, यह काम काफी उत्साह से शुरू हो गया है, जिनमें सेडीमेन्टेशन या सेन्ट्रीफ्यूगेशन, एरिक्सन पद्धति, इलेक्ट्रोफोरिसिस शामिल हैं। लिंग-चुनाव के इन तरीकों के इस्तेमाल का स्त्री-पुरुष के अनुपात पर गम्भीर प्रभाव होगा। विधेयक में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए था।

विधेयक का एक बहुत ही आपत्तिजनक पक्ष है- औरत को सज़ा देना। विधेयक के अनुसार, जो भी औरत भ्रूण लिंग जांच करवाती है, वह तब तक दबाव के अन्तर्गत ऐसा करवाने के लिए बाध्य मानी जाएगी और निर्दोष होगी, जब तक कि इसके विरुद्ध प्रमाण न दे दिया जाए। यदि औरत अपनी मर्जी से जांच करवाती है, तो वह दोषी है और उसे सज़ा दी जानी चाहिए। यह प्रावधान औरतों के विरुद्ध ही जाता है। क्योंकि यदि पति और अन्य परिवारजन अपने आप को निर्दोष साबित कर लेते हैं तो औरत को ही सज़ा होगी। यदि हम अपने पूरे सामाजिक व आर्थिक परिवेश पर नजर डालें तो यह प्रावधान तर्कहीन है। यह केवल नारी-विरोधी ही नहीं है, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करता है, जिनमें लिंग-जांच से जुड़ी गतिविधियों को रोकना और अधिक मुश्किल हो जाएगा।

### कमियां और कार्यान्वयन

इस विधेयक में कई अन्य कमजोरियां हैं, जो इसको अत्यन्त प्रभावहीन बना देती हैं। उदाहरण के लिए, विधेयक के अनुसार जो व्यक्ति लिंग-जांच तकनीक का इस्तेमाल करता/करती है वह गर्भवती स्त्री या उसके किसी सम्बन्धी को शब्दों, संकेतों या किसी अन्य तरीके से भ्रूण के लिंग के बारे में नहीं बताएगा। लेकिन विधेयक पति या रिश्तेदारों के अलावा किसी अन्य व्यक्ति (पड़ोसी या दोस्त इत्यादि) को लिंग बताने से नहीं रोकता।

विधेयक केन्द्रीय निरीक्षण बोर्ड के गठन की बात करता है, जो सरकार को लिंग-जांच तकनीकों से जुड़ी नीतियों पर सलाह देगा और कानून को लागू करने में

मदद देगा। समय-समय पर, इस सम्बन्ध में सरकार को परिवर्तन के लिए सुझाव भी देगा। यह बोर्ड जननिक परामर्श केन्द्रों, परीक्षण केन्द्रों और क्लिनिकों में काम करने वाले सभी व्यक्तियों के लिए आचरण संहिता बनाएगा और इसके अतिरिक्त वे सारे कार्य करेगा जो विधेयक में लिखे गए हैं। जैसे कि स्त्री-भ्रूण हत्या और लिंग-जांच के विरुद्ध जन-जागरूकता फैलाना। हालांकि विधेयक बोर्ड के गठन के बारे में विस्तार से बताता है परन्तु साथ ही यह भी कहता है कि बोर्ड की कोई कार्यवाही या निर्णय इस आधार पर अवैध नहीं ठहराया जा सकता कि बोर्ड के गठन में कोई त्रुटि है, या बोर्ड के किसी सदस्य की नियुक्ति में कोई अनियमितता है या बोर्ड की कार्यवाही में कोई अनियमितता है, जब तक कि इसका केस की गुणवत्ता पर कोई असर न हो। यह हैरानी की बात है कि बोर्ड के गठन के बारे में विस्तार से बताने की क्या जरूरत थी, यदि बोर्ड की कार्यप्रणाली में होने वाली अनियमितताऐं चिन्ता का विषय नहीं थीं।

बिल विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में एक या अधिक उपयुक्त अधिकारी/अधिकारीगणों की बात करता है जिनके लिए एक-एक सलाहकार समिति की स्थापना राज्य और केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाएगी। इस उपयुक्त अधिकारी को अधिकार होगा कि वह जननिक परामर्श केन्द्रों, परीक्षण केन्द्रों और क्लिनिकों का रजिस्ट्रेशन करे या इस रजिस्ट्रेशन को स्थगित व रद्द कर दे। ऐसा करने के लिए उसे सलाहकार समिति से परामर्श करना होगा। इसके अतिरिक्त यह जननिक केन्द्रों, परामर्श केन्द्रों और क्लिनिकों के स्तर निर्धारित करेगा। विधेयक के प्रावधानों और नियमों को तोड़ने से सम्बन्धित शिकायतें सुनना और तुरन्त कार्यवाही करना भी उसकी जिम्मेदारी है। इस प्रकार कानून को लागू करने की मुख्य जिम्मेदारी उपयुक्त अधिकारी की है।

बिल में कहीं भी स्थानीय निगरानी समितियां बनाने का प्रावधान नहीं है, जो कानून के प्रभावी कार्यान्वयन में योगदान दे सकें। विधेयक के अनुसार उपयुक्त अधिकारी स्वयं या शिकायत पर किसी जननिक केन्द्र, परीक्षण केन्द्र या क्लिनिक को सुनवाई का पूरा मौका देकर और सलाहकार समिति के परामर्श पर, यदि सन्तुष्ट है, कि कानून या नियम तोड़े गए हैं, तो ऐसे केन्द्र या क्लिनिक का रजिस्ट्रेशन किसी निश्चित समय के लिए रद्द कर सकता है। वह कारण बताओ नोटिस के बिना भी ऐसा कदम उठा सकता है, हालांकि उसे ऐसा करने के कारण लिखित में देने होंगे। ऐसे निर्णय के विरुद्ध केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अपील की जा सकती है। उपयुक्त अधिकारी को कोर्ट द्वारा दोषी पाए गए चिकित्सक का नाम राज्य मेडिकल काउंसिल को बताना होगा, ताकि उचित कार्यवाही की जा सके, जैसे, ऐसे चिकित्सक का नाम पहले अपराध के लिए काउंसिल के रजिस्टर से दो साल के लिए निकाल दिया जाए और दूसरे अपराध पर सदा के लिए। लेकिन यह कार्यवाही कितने समय के भीतर पूरी हो जानी चाहिए, इस बारे में विधेयक में कुछ नहीं बताया गया है। विधेयक के अनुसार, कोर्ट किसी अपराध की सुनवाई तब कर सकते हैं जब उपयुक्त अधिकारी या उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के द्वारा शिकायत दर्ज की जाए। कोई व्यक्ति या सामाजिक संस्था भी इस प्रकार की शिकायत कोर्ट के सामने ला सकती है लेकिन ऐसा करने के लिए उन्हें 30 दिन का नोटिस देना होगा। केवल एक मेट्रोपोलिटन मेजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के न्यायिक मेजिस्ट्रेट ही इस कानून के अन्तर्गत हुए अपराधों पर सुनवाई कर सकते हैं।

यदि इस विधेयक के प्रावधानों का उल्लंघन किया जाए तो उसके लिए सज़ा है। लेकिन विधेयक में कोई न्यूनतम सज़ा तय नहीं है। जो भी व्यक्ति इस कानून का उल्लंघन करेगा, उसे अधिक से अधिक तीन वर्ष की कैद और अधिक से अधिक 10,000 रुपए का जुर्माना होगा। समय ही बताएगा कि यह प्रावधान समस्या से जूझने में कारगर होगा या शिकायत करने वालों को हतोत्साहित करेगा।

**जरूरी बातें**

यह बिल अपने वर्तमान स्वरूप में जनसंख्या में गिरते हुए लिंग-अनुपात (1000 पुरुषों पर 927 स्त्रियां)

को सही नहीं कर सकता। बिल में ऐसे सुधार जरूरी है जो कि इसके व्यावसायिक और व्यापारिक हितों के प्रति झुकाव को रोकें और इसे अधिक संवेदनशील और वृहत बनाएं। कानून की पहुंच इतनी होनी चाहिए कि इसके द्वारा न केवल मौजूदा तकनीकों का नियमन हो वरन् यह स्वत: भविष्य में विकसित होने वाली तकनीकों पर काबू रखने की क्षमता भी हो। कानून में इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि, औरतें अपने दोयम दर्जे के कारण परीक्षण करवाने के लिए मजबूर हैं इसलिए उन्हें पीड़ित समझा जाए, अपराधी नहीं। लिंग जांच सम्बन्धी तकनीकों के क्षेत्र में बढ़ते हुए व्यावसायिक हितों को प्रभावी तरीके से रोका जाए। ऐसा करने के लिए स्थानीय स्तर पर निगरानी समितियों की आवश्यकता है। इनके लिए विधेयक में कुछ संशोधन किए जाने जरूरी हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि, केवल कानून द्वारा इस समस्या का हल हो सकता है। इसके लिए सरकार की उन सभी नीतियों और कार्यक्रमों में बदलाव जरूरी है जो औरतों को पुरुष से निम्न स्थिति में बनाए रखने के लिए जिम्मेदार हैं। उन परिस्थितियों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है जो औरतों के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार और पुत्र प्राप्ति की इच्छा को बढ़ावा देती हैं, केवल समानता पर आधारित न्यायपूर्ण और शोषण रहित समाज में ही इस समस्या का हल निकल सकता है। पर सही कानून इसकी पहली कड़ी है।

■■■■

1992 में हमने अखबारों में पढ़ा कि भारत सरकार बगैर परीक्षण किए डेपो प्रोवेरा नामक लम्बे असर वाले गर्भ निरोधक इंजेक्शन को देश में प्रचलित कराने की कोशिश में थी। इस विषय में पूछताछ करते हुए हमने इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आय सी एम आर) को भी पत्र लिखा व राष्ट्रीय महिला आयोग से भी गुजारिश की कि वह इस विषय में पूछ-ताछ करे। सन् 1991 से खतरनाक गर्भ निरोधकों के विरुद्ध अभियान हम दिल्ली स्थित स्थानीय व राष्ट्रीय संगठनों को साथ लेकर ही चला रहे थे इसलिए ये पत्र भी संयुक्त रूप से ही लिखे गए थे। पर इन पत्रों का हमें जवाब तक नहीं मिला।

बाद में हमें पता चला कि इन पत्रों का कम-से-कम इतना प्रभाव तो हुआ कि डेपो के निर्माता अप जॉन से अर्जी के साथ भारत में की गई शोध माँगी गई। हांलाकि यह सिर्फ एक औपचारिकता थी पर कम-से-कम लायसेंस देने में 10 महीने का विलम्ब अवश्य हुआ। अप जॉन ने अपनी अर्जी में कुल 5 परीक्षणों की रिपोर्ट शामिल की पर इनमें से एक में भी भारतीय औरतों के लिए उपयुक्त मात्रा अथवा इंजेक्शनों के बीच उपयुक्त अंतराल स्थापित करने वाली शोध नहीं थी। न ही इनमें कोई आपसी सामंजस्य था, एक शोध तो गर्भ निरोधक की सफलता से संबंधित न होकर माब गर्भ निरोधक वापरने वाली औरतों के शरीर में मौजूद विटामिन के अध्ययन का बयान कर रही थी, एक अन्य शोध में डेपो प्रोवेरा के साथ डायइथाइल स्टिलबेस्टरोल भी दिया गया था (जी हां वहीं जिसे लेने के बाद हजारों औरतों ने विकलांग बच्चों को जन्म दिया था।) साथ ही ये शोधें 20 साल से भी अधिक पुरानी थी। यहां यह बताना आवश्यक है कि

स्वयं आय सी एम आर को भी डेपो प्रोवेरा, नेट-एन से भी ज्यादा अमान्य था। (नेट-एन के खिलाफ हमने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर रखी है और आय सी एम आर अभी तक निरापदता संबंधी सवालों का जवाब देने में असमर्थ रहा है।) सबसे अजीबो-गरीब बात यह है कि विटामिन के दर्जे पर शोध स्वयं आय सी एम आर द्वारा शुरू की गई थी और इस पर लिखे शोध के पेपर में स्वयं शोधकर्ताओं ने यह लिखा था कि यह शोध बीच में ही रोक दी गई थी क्योंकि भारत में डेपो प्रोवेरा के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगा हुआ था।

शायद आप में से कई को यह मालूम हो कि आजकल स्वास्थ्य व जनसंख्या के मुद्दों पर सरकारी व अंतराष्ट्रीय संस्थाएं आए दिन नारी संगठनों से सलाह-मशविरा करती हैं। संयोग से जैसे ही डेपो प्रोवेरा को लायसेंस देने की बात फिर से उठी भारत सरकार ने भी जून 1993 में नारी संगठनों के साथ मशविरा करने के लिए एक बैठक आयोजित की। मीटिंग की तैयारी में निमंत्रण के साथ-साथ अन्य पेपर भी बांटे गए। इनमें से एक पेपर में नेट-एन, डेपो प्रोवेरा, साइक्लोफेम व नॉरप्लांट का उपलब्ध/प्रचलित गर्भनिरोधक उपायों के रूप में विवरण था। गर्भ निरोधक सूईयों को परिवार नियोजन कार्यक्रम के लिए सुलभ बताया गया था (पेपर के अनुसार सुलभता की वजह थी स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की टीकाकरण के दौरान सूई लगाने की दक्षता)। साथ ही इन्हें कॉपर टी से भी बेहतर बताया गया था क्योंकि प्रजनन मार्ग की बिमारी आम औरतों में काफी व्याप्त है। मीटिंग में भी एक किताब बांटी गई जिसका शीर्षक था "इंजेक्शन के बारे में सवालों के जवाब" जिसे पाप्यूलेशन सर्विसेस इंटरनेशनल ने छापा था।

दो सालों से चल रहे संघर्ष के बावजूद इस विषय पर सक्रिय कई संगठनों को इस बैठक में आमंत्रित नहीं किया गया था। इसके पीछे कोई षडयंत्र नहीं था बल्कि यह इस बात का द्योतक था कि यह मीटिंग सिर्फ नाम के वास्ते बुलाई गई थी व सरकार को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि कौन इसमें शामिल हो- जब तक कि वह यह कह पाती कि परामर्श कर लिया गया है। अतः अन्य संगठनों को आमंत्रित करने की हमारी मांग को तुरंत मान लिया गया। हम अब यह भली-भाँति जानते थे कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा आदेशित ढाँचागत परिवर्तन के चलते, जनसंख्या नियंत्रण के समर्थकों को इतनी शक्ति मिल गई थी कि वे विधि की पूरी अवहेलना कर सकते थे व साथ ही हम यह भी जानते थे कि आय सी एम आर जैसी संस्थाएं, जिनका काम राष्ट्रीय हित में शोध करना था, स्वयं शोध की आवश्यकताओं को टालने में लगी हुई थी। साथ ही नेट एन के केस के कारण औषधि नियंत्रण कानून में बदलाव लाकर, औषधि नियंत्रक को यह छूट दी गई थी कि वह जब चाहे शोध के तीसरे व चौथे चरण को करवाए बगैर नई औषधियों को लायसेंस दे सके। सहेली में हमने महसूस किया कि सरकार के साथ यह मीटिंग अब तक की मीटिंगों से भिन्न हो जहां हर समय ऐसा न लगे कि सहेली ही विरोध का केंद्र बिंदू है और बाकी सब संगठन सहेली की बात चुपचाप मान रहे हैं। इसलिए मीटिंग के पहले हमने दूसरे संगठनों को विभिन्न तकनीकों पर जानकारी देने के लिए एक सेमीनार आयोजित किया।

इस मीटिंग में सरकार ने बड़ा अजीब रूख अपनाया। उसने साफ कह दिया कि विभिन्न गर्भ निरोधकों का उल्लेख इस बात का संकेत नहीं था कि इन सभी तरीकों को कार्यक्रम में प्रचलित किया जाएगा बल्कि इंजेक्शन भी डाक्टर के नुस्खे पर खुले बाजार में ही उपलब्ध होंगे। पर इस कथन का भारत के बदलते माहौल में कुछ महत्व नहीं है क्योंकि सरकार अपनी काम, परिवार नियोजन समेत, सीमित करके उसे स्वैच्छिक संगठनों व प्राइवेट डाक्टरों को सौपे दे रही है। जब साफ-साफ डेपो प्रोवेरा के प्रचलन का सवाल पूछा गया तो परिवार नियोजन विभाग के सचिव ने सिर्फ इतना कहा कि चालू वित्तीय वर्ष में तो इसे सरकारी कार्यक्रम में शामिल करने का इरादा नहीं है - यह बात भी कुछ मायने नहीं रखती है।

मीटिंग से कुछ नतीजा न निकलने पर हमने मंत्री को एक ज्ञापन दिया जिसमें न सिर्फ इंजेक्शनों पर रोक लगाने की बात की गई बल्कि नॉरप्लांट व उर्वरता विरोधी टीके व इन्हें प्रचलित करने के लिए शुरू की जा रही गैर चिकित्सीय वितरण प्रणाली का विरोध भी शामिल था। इस दौरान हमें यह भी पता चला कि गर्भ निरोधक इंजेक्शन सरकार के हर पर्चे का अभिन्न अंग बन चुके थे। नवंबर 1993 में जनसंख्या नीति पर आयोजित एक मीटिंग में हमने आय सी एम आर के डायरेक्टर जनरल से डेपो के विषय में कुछ जवाब माँगे। यही वह संस्था है जिसने अब तक यह रूख अपनाया था कि नए गर्भ निरोधकों का भारत में परीक्षण किया जाना आवश्यक है। हमने उन्हें पूछा कि अगर उनकी यह समझ थी तो उन्होंने किस आधार पर डेपो की सिफारिश की थी। वे इस बात को हमें समझा तो न सके पर उन्होंने यह माना अवश्य कि उन्होने सिफारिश थी। पर साथ ही उन्होने हमें यह कहकर बरगलाया कि उनकी सिफारिश मानने से भारत सरकार की तकनीकी सलाहकार कमेटी ने इंकार कर दिया था। हम भी इस झूठ से बहकावे में आ गए क्योंकि बाद में जाकर पता चला कि डेपो को जुलाई 1993 में अर्थात् मीटिंग से कई महीने पूर्व ही लायसेंस दिया जा चुका था। पर यह बात आय सी एम आर ने एक आमसभा में की थी इसलिए हमारा विरोध भी ढीला पड़ गया और अभियान में अप्रैल 1994 तक कोई पहल नहीं की गई। अप्रैल में जाकर हमें बम्बई के ग्रुपों से खबर मिली डेपो प्रोवेरा को बाजार में प्रवर्तित किया जा रहा है।

यह समारोह मेक्स फार्मा, डेपो के वितरक, ने बम्बई में आयोजित किया, वहां के नारी संगठनों ने इस मौके पर पहुंच कर प्रदर्शन किया। यह डेपो प्रोवेरा की ही नहीं उसके विरुद्ध अभियान की भी शुरुआत थी। हमें बताया गया कि दिल्ली में भी ऐसे ही समारोह का आयोजन होना है। अत: हमने दिल्ली के नारी संगठनों की बैठक बुलाई। इस मीटिंग में अधिक लोग शामिल नहीं हुए जिससे हम निरोत्साहित भी हुए क्योंकि कम्पनी ने अपनी ताकत दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अपनी मीटिंग में हमें यह भी पता चला कि डेपो के साथ-साथ ही जर्मन रेमेडीज़ नामक कम्पनी का नेट-एन भी बाजार में आ गया था, पर जर्मन रेमेडीज ने अपना काम काफी चुप-चाप किया था और यहाँ तक कि स्वयं औषधि नियंत्रक को भी इसकी कोई जानकारी नहीं थी जैसा उन्होंने अपनी चिट्ठी में हमें लिखा।

मीटिंग में उपस्थिति कम होने के कारण हमने अपना अभियान भी सिर्फ एक चेन लेटर (पत्र श्रृंखला) से शुरू किया। यह पत्र इस अंक में शामिल है ताकि पाठक भी इस अभियान में जुड़े। चेन लेटर से हमारा उद्देश्य यह था कि हर व्यक्ति अपने सात जानकारों तक डेपो प्रोवेरा के खतरों की जानकारी पहुंचाए व खुद भी बार-बार लिखकर सभी दुष्परिणाम याद कर ले।

मेक्स फार्मा ने भी हमें गुमराह करने की भरपूर कोशिश की। उन्होंने अपना प्रचार करने वाली कम्पनी मुद्रा डाइवर्सिफाइड को हमारे पास भेजा ताकि हम बात-चीत में उलझे रहे और वे अपना काम करते जाएं। हम उनसे सार्वजनिक बहस के लिए मीटिंग करने की बात कर रहे थे और इसके लिए समय तय होने के इंतजार में थे। हम मेक्स फार्मा को तो जिम्मेदार मानते ही थे पर अभी हमारा मुख्य उद्देश्य सरकारी तंत्र से जवाब पाना था अत: हम एक प्रतिनिधि दल बनाकर मंत्री से मिले। मंत्री जी ने इस मामले में अपनी पूरी अनभिज्ञता जाहिर की व हमें मंत्रालय के सचिवों के पास भेज दिया। हांलाकि ड्रग कंट्रोलर स्वास्थ्य विभाग का अंग है, स्वास्थ्य सचिव भी इस मामले में पूरी तरह अनभिज्ञ थे। परिवार कल्याण सचिव ने तो यहां तक कह दिया कि लायसेंस व डेपो प्रोवेरा के केमिस्टों के पास आने से उनका कुछ लेना-देना नहीं है। इस पर हमने उनसे पूछा कि फिर उनके विभाग ने डेपो व नेट-एन के संबंध में इतनी प्रचार सामग्री क्यों छापी है, इस पर वे निरुत्तर हो गए।

स्वास्थ्य सचिव ने थोड़ ज्यादा सवेदनशील रवैया अपनाया और हमें विश्वास दिलाया कि वे औषधि नियंत्रक से

पूरी जानकारी ले कर हमें देंगे। बाद में हमें पता चला कि उन्होंने अपना वायदा पूरा किया और शायद इसी पहल के कारण बाद में औषधि नियंत्रक हमसे मिलने को तैयार हुए। पर आश्वासन मात्र पाकर हम चुप बैठने वाले नहीं थे और निरंतर फोन पर औषधि नियंत्रक से मीटिंग तय करने की कोशिश करते रहे, हांलाकि न तो उन्होंने हमसे फोन पर बात की न ही कभी हमारे फोन का जवाब दिया। लम्बे इंतजार के बाद हमें उनसे मीटिंग करने का एक ही तरीका नज़र आया- जाकर हम उनका घेराव करे। अंततः 50 औरतें मंत्रालय के सुरक्षा घेरे को तोड़कर औषधि नियंत्रक के दफ्तर में जाकर बैठ गई और उनके आने का इंतजार करने लगी। घंटों इंतजार के बाद जब वे अंदर आए तो उन्होंने पहले तो बड़ा कड़ा रवैया अपनाया पर जल्दी ही वे हमें वह जानकारी देने के लिए तैयार हो गए जो लायसेंस देने का आधार थी। इस विषय में 13 मई 1994 को मिलना तय हुआ।

इसी बीच हमारे कुछ पत्रकार दोस्तों से हमें पता चला कि मैक्स फार्मा के प्रतिनिधि डेपो प्रोवेरा के बारे में "गलतफहमियां" दूर करने के लिए 12 मई 1994 को एक प्रेस कांफ्रेस आयोजित कर रहे हैं ताकि अब तक छपी बुरी खबर का असर खत्म हो। हमने तय किया कि प्रेस को डेपो प्रोवेरा की असलियत बताने का यह एक अच्छा मौका होगा कि कैसे डेपो प्रोवेरा को लायसेंस देने के लिए कानून-कायदे को नजरअंदाज कर दिया गया था और कैसे औरतों के स्वास्थ्य की बलि देकर मुनाफा कमाने की योजना बन रही थी। पर प्रेस कांफेस के स्थल पर मुद्रा डायवर्सिफाइड के कर्मचारियों ने हमें धुसने से रोकने की कोशिश की और हमें दीवार लांघकर इस मीटिंग में जाना पड़ा। हमने भी पहले से ही भांप रखा था कि हमारा विरोध होगा ही इसलिए हमने समाचार पत्रों के कुछ फोटोग्राफर बुला रखे थे। आखिर फोटो छपने के डर से ही मुद्रा डायवर्सिफाइड की औरतें पीछे हटी अथवा वे गेट को धक्का देने में लगी हुई थीं।

प्रेस कांफ्रेस में घुसने के बाद हमने कई तकनीकी सवाल उठाए। डेपो प्रोवेरा के "गुणों" के बारे में हमें विश्वास दिलाने के लिए मुद्रा डायवर्सिफाइड के प्रतिनिधि अनजाने में हमें अमरीका में छपा पैकेज इनसर्ट पकड़ा चुके थे, और डेपो प्रोवेरा की हिमायती परिवार सेवा संस्था से हमें भोली-भाली नासमझ एशियाई औरतों के लिए छापी गई हिंदी में जानकारी मिल चुकी थी- हमारी प्रेस विज्ञप्ति दोनों जानकारियों के अंतर पर आधारित थी- कैसे हिंदुस्तानी औरतों को अंधेरे में रखा जा रहा है और कैसे अमरीकी औरतों को पूरी जानकारी देने की कोशिश है।

जानकारी में फर्क देखकर सभी हैरान थे। मैक्स फार्मा के प्रतिनिधियों ने कोशिश की कि हम फसादी औरतें लगें अतः उन्होंने हमारे प्रश्नों का उत्तर देने में बड़ी उत्सुकता जताई। पर उनका आत्मविश्वास क्षणिक था। हमने पूरे 13 सवाल उठाए- उपयुक्त मात्रा तय करने से शुरू होकर दीर्घकालिक विपरीत असर तक जिनका भली भांति जवाब देकर ही डेपो की उपयुक्त व निरापद ठहराया जा सकता था। हमने उनसे भारतीय शोध का निष्कर्ष भी मांगा जो वे देना ही नहीं चाहते थे क्योंकि सिर्फ उन्हें ही मालूम था कि यह शोध कितनी अर्थहीन है हमने तो इसके दस्तावेज अभी तक देखे भी नहीं थे। इस सवाल-जवाब के दौरान प्रेस के प्रतिनिधियों को यह स्पष्ट हो गया कि हम बकवास नहीं कर रहे थे वरन् ठोस सवाल पूछ रहे थे जिनका मैक्स फार्मा के पास कोई जवाब नहीं था। इस वाद-विवाद से प्रेस में हमारे संघर्ष को नए शुभचिंतक मिले व डेपो प्रोवेरा के विवाद को अखबार के प्रथम पृष्ठ पर स्थान मिला। मैक्स फार्मा के प्रतिनिधियों ने विश्व स्वास्थ्य संगठन की कैंसर पर रपट का सहारा लेना चाहा- पर इस विषय में सही तथ्य पेश करते हुए हमने स्पष्ट किया कि कैंसर तो अनगिनत चिंताओं में से एक है। उन्होंने लायसेंस मिलना ही डेपो की निरापदता का प्रमाण मनवाना चाहा पर हमने भारत में सही परीक्षण न होने की बात कही। आखिर 4.5 घंटे चली बहस के बाद मैक्स फार्मा के प्रतिनिधियों ने अपने हाथ खड़े करते हुए कहा कि "अगर आप विश्व

स्वास्थ्य संगठन व औषधि नियंत्रक की सत्ता में ही विश्वास नहीं करते तो हम आपको विश्वास दिलाने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते।'' इस पर हमने उनका ध्यान कम्पनी के सामाजिक दायित्व की ओर खींचा और कहा कि अगर वे डेपो प्रोवेरा के भारत में प्रचलन को तर्क संगत साबित नहीं कर सकते तो उन्हें स्वैच्छिक रूप से उसे बेचना बंद कर देना चाहिए। हमने उनसे वह जानकारी भी मांगी जो वे उपभोक्ताओं को देने वाले थे पर वे इसे देने में विफल रहे। पर उन्होंने हमें भारतीय शोध पर छपे दस्तावेज अवश्य दे दिए क्योंकि हम इन परीक्षणों की पद्धति इत्यादि को लेकर कई सवाल उठा रहे थे जिनका जवाब वे इसलिए नहीं दे पा रहे थे क्योंकि उन्होंने स्वयं ढंग से उन दस्तावेजों का अध्ययन नहीं किया था। दस्तावेज हमें देकर उन्हें ऐसा लगा कि वे प्रेस के सामने पारदर्शी नजर आएंगे व मीटिंग को खत्म कर सकेंगे क्योंकि उनकी निरुत्तरता अब उनके लिए शर्म का कारण बनती जा रही थी।

इस प्रेस कांफ्रेस को अखबारों में अच्छी जगह मिली। हमारे दीवार लांघने की बुराई अवश्य की गई पर हमारे तर्कों को सही करार दिया गया। दीवार लांघने की बुराई इसलिए की गई कि यह औरतों को शोभा नहीं देता व ऐसा करके हमने एक कम्पनी के कार्य में खलल डाला था। हमें बुरा कहने वाले यह भूल गए, कि कम्पनी का कार्य उस समय अपनी काली करतूत पर पर्दा डालकर भारतीय औरतों के स्वस्थ्य जीवन जीने के अधिकार का हनन करना था। और अगर हम वाकई मुद्रा डायवर्सिफाइड को सच मानकर एक लोकतांत्रिक खुली बहस का इंतजार करते रहते तो कम्पनी हमें मुगालते में डालकर अपनी एकतरफा प्रचार करती रहती। इसी प्रकार अगर हम औषधि नियंत्रक से भी फोन अथवा चिट्ठी द्वारा मुलाकात का वक्त मांगते रहते पर धरना न देते तो शायद नेट-एन व ईपी फोर्ट के केसों की तरह (जिनमें उन्होंने 8 वर्ष तक सर्वोच्च न्यायालय तक को दर्शन नहीं दिए) चुप्पी साधे रहते।

औषधि नियंत्रक के साथ मुलाकात अगले दिन के लिए तय थी। पर वे शायद मैक्स फार्मा के सम्पर्क में थे व उन्होंने बगैर सूचना के अंतिम समय पर मीटिंग को कैंसल कर दिया। जाहिर है कि मुलाकात तय करते वक्त वे अज्ञानी औरतों से भेंट के लिए तैयार थे पर वे ऐसी औरतों का सामना नहीं करना चाहते थे जो जानती थीं कि वे क्या कह रही थीं। हमने उनसे मुलाकात का समय फिर तय करने के लिए एक चिट्ठी लिखी। उनके दफ्तर ने यह पत्र लेने से ही इंकार कर दिया। आखिर स्वास्थ्य सचिव के निजी सहायक ने हमारी दुविधा खत्म की और हमें औषधि नियंत्रक को चिट्ठी पहुंचाने के लिए पहले स्वास्थ्य सचिव को पत्र लिखना पड़ा। जब औषधि नियंत्रक के दफ्तर के लोग हमारे लिए अड़चन पैदा कर रहे थे तो हमारी मदद के लिए उसी बिल्डिंग में काम करने वाले एक अफसर आए व हमारी चिट्ठी लेकर स्वयं अंदर गए। उनके साथ सिर्फ दुर्व्यवहार ही नहीं हुआ बल्कि 'स्वागत कक्ष के कर्मचारियों को भी हमारे सहयोगी को अंदर जाने देने के लिए लताड़ा गया (हांलाकि हमारे सहयोगी के पास अंदर घुसने के लिए पहचान पत्र था व स्वागत कक्ष के कर्मचारी उन्हें रोकने की हालत में थे ही नहीं)। वैसे तो इस घटना की हमारे अभियान के लिए ज्यादा अहमियत नहीं है पर इसके माध्यम से हम यह बताना चाहते हैं कि जनप्रतिनिधियों (जो पढ़े-लिखे व सरकारी अफसरों के वर्ग के ही थे) से मिलने मात्र में सरकारी अफसर कितनी बाधाएं खड़ी करते हैं। इस बात की कल्पना करना कतई मुश्किल नहीं कि जिन औरतों के सबलीकरण की बात करते सरकारी दस्तावेज थकते नहीं, उनको सरकार तक पहुंचने में कितने समंदर पार करते पड़ेंगे।

हमारे पत्र का जवाब हमें दो सप्ताह बाद मिला। धरने के दौरान हम कुछ ही सहयोगी संगठनों से सम्पर्क कर पाए थे व 17-18 में से कुल 6 संगठन ही इसमें शामिल हुए थे। सरकारी न्योते में हमें स्पष्ट कहा गया थ कि इनमें से केवल 5 नारी संगठनों के प्रतिनिधि ही इस बैठक में शामिल हों व एक संगठन केवल एक ही प्रतिनिधि भेजे। हमें यह बात कतई

मान्य नहीं थी पर संगठनों की संयुक्त बैठक में तय हुआ कि मीटिंग में जाते समय तो यह बात मान ली जाय पर वहां पहुंचकर अपना विरोध अवश्य जताया जाय। जब हम मीटिंग में पहुंचे तो वाकई हैरान हो गए- दूसरे पक्ष से 20 से भी अधिक लोग मौजूद थे- न सिर्फ मंत्रालय से पर आय सी एम आर, व अन्य विशेषज्ञ समितियों से भी। साथ ही एक और बात चौकाने वाली थी- कई प्राइवेट डाक्टर भी उस कक्ष में मौजूद थे सिर्फ दिल्ली के ही नहीं बल्कि बम्बई के भी।

सरकार ने हमें मीटिंग के लिए बुला तो लिया पर हमारे द्वारा मांगी हुई जानकारी देने की कोई तैयारी नहीं की थी जिसके आधार पर चर्चा हो सकती। सरकार ने अभी यह भी तय नहीं किया था कि इस चर्चा में हमें कितनी मान्यता मिलेगी। पर हमें यह बात स्पष्ट थी कि डेपो प्रोवेरा को लायसेंस देने में देश के सब कायदे-कानून ताक पर रख दिए गए थे और इस गर्भ निरोधक पर रोक लगाना जरूरी था व अपने इस निष्कर्ष के साथ हम कोई भी समझौता करने के लिए तैयार नहीं थे। वहां मौजूद डाक्टरों ने पहले-पहल तो मीटिंग को अपने वश में करने की कोशिश की, ताकि उनका ज्ञान देखकर हम चुप हो जाएं। पर वे यही नहीं जानते थे कि हमने कम-से-कम शोध की जरूरत, तरीकों और नीति शास्त्र का उनसे बेहतर अध्ययन कर रखा था। पर यह बात तो माननी पड़ेगी कि वे जानकार नहीं तो कम से कम चतुर तो हैं ही, क्योंकि जब हमने उनके बयानों को (जैसे हार्मोन से बने हुए इंजेक्शनों की तुलना खाने की गोलियों से करना व अपने अनुभव को वैज्ञानिक शोध कहना) हमने अवैज्ञानिक व गलत ठहरा दिया तो वे जल्दी ही चुप हो गए।

हमने इस मीटिंग की सूचना अखबार वालों को दे दी थी। स्वास्थ्य सचिव ने भी इस बैठक में प्रेस प्रतिनिधियों को बुलाने को कहा था- पर मंत्रालय के दूसरे अफसरों ने मेक्स फार्मा के अनुभव के बाद प्रेस को बुलाना ठीक नहीं समझा। बैठक के दौरान यह कमी पूरी की गई पर फिर भी हमारे द्वारा बुलाए गए संवाददाताओं को आसानी से भीतर नहीं घुसने दिया गया।

बैठक के दौरान भी औषधि नियंत्रक ने अपना असहयोगी रवैया अपनाए रखा। पहले तो उन्होंने यह कहना चाहा कि उदारीकरण के इस दौर में जो चाहे जिस औषधि का आयात कर सकता है और उन्हें सिर्फ 6 प्रतिबंधित दवाओं के आयात पर रोक लगाने का अधिकार है। यह अपने आप में एक गम्भीर समस्या है पर हमने इसके बावजूद अपने सवाल जारी रखे और पूछा कि बाजार में दवा बेचने से पहले उनकी अनुमति आवश्यक है अथवा नहीं। लम्बी बहस के बाद ही वे यह बात मानने को तैयार हुए। हमने उनसे दवाओं के गलत इस्तेमाल के बारे में भी पूछा और यह भी कि दुरुपयोग रोकने में उनकी कोई भूमिका है अथवा नहीं। उत्पादकों के द्वारा दवा के गुण बढ़ा-चढ़ा कर बताने को रोकने के बारे में उनकी भूमिका को स्पष्ट करने की भी हमने कोशिश की। बड़ी बहस के बाद ही वे माने कि दुरुपयोग दूर करना उनका काम है। साथ ही उन्होंने यह भी माना कि दुरुपयोग का प्रमाण लाए जाने वे निर्णायक कदम उठाएंगे। उनके यह बात मानते ही हमने बगैर डाक्टरी नुस्खे के खरीदे हुए इंजेक्शन कैश मैमो समेत उनके सामने रख दिए जिन्हें हमने शहर के जाने-माने केमिस्टों से खरीदा था। यही नहीं एक कैश मैमो पर हमने स्वयं औषधि नियंत्रक पी. दासगुप्ता का नाम लिखवाया था। उस कैश मैमो को देखकर भी औषधि नियंत्रक का रूख नहीं बदला बल्कि वे कहने लगे "मुझे कैसे मालूम कि आपने वाकई किसी और पी. दासगुप्ता के लिखे नुस्खे पर यह इंजेक्शन नहीं खरीदा है।" इस बात से कमरे में मौजूद और कोई व्यक्ति प्रभावित नहीं हुआ। इस समय हमने दूसरे पक्ष को खुला निमंत्रण दिया कि वे हमारे साथ बाजार चलें और बगैर नुस्खे के चाहे जितने इंजेक्शन खुले आम खरीद लें किसी ने हमारी चुनौती को स्वीकार नहीं किया क्योंकि हमारे सबूत को सच मान लिया गया था। ऐसे में झट से औषधि नियंत्रक ने कहा "पर इसमें मेक्स फार्मा की क्या गलती है?" हमने उन्हें

कहा कि वे इतनी जल्दी इस निष्कर्ष पर न पहुंचे और पहले पूरी पूछ-ताछ करे। मेक्स फार्मा को निर्दोष ठहराने के साथ-साथ वे यह भी बोले "आप मुझे कैश मेमो दीजिए मैं इन केमिस्टों के खिलाफ़ कड़ी कार्यवाही करूँगा।" हमने बताया कि केमिस्टों को दण्ड दिलाना इस समय हमारी प्राथमिकता नहीं थी। हमने यह साबित कर दिया था कि बाजार में आने के कुछ ही हफ्तों में इस दवा का व्यापक दुरुपयोग शुरू हो चुका था व इस आधार पर दवा की बिक्री बंद कराना अब उनका काम था। यहां यह कहना जरूरी है कि सरकारी पक्ष के डाक्टरों में से नेशनल इस्टिट्यूट ऑफ इम्यूनोलोजी के प्रोफेसर रणजीत राय चौधरी, जोकि नए गर्भ निरोधकों की तकनीकी सलाहकार समिति के अध्यक्ष भी हैं, हमसे सहमत थे। पर डा० राय चौधरी की नैतिक राय मानने के बदले दूसरे प्रतिनिधि बोल पड़े "ये इनकी व्यक्तिगत राय है सरकारी निष्कर्ष नहीं।"

इसके बाद हमने औषधि नियंत्रक से पैकेज इनसर्ट (दवा के पैकेट के साथ बांटी जाने वाली जानकारी) के विषय में उनकी भूमिका पूछी। साथ ही यह भी पूछा कि वह जानकारी किसके लिए है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वह जानकारी डाक्टरों के लिए है व खुद उनके द्वारा कम्पनी द्वारा प्रस्तावित पैकेज इनसर्ट को स्वीकृति दी गई है। पर उनके पास भारतीय पैकेज इनसर्ट में अमरीकी पैकेज इनसर्ट की अपेक्षा कहीं कम जानकारी दिए जाने का कोई कारण नहीं था। और इस कमी का दोष वे किसी और पर डाल भी नहीं सकते थे। ऐसे में आय सी एम आर की डायरेक्टर जनरल डा० सत्यवती कहने लगी कि आखिर हम सब औरतों के हित में काम कर रहे थे व सरकार को चाहिए कि वे हमारे सवालों का भली-भांति उत्तर दे। इस समय मीटिंग के सभापति डा० मुखर्जी, डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ सर्विसेस, ने हमें विश्वास दिलाया कि उन्होंने हमारी शिकायतों को पूरी तरह दर्ज कर लिया था व वे इन कमियों को दूर करेंगे। हमने भी उन्हें फिर से बताया कि हमारा उद्देश्य डेपो पर प्रतिबंध लगवाना था और पैकेज इनसर्ट बदले जाने अथवा बगैर नुस्खे के न बेचे जाने जैसे छोटे-छोटे बदलावों से हम संतुष्ट नहीं थे। इसलिए हम पूरी जानकारी मिलने के बाद दुबारा उनके साथ बैठकर इस इंजेक्शन के खतरों व दुरुपयोग की सम्भावनाओं पर चर्चा करना चाहते थे। हमने बिक्री पश्चात की जाने वाली शोध के बारे में भी सवाल उठाया कि इस दिशा में निर्देश हो जाने के बाद भी दवा बिकते हुए तीन महीने गुजर चुके थे पर अभी तक शोध की शुरूआत तक नहीं हुई थी।

डेपो प्रोवेरा के विषय में तो इतनी चर्चा चली भी पर औषधि नियंत्रक ने साफ कह दिया कि वे नेट-एन पर चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि यह मामला कोर्ट में था। यह रवैया बड़ा ही अजीब था कि उन्होंने कोर्ट में केस रहते हुए हमसे तो बात-चीत करना भी गलत समझा पर नेट-एन के विक्रेता जर्मन रेमेडीज़ पर बिक्री के खिलाफ रोक लगाने की आवश्यकता नहीं समझी।

डा० मुखर्जी, औषधि नियंत्रक से कहीं अधिक स्पष्ट जवाब दे रहे थे, व हमारी चर्चा की मांग को मानने के लिए भी तैयार थे पर वे हमें निर्णय प्रक्रिया में उचित स्थान देने के विषय में स्पष्ट नहीं थे, महज शिकायतकर्ता के रूप में देख रहे थे। इसलिए इस मीटिंग का लिखित ब्योरा रखने के लिए भी वे बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। (यह वायदा उन्होंने अभी तक पूरा नहीं किया)।

उन्होंने फिर भी हमें आश्वासन दिया कि हमारे सवालों के जवाब हमें दस दिन के भीतर मिल जाएंगे व एक महीने में वे फिर से मीटिंग बुलाकर पूरी चर्चा करवाएंगे। (यह वायदा भी पूरी नहीं हुआ)। औषधि नियंत्रक ने हमें लिखित में जवाब जरूर भेजा पर गोल-मोल जवाब था जिनमें सिर्फ सीमित जानकारी थी। पर फिर भी औषधि नियंत्रक को लिखित में कुछ कदम उठाने पर अवश्य मजबूर होना पड़ा। ये थे:-

1. नेट-एन पर भी बिक्री पश्चात शोध का आदेश
2. डेपो प्रोवेरा के पैकेज इनसर्ट में बदलाव
3. बगैर नुस्खों के बिक्री पर रोकथाम
4. इंजेक्शन लगवाने वाली औरतों को लिखित जानकारी देना
5. बिक्री सीमित केमिस्टों की दुकान पर ही होने देना

हांलाकि औषधि नियंत्रक ने इस बदलावों को लाने की लिखित में गारंटी दी थी पर इसके लिए वे क्या कदम उठाएंगे व कब तक यह काम सम्पन्न हो जाएगा इसका कोई ब्योरा न था। उन्होंने अपने पत्र में यह भी कह दिया था कि ये गर्भ निरोधक अन्य मौजूदा उपायों से बेहतर भी नहीं थे। उन्होंने यह भी माना था कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि डेपो प्रोवेरा कितनी मात्रा में आयात किया जा रहा है अथवा बेचा जा रहा है। इन सब बातों के बावजूद उन्होंने डेपो प्रोवेरा की निरापदता के बारे में कई गलत बातें कही थी जिन्हें कहने में डेपो के निर्माता भी हिचकिचाते है। कुल मिलाकर उनका दृष्टिकोण कम्पनी की तरफदारी कर रहा था। फिर भी जो कदम उठाने की बात उन्होंने कही, हमने जरूरी समझा कि हम उनका प्रचार करें ताकि कुछ केमिस्ट तो अपनी गलत हरकतों से बाज़ आएं। अब हम इन वायदों को कोर्ट के माध्यम से पूरा करवाने की पहल कर रहे हैं।

हमारी यह कोशिश रही है कि दूसरे मुद्दों पर काम करने वाले संगठन भी इस अभियान में जुड़ें। आखिर यह सिर्फ औरतों का सवाल नहीं है। खतरनाक, लम्बे समय तक असर रखने वाले गर्भ निरोधक जनसंख्या नियंत्रण के हथियार हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की देश में घुस पैठ, जबरन तीसरी दुनिया के बाज़ारों में बिक्री, व जनसंख्या नियंत्रण के लिए हर हथकंडा अपनाना, तीनों ही बातें ढांचागत परिवर्तन के प्रोग्राम से जुड़ी हुईं हैं। इस बात से हम बहुत उत्साहित है कि दूसरे संगठन भी इन मामलों में पहल के लिए साथ आ रहे हैं। डेपो पर पर्ची किसी औरतों की संस्था ने नहीं बल्कि पब्लिक इंटरेस्ट रिसर्च ग्रुप ने छापी है।

सरकार ने जिस मीटिंग का वायदा किया था वह तो अभी तक नहीं हुई है। इस की याद दिलाने के लिए लिखे पत्रों का भी हमें जवाब नहीं मिला। हमने यह भी गुजारिश की कि एक सीमित उद्देश्य की मीटिंग ही बुला ली जाय जिसमें कम-से-कम औषधि नियंत्रक द्वारा लिखित में माने गए बदलाव के कार्यान्वयन पर चर्चा हो सके पर इस विषय में भी सरकार ने कोई पहल नहीं की। आखिर इंतजार से थककर स्वयं हमने ही इस विषय पर एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया। 17 अगस्त 1994 की इस मीटिंग में हमने सभी प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया पर इसमें सिर्फ आय सी एम आर व औषधि नियंत्रक के प्रतिनिधि शामिल हुए, दवा कम्पनी और उनकी पब्लिसिटी कम्पनी अनुपस्थित ही रहे।

इस आम सभा में हमें बताया गया कि लिखित में चाहे जो मान लिया गया हो वास्तव में औषधि नियंत्रक के हाथ में बिक्री को सुसंचालित करने व कानून तोड़ने वाले केमिस्टों को सजा देने का कोई अधिकार ही नहीं था। यह काम तो राज्य स्तर के औषधि नियंत्रक का था। यह बात तो बड़ी ही अमान्य है, क्या दुरुपयोग की सम्भावना व दुरुपयोग का सबूत अपने आप में एक गैर जरूरी दवा के लायसेंस को रद्द करने का आधार नहीं होना चाहिए विशेषकर जब वह दवा अन्य विकल्पों से बेहतर तक न हो?

इस सभा में यह भी स्पष्ट हुआ कि औषधि नियंत्रक का उपभोक्ताओं को जानकारी पहुंचाने का वायदा भी गम्भीर न था। दो महीनों बाद भी उनके प्रतिनिधि सिर्फ एक टाइप किया हुआ पन्ना लेकर पहुंचे थे जिसपर 16/8/94 की तारीख अंकित थी- जैसे आम सभा के ठीक एक दिन पहले कम्पनी से कोई जानकारी मांग ली गई थी। यही नहीं यह जानकारी भी समुचित अथवा सच नहीं थी।

जहां तक बिक्री पश्चात् शोध के तौर तरीके का सवाल था, औषधि नियंत्रक के प्रतिनिधि ने साफ कह दिया कि यह बात मेक्स फार्मा/अप जॉन के हित में गुप्त रखी जाएगी। यह तो बहुत अजीब है कि. जिन औरतों का जीवन इस गर्भ निरोधक से प्रभावित होगा वे ही जानकारी से वंचित रखी जाएंगी। क्या औषधि नियंत्रक को कम्पनियों के हित में काम करना चाहिए? क्या उनका काम ठीक इसके विपरीत नहीं है- आम जनता को औषधि कम्पनियों के हानिकारक उत्पादों से बचाना?

हमने बाजार में जांच-पड़ताल जारी रखी है। आज हम इस बात से खुश है कि कम से कम दिल्ली में तो डेपो के साथ नया पैकेज इनसर्ट मिलने लगा है और अब इस इंजेक्शन को बगैर डाक्टरी नुस्खे के खरीदना भी अपेक्षाकृत मुश्किल हो गया है। पर साथ ही हमें इस बात का दुःख है कि अभी यह बदलाव सिर्फ राजधानी तक सीमित है और दूसरे शहरों में अभी भी पुराना पैकेज इनसर्ट ही मिल रहा है। अतः दूसरे शहरों में ग्रुपों को सक्रिय होना पड़ेगा।

यह लेख लिखते समय डेपो पर प्रतिबंध लगाने के लिए देश व्यापी हस्ताक्षर अभियान की शुरूआत हो रही है व साथ ही प्रतिबंधित दवाओं के एक केस में डेपो को शामिल करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को याचना दी गई है।

■■■■

**हस्ताक्षर अभियान**

मंत्री

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय

निर्माण भवन, नई दिल्ली

जिस तेजी से डेपो प्रोवेरा जैसे खतरनाक व लम्बे असर वाले गर्भ निरोधक बगैर पूरा परीक्षण किए व औरतों की भलाई की अवहेलना कर देश में प्रचलित किए जा रहे हैं उससे हम चिंतित हैं। डेपो प्रोवेरा के निर्माता स्वयं 78 विपरीत असर मानने को तैयार है, जिनमें से कई जानलेवा हैं और अन्य का कोई इलाज नहीं है। नारी संगठनों के विरोध के बावजूद यह दवा बगैर डाक्टरी नुस्खे के उपलब्ध है। यही नहीं एक सार्वजनिक सभा में स्वयं औषधि नियंत्रक के प्रतिनिधि ने माना है कि वे इसकी अनुचित व गैर कानूनी बिक्री रोकने में असमर्थ हैं।

यह देखते हुए हम माँग करते है कि हम डेपो प्रोवेरा के लायसेंस को रद्द किया जाय।

नाम व पता　　व्यवसाय　　हस्ताक्षर

चिट्ठियों की कड़ी

# डेपो प्रोवेरा विरोधी

यह चिट्ठी आपको असुरक्षित गर्भ निरोधक डेपो प्रोवेरा और नेट-एन सूइयों से सजग रहने के लिए लिखी है। ये गर्भ निरोधक औरतों के स्वास्थ्य की कीमत पर उन्हें गर्भ धारण करने से रोकते हैं। इन सूइयों के इस्तेमाल से औरतों के शरीर पर गंभीर बुरे असर पाए गए हैं।

इन गर्भ निरोधकों पर अभी तक हुए परीक्षणों से पता चलता है कि इन सूइयों को लगाने के बाद महिलाओं की माहवारी अनियमित हो जाती है, मानसिक रूप से वह तनाव ग्रस्त रहती है, खून के थक्के जमने लगते हैं, थकान बढ़ने लगती है, वजन बढ़ने लगता है, कील-मुहासे और फुन्सियां निकलने लगती हैं, हड्डियां कमजोर होने लगती हैं। सिर्फ इतना ही नहीं यह दवा मां के दूध के साथ बच्चे के शरीर में चली जाती है।

परीक्षणों से यह भी पता चला है कि इनके इस्तेमाल से औरतों को कैंसर होने का खतरा भी बना रहता है। यदि इन सूइयों के इस्तेमाल के बावजूद औरत गर्भवती हो जाती है तो पैदा हुए बच्चे में जन्म जात विकृतियां हो सकती हैं, जोकि पैदा हुए लड़कों या लड़की के प्रजनन अंगों को प्रभावित कर सकती हैं। यह भी पाया गया है कि औरतों की प्रजनन क्षमता लौटने में अधिक समय लगता है और यहां तक कि प्रजनन क्षमता हमेशा के लिए समाप्त भी हो सकती है। इन दवाओं के असर लम्बे समय तक रहते हैं और इनका इस्तेमाल बन्द करने के बाद भी कई महीनों तक इनके कुप्रभाव बने रहते हैं, जिनका कोई असरदार उपचार भी उपलब्ध नहीं है।

यह जरूरी है कि महिलाऐं इन सूइयों का बहिष्कार करें, जिन्हें सरकार ने विदेशी कम्पनियों के आगे झुक कर बेरोकटोक भारत में आने की इजाजत दे दी है।

आपसे अनुरोध है कि भारत के दवा नियंत्रक, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001 और प्रधानमंत्री को इन सूइयों की बिक्री को बन्द करने के लिए पत्र लिखें व अपनी जानकार सात औरतों को यह चिट्ठी भेजें ताकि अधिक-से-अधिक महिलाऐं इन स्वास्थ्य घातक सूइयों के बारे में समय रहते जानकारी पा सकें।

**डी.एम.पी.ए.**
**व्यावसायिक नाम - डेपो प्रोवेरा**
**मात्रा - 150 मि.ग्रा. हर तीन महीने बाद**
**वितरक - मैक्स फार्मा**
**निर्माता- अप जॉन, संयुक्त राज्य अमरीका**
**भारत में प्रयोग नहीं हुए।**

**नेट-एन**
**व्यावसायिक नाम - नोरेस्टराट**
**मात्रा-200 मि.ग्रा. हर 2 महीने बाद**
**वितरक - जर्मन रेमेडीज़**
**- शेरिन्ग ए.जी., जर्मनी**
**- सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर है।**

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें 'सहेली', डिफेन्स कालोनी फ्लाई ओवर के नीचे, नई दिल्ली-110024 फोन नं०: 4616485 इस अभियान की सफलता आप जैसे साथियों पर निर्भर है।

# मदद के लिए अपील

सन् 1981 में औरतों के एक छोटे से समूह ने मिलकर सहेली का गठन किया जिसका मुख्य उद्देश्य संकट ग्रस्त औरतों को समर्थन और विकल्प प्रदान करना था। कुछ ही सालों में हम घरेलू हिंसा, दहेज, बलात्कार, लैंगिक छेड़-छाड़, पुलिस द्वारा महिलाओं पर अत्याचार और कानून में औरतों के प्रति भेदभाव विरोधी आंदोलनों का हिस्सा बन गए। साथ ही हम औरतों के स्वास्थ्य, संचार माध्यमों में महिलाओं के चित्रण, लिंग जांच सम्बन्धी परीक्षण और देश में लाए जा रहे खतरनाक और असुरक्षित गर्भ निरोधकों के विरुद्ध अभियानों में जुड़ गए। 1991 में हमने अपने अभियान सम्बन्धी कार्य का सुदृढ़ करने के उद्देश्य से वैयक्तिक स्तर पर औरतों की मदद का काम सीमित कर देने का निर्णय लिया। हमारा समूह छोटा होने के कारण हमने यह महसूस किया कि हम अपने प्रयत्नों को उन क्षेत्रों में केन्द्रित करें जहाँ अन्य समूह सक्रिय नहीं हैं।

आज हमारा खतरनाक गर्भ निरोधकों एवं दमनकारी जनसंख्या नियन्त्रण के विरुद्ध अभियान जारी है। हम समान कानून संहिता की मांग कर रहे हैं। अपने अभियानों को और व्यापक बनाने के लिए हम दूसरे समूहों के साथ मिलकर काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त, देश के अन्य हिस्सों में चल रहे संघर्षों का हम सक्रिय रुप से समर्थन करते हैं, जैसे कि साम्प्रदायिकता का विरोध और महिलाओं के विरुद्ध अन्याय और हिंसा के मुद्दे।

हम अपने काम के माध्यम से साहस और विश्वास बनाने का प्रयत्न करते हैं जो महिलाओं को एकजुट हो कर एक न्यायपूर्ण समाज की रचना करने की शक्ति दे सके जहाँ हम आशा और स्वाभिमान से रह सकें।

**हमारी आर्थिक स्थिति**

जब सहेली की शुरुआत हुई तब हमारे मित्रों और अन्य संवेदनशील व्यक्तियों ने जरूरत के अनुसार, हमारी मदद की। हम हमेशा सरकारी या संस्थागत पैसे की बजाय व्यक्तिगत योगदान पर निर्भर रहे हैं। हम यह महसूस करते हैं कि ऐसा करने से एक तरफ तो हम स्वायत्त बने रहते हैं और दूसरी ओर, यह हमें आप जैसे लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाता है जो हमारे क़ाम और विचारों को समर्थन देते हैं।

अभियान कार्यों में वृद्धि, और मुद्दों को समाज के अधिक लोगों तक पहुँचाने के प्रयत्नों में हमें निरन्तर पैसे की आवश्यकता होती है। आने वाले साल में हमें अपने अभियानों, यात्राओं, अन्य प्रशासनिक खर्चों, फोन और बिजली के बिल और प्रकाशनों इत्यादि के लिए 10,000 से 15,000 रुपये प्रतिमाह की आवश्यकता होगी। अपनी गतिविधियों को बेहतर तरीके से नियोजित करने के लिए हमे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता भी हो सकती है।

पिछले वर्षों में आपकी सहायता से हमें चन्दा इकट्ठा करने में मदद मिली है। आज भी हमें विश्वास है कि आपके सहयोग से यह फिर हो सकता है। यदि 250-300 व्यक्ति प्रतिमाह 50 रु. का योगदान भी दें तो हम अपनी जरुरतें पूरी कर सकते हैं। आपका हर योगदान, चाहे वह कितना बड़ा या छोटा हो, हमारे लिए अत्यंत मूल्यवान है।

चेक या ड्राफ्ट कृपया 'सहेली' के नाम से भेजें।

**हमारी गतिविधियाँ**

- सरकारी कार्यक्रम मे जबरदस्ती खतनाक गर्भनिरोधकों और जनसंख्या नियन्त्रण नीतियों के खिलाफ व औरतों के स्वास्थ्य के मुद्दे पर अभियान
- महिलाओं को उपलब्ध गर्भनिरोधकों के बारे में सही जानकारी देकर उनके लिए सुरक्षित गर्भ निरोधक के चुनाव की प्रक्रिया को मजबूत करना
- कालेजों में कार्यक्रमों, चर्चाओं, पोस्टर प्रदर्शनी एवं प्रकाशित सामग्री द्वारा समान कानून संहिता के लिए अभियान
- बढ़ते हुए बलात्कारों और औरतों के विरुद्ध यौनिक हिंसा, पुलिस अत्याचार और घरेलू हिंसा के विरुद्ध अभियान
- लिंग जांच व लिंग चुनाव परीक्षणों के विरुद्ध अभियान
- अपने काम और तत्कालीन मुद्दों की जानकारी देते हुए हर तीन महीने बाद हिन्दी और अंग्रेजी में पत्रिका निकालना
- अन्य समूहों के साथ मिलकर अपने संघर्षों को लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्षों, मजदूरों के संघर्षों और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध अभियानों से जोड़ना।

## समान नागरिक संहिता

# महिला अधिकारों का मुद्दा

एक धर्मनिरपेक्ष और समानता पर आधारित कानून संहिता के लिए अभियान एक बार फिर सहेली की गतिविधियों का अभंग हिस्सा बन गया है। वास्तव में समान नागरिक संहिता की मांग नई नहीं है। हालांकि यह मुद्दा शाहबानो मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और इसके बाद भारतीय सरकार द्वारा मुस्लिम महिला कानून बनाए जाने के दौरान अधिक चर्चा और विवाद का विषय बना, इस पर बहस संविधान बनने के दौरान ही शुरू हो गई थी। वर्तमान समय में यह मुद्दा और अधिक जटिल और विवादास्पद बन गया है। पारिवारिक कानूनों के क्षेत्र में औरतों को समान अधिकार दिलाना नारी आन्दोलन की मांगों का एक मुख्य हिस्सा रहा है। परन्तु आज देश में बढ़ती हुई साम्प्रदायिक और फांसीवादी ताकतों के प्रभाव में इस मांग को धर्मनिरपेक्ष और लैंगिक बराबरी की मांग के रूप में मान्यता दिलाना, नारी आन्दोलन के लिए चुनौती बन गयी है।

धर्म पर आधारित पारिवारिक कानूनों और औरतों के अधिकारों के बीच बहुत ही पेचीदा परन्तु घनिष्ट सम्बन्ध है। मौटे तौर पर पारिवारिक कानून का अर्थ है विवाह, तलाक, गुजारा भत्ता, गोद लेना और उत्तराधिकार के मामलों के कानून। ये सभी मामले परिवार और परिवार में स्त्रियों की स्थिति और अधिकारों से जुड़े हुए हैं। इसका अर्थ है कि किसी औरत की परिवार में स्थिति और उसके अधिकार इस बात पर निर्भर हैं कि वह किस पारिवारिक कानून द्वारा शासित होती है।

सभी पारिवारिक कानूनों की उत्पत्ति धर्म विशेष के पुराने धार्मिक ग्रन्थों से हुई है। सभी पारिवारिक कानून अलग-अलग प्रकार से पुरुषों की तुलना में औरतों के साथ भेद-भाव करते हैं, और उन्हें कम अधिकार देते हैं। ये न केवल परिवार में औरतों की दोयम स्थिति बनाए रखते हैं बल्कि स्त्रियों को परिवार के पुरुष सदस्यों, जैसे कि पिता, पति, भाई व पुत्र पर आर्थिक रूप से आश्रित कर देते हैं। वर्तमान परिवार पितृसत्तात्मक है। पारिवारिक कानून में सुधार या बदलाव की मांग वास्तव में परिवार के इस पितृसत्तात्मक स्वरूप को बदलने की मांग है, ताकि असमान और अन्याय पूर्ण रिश्तों को समाप्त कर स्त्रियों की स्थिति को सुधारा जा सके।

समान नागरिक संहिता के लिए अभियान को आगे बढ़ाने के लिए हमने कालेज के छात्रों और महिलाओं के साथ बातचीत कर, पारिवारिक कानूनों के भेद-भाव पूर्ण पक्षों को उजागर करने की कोशिश की है। हिन्दू सम्प्रदायवादियों द्वारा भ्रम फैलाने की काफी कोशिश की गई है। जैसे उनका कहना है कि हिन्दू कानून एक आदर्श, धर्म-निरपेक्ष और स्त्री-पुरुषों को बराबर हक देने वाला कानून है, जबकि मुस्लिम कानून नारी-विरोधी और बर्बर है। इसलिए मुस्लिम निजी कानून को समाप्त करना चाहिए। इस तरह के तर्क द्वारा वे हिन्दू कानूनों को बहस से बाहर ले जाते हैं। जबकि यह जानना सबसे अधिक जरूरी है कि सभी पारिवारिक कानून स्त्रियों को कम अधिकार देते हैं। और अलग-अलग प्रकार से ये अधिकार देते हैं। फलस्वरूप किसी एक सम्प्रदाय की औरतों को किसी क्षेत्र में दूसरे सम्प्रदाय की औरतों से कम या और किसी क्षेत्र में अधिक अधिकार प्राप्त हो सकते हैं। अर्थात ये कानून औरतों के बीच भी दूरी बढ़ाते हैं।

दुर्भाग्यवश, सार्वजनिक स्तर पर सुधार की मांग केवल मुस्लिम निजी कानून के सुधार पर केन्द्रित रही है। हिन्दू कानून में सुधार का सवाल उतना महत्वपूर्ण नहीं बना क्योंकि 1954-56 में बनाए कानूनों द्वारा काफी हद तक हिन्दू कानून में व्याप्त असमानताओं को कम कर दिया गया। परन्तु एक तो असमानताऐं पूरी तरह समाप्त नहीं की गईं और दूसरे, कुछ मामलों में परम्परागत

कानूनों को लागू होने से रोका नहीं गया। कृषि, भूमि और तलाक के सम्बन्ध में परम्परागत कानूनों को सरकारी मान्यता प्राप्त है। परम्परागत कानून पुरुष की परिवार में सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर आधारित हैं। अतः इनके रहते स्त्रियों का विवाह और उत्तराधिकार में समानता प्राप्त करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त पुश्तैनी सम्पत्ति में भी औरतों को अधिकार नहीं दिए गए हैं। वसीयत करने का अधिकार देकर सरकार ने पुत्रियों को सम्पत्ति से बेदखल करने का रास्ता खोल दिया है। इसी प्रकार पारसी क़ानूनों में पुत्रियों को पुत्र की तुलना में सम्पत्ति का आधा हिस्सा मिलता है। शरीयत कानून के अनुसार मुस्लिम औरतें पुरुष से आधी सम्पत्ति की हकदार हैं। अर्थात् लड़कियों को लड़कों की तुलना में सम्पत्ति का आधा हिस्सा मिलता है। ईसाई कानून में सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय द्वारा पुत्र और पुत्रियों के अधिकार समान कर दिए गए हैं। लेकिन दूसरे धर्मों के कानूनों में व्याप्त कमजोरियां, ईसाई नेताओं को अपने सम्प्रदाय के पुरुषों को वसीयत के द्वारा पुत्रियों को सम्पत्ति से बेदखल कराने के लिए उकसाती हैं।

इसी प्रकार तलाक के मामलों में भी असमानताऐं हैं। ईसाई कानून के अनुसार पुरुष को तलाक के लिए सिर्फ एक ही आधार देना है जबकि स्त्री को एक आधार के साथ-साथ पुरुष का व्याभिचारी होना भी साबित करना है। इस असमानता की वजह से कई ईसाई स्त्रियों को पति के दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ता है, क्योंकि उन्हें न तो घर से निकाले जाने और न ही केवल क्रूरता के आधार पर तलाक मिल सकता है। मुस्लिम कानून के अन्तर्गत भी स्त्रियों की स्थिति बहुत असमान है। मुसलमान पुरुष चार शादियां करने का अधिकार रखता है। पुरुष का तलाक देने का अधिकार भी एकतरफा है। मुस्लिम औरतों के गुजारे भत्ते के अधिकार भी सुरक्षित नहीं है। सरकार ने तलाक के बाद पत्नी को मिलने वाले गुजारे भत्ते को भी धार्मिक आधार पर अलग-अलग तय कर दिया है।

निजी कानूनों बनाए रखने के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की पहचान

बनाए रखने के लिए निजी कानून जरूरी हैं। संविधान का अनुच्छेद 25 धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के तहत् ऐसा करने की अनुमति देता है। इस तर्क की आड़ में पिछले वर्षों में इस मुद्दे को अत्यन्त साम्प्रदायिक रूप दे दिया गया है। इसे स्त्री अधिकारों के नज़रिए से समझने की कतई कोशिश नहीं की गई है। राजसत्ता ने अपनी अनेक नीतियों और संस्थाओं के माध्यम से स्त्रियों के लिए इस सामाजिक न्याय के मुद्दे को धार्मिक स्वतंत्रता के सवाल में बदल दिया है।

1985 में शाहबानो मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद सरकार ने अपने चुनावी फायदे को ध्यान में रखते हुए, मुसलमान कट्टरपंथियों के दबाव में आकर मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) कानून (1986) पास किया। इस कानून के फलस्वरूप तलाक शुदा मुसलमान औरतों को दण्ड प्रक्रिया धारा 125 के

दायरे से बाहर निकाल दिया गया, जिसके अनुसार सभी औरतें अपने पति से गुजारा भत्ता पाने की अधिकारी थीं। एक बार फिर पारिवारिक कानूनों के सवाल का सम्प्रदायीकरण हो गया। इस का असर यह भी हुआ कि, मुस्लिम सम्प्रदाय धार्मिक नेताओं का नियंत्रण बढ़ गया और औरतों की स्थिति और बिगड़ी।

इस बार संसद के मानसून अधिवेशन में सरकार ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सरकार का समान नागरिक संहिता बनाने का अभी कोई इरादा नहीं है।

इस मुद्दे को फिर औरतों के अधिकारों के संदर्भ में न देख कर धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान के सवाल से जोड़ कर देखा जा रहा है। किसी भी धर्म की पहचान केवल उसके निजी कानूनों से हो, यह सही नहीं है। यह केवल परिवार में पितृसत्ता बनाए रखने का बहाना है।

आज देश की राजनीति पर दक्षिणपंथी, साम्प्रदायिक और फांसीवादी दलों का प्रभाव बढ़ रहा है। पिछले कई वर्षों से चुनावी राजनीति धर्म के गणित से प्रभावित है। धार्मिक नेताओं का सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में प्रभाव और नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। औरतों के लिए यह विशेष रूप से चिंता का विषय है, क्योंकि अनुभव यह बताता है कि जब भी धर्म गुरुओं के हाथ में सत्ता आई है, उसका पहला शिकार स्त्रियां और उनके अधिकार हुए हैं। धर्म का इस्तेमाल पुरुषों के औरतों पर नियंत्रण के वैधीकरण के लिए किया गया है। उदाहरण के लिए आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव में यह कहा गया कि (1) लड़कियों को सम्पत्ति में हिस्सा नहीं मिलना चाहिए और (2) विधवा को अपने पति के भाई से विवाह करना चाहिए। ये दोनों ही प्रावधान औरतों को पारिवारिक सम्पत्ति से बेदखल करने और पुरुषों को सम्पत्ति पर पूर्ण नियंत्रण और एकाधिकार देने के लिए थे।

भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में समान नागरिक संहिता बनाने की बात रखी है। यह जरूरी है कि हम इस वायदे से भ्रमित न हों। भारतीय जनता पार्टी उसी शब्दावली का प्रयोग कर रही है जो महिला आन्दोलन की भाषा है, परन्तु दोनों के बिल्कुल अलग मायने हैं। भारतीय जनता पार्टी द्वारा समान नागरिक संहिता बनाए जाने की बात वास्तव में हिन्दू निजी कानून सभी सम्प्रदायों पर लागू करने की बात है, नारी-आन्दोलन की सोच इसके विपरीत है। हिन्दू सम्प्रदायवादी भारत को हिन्दुओं का देश मानते हैं और सभी हिन्दुस्तानियों पर हिन्दू कोड लागू करना चाहते हैं। यह उनके राजनैतिक मन्सूबों के अनुरूप भी है। इस प्रकार भारतीय जनता पार्टी की समान नागरिक संहिता की मांग औरतों को बराबर कानूनी अधिकार देने के लिए नहीं है, बल्कि वे इसका इस्तेमाल मुस्लिम-विरोधी उन्माद बढ़ाने के लिए करना चाहते हैं। इस का असर यह है कि सार्वजनिक स्तर पर केवल मुस्लिम निजी कानून को बर्बर और रुढ़िवादी बताया जा रहा है और हिन्दू निजी कानून को उदारवादी और समानता पर आधारित कहा जा रहा हैं। यह सच नहीं है। यह कहा जा रहा है कि, मुसलमानों के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाकर मुसलमान पुरुषों को चार पत्नियां रखने का अधिकार और जब चाहे तलाक देने का अधिकार दिए गए हैं। औरतों के बीच काम करते हुए हमने यह देखा है कि वास्तव में, हिन्दुओं में भी बहुविवाह आम है और हिन्दू पुरुष भी कारण-बेकारण अपनी पत्नियों को छोड़ते रहे हैं। इस प्रकार हिन्दू औरतें भी उतनी ही प्रताड़ित हैं जितनी अन्य सम्प्रदाय की औरतें।

इस बात पर ध्यान देना भी जरूरी है कि जब सुधार की मांग बहुसंख्यक सम्प्रदायवादियों की तरफ से आती है तो अल्पसंख्यक समुदाय स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं, क्योंकि यह मांग अल्पसंख्यकों के प्रति सद्भाव और सहानुभूति की वजह से नहीं, बल्कि उनके प्रति द्वेष की वजह से की जाती है। इसका असर यह होता है कि अल्पसंख्यक आगे आने से डरते हैं और सुधार की आवाज दब जाती है। इसके

परिणामस्वरूप धार्मिक कट्टरपंथियों का अपने सम्प्रदायों पर दबदबा बढ़ जाता है जिसका मुख्य शिकार औरतें ही होती हैं। इसी कारण महिला संगठनों के लिए जरूरी है कि वे अपनी मांग को साम्प्रदायिक ताकतों से अलग करके रखें, इस स्थिति से जुड़े मुद्दों को बलपूर्वक उठाऐं और सुधार के लिए जोरदार प्रयत्न करें। इसके लिए समस्या की जड़ समझ कर बहस को औरतों के बीच ले जाना जरूरी है।

अल्पसंख्यकों पर उठे सवाल दो मुख्य सम्प्रदायों पर केन्द्रित रहे हैं जबकि भारत में अन्य सम्प्रदाय भी हैं जिनके निजी कानून भी औरतों के लिए दमनकारी हैं। अत: जब हम औरतें समान और न्यायपूर्ण कानूनों की बात करती हैं, सभी सम्प्रदायों के कानूनों में बदलाव चाहती हैं।

इन कानूनों में सुधार और एक धर्मनिरपेक्ष समान कानून संहिता की मांग वास्तव में लिंग के आधार पर समानता की मांग है। इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि हमारी मांग सभी कानूनों में अन्तर्निहित पितृसत्ता को समाप्त करने की मांग है। यह मांग कतई धर्म विरोधी नहीं है, परन्तु यह जरूरी है कि इस मांग को धर्म से अलग करके स्त्री अधिकारों के रूप में देखा जाए। इसके लिए साम्प्रदायिक राजनीति के पक्षों को मुखर करना जरूरी है जो धर्म और धार्मिक पहचान के भूत को खड़ा करके वर्ग, पितृसत्ता और राजनैतिक स्वार्थों के आयामों को छिपाने की कोशिश करते हैं।

पिछले सालों में साम्प्रदायिकता विरोधी समूहों ने भी समान नागरिक संहिता के सवाल पर पुनर्विचार की जरूरत महसूस की है। इस मुद्दे पर कई परिचर्चाओं और गोष्ठियों का आयोजन किया गया है। जुलाई 1994 में 'पीपल्स मूवमेन्ट फार सिक्यूलरिज़्म' ने इस विषय पर दो दिन की कार्यशाला का आयोजन किया। इस दौरान हुई बहस में तीन दृष्टिकोण उभर कर आए, जो नारी आन्दोलन की विभिन्न धाराओं द्वारा लिए जा रहे हैं:

(1) सुधार की मांग सम्प्रदाय के भीतर से आनी चाहिए और सभी सम्प्रदायों के निजी कानूनों को अलग-अलग से संहिता बद्ध किया जाना चाहिये। कई नारी संगठन मुसलमान और ईसाई औरतों के बीच निजी कानूनों में सुधार के लिए काम कर रहे हैं। इस संदर्भ में, एक नया 'निकाहनामा' भी तैयार किया गया है, जो औरतों को बराबर अधिकार देता है।

(2) दूसरा सुझाव था कि 'विशेष विवाह कानून' (1954) में संशोधन किए जाएं और उसे एक आदर्श, धर्मनिरपेक्ष और स्त्री-पुरुष के बीच समानता स्थापित करने वाला कानून बनाया जाए। यह एक वैकल्पिक कानून हो जो उन पर लागू हो जो इसके अर्न्तगत विवाह करें। इस कानून के प्रचार के लिए अभियान चलाया जाए और लोगों को इसे अपनाने के लिए उत्साहित किया जाए। दूसरे शब्दों में, यह एक वैकल्पिक समान नागरिक कानून होगा।

(3) तीसरा विचार सारे निजी कानूनों को समाप्त कर एक अनिवार्य समान नागरिक संहिता बनाने का था। इसके लिए नारी आन्दोलन और धर्मनिरपेक्ष ताकतों के द्वारा लिंग के आधार पर समानता स्थापित करने की मुहिम चलायी जाए।

इन तीनों दृष्टिकोणों में एक बात स्पष्ट है कि, सभी लोग निजी कानूनों में सुधार और परिवर्तन चाहते हैं ताकि इन कानूनों के भेदभावपूर्ण पक्षों को समाप्त किया जा सके।

इस कार्यशाला में औरतों के परिवार और निजी कानूनों में आर्थिक अधिकारों के अभाव पर भी बातचीत हुई। उदाहरण के लिए, वैवाहिक सम्पत्ति में हिस्सा न होना, वैवाहिक घर में रहने के अधिकार न होना, गुजारे भत्ते के सीमित अधिकार, पैतृक सम्पत्ति में बहुत ही सीमित अधिकार, और घरेलू हिंसा के लिए कोई कानून न होना। यह महसूस किया गया कि समान नागरिक संहिता के लिए अभियान के साथ-साथ इन क्षेत्रों में भी कानूनी

अधिकारों की मांग की जानी चाहिए, जोकि परिवार में औरतों की स्थिति सुधारने और उनके सशक्त होने में सहायक होंगे।

1947 में, साम्प्रदायिक और रुढ़िवादी ताकतों के दबाव और चुनावी कारणों से समान नागरिक संहिता को संविधान के निर्देशक तत्वों के अध्याय में रखा गया और तबसे यह इसी अध्याय का हिस्सा है। इसके अनुसार, "सरकार पूरे भारत के लिए एक समान नागरिक संहिता की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेगी।"

संविधान लागू होने के 44 साल बाद भी इस आश्वासन के कार्यान्वयन की ओर कोई कदम नहीं उठाया गया है और न ही ऐसी राजनैतिक इच्छा नजर आ रही है। 1976 में विशेष विवाह कानून में संशोधन किया गया जिसके अनुसार यदि हिन्दू आदमी और औरत इस कानून के अर्न्तगत शादी करें, तब भी वे हिन्दू उत्तराधिकार कानून द्वारा शासित होंगे, न कि भारतीय उत्तराधिकार कानून द्वारा। मुस्लिम महिला कानून के परिणामस्वरूप अब मुस्लिम औरतें धारा 125 के अन्तर्गत गुजारे भत्ते की मांग नहीं कर सकतीं। इसके बाद कानून मंत्रालय ने विभिन्न महिला संगठनों से दो विषयों पर उनके विचार जानने के लिए परिपत्र भेजे, एक धारा 125 के बारे में, जोकि औरतों को अधिक से अधिक 500/- का गुजारा भत्ता देता है और दूसरा, हिन्दू विवाह कानून में शादी पूर्णतः टूट जाने को तलाक के आधार के रूप में शामिल करने के बारे में था। 'सहेली' में, यह विचार बना कि, हम इस प्रकार से अंशों में सुधार को समर्थन नहीं दे सकते। यह भी महसूस किया गया कि, इस प्रकार के सुधारों का उद्देश्य औरतों को वास्तविक रूप से फायदा पहुंचाना नहीं है। जैसे कि, तलाक के मामले में हिन्दू औरतों से ज्यादा ईसाई औरतों को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार मुस्लिम महिला कानून की वजह से मुस्लिम औरतें के सेक्शन 125 से फायदा नहीं उठा सकतीं।

इन परिस्थितियों में समान कानून संहिता के लिए अभियान बहुत जरूरी है। इसलिए हमने जानकी देवी कालेज में छात्राओं और अध्यापकों के साथ में एक चर्चा आयोजित की। इस चर्चा के दौरान हमने उनसे निजी कानूनों के बारे में बताया और इन कानूनों के भेदभाव पूर्ण पक्षों पर बातचीत की। छात्राओं की प्रतिक्रिया बहुत ही उत्साहवर्द्धक थी। वे परिवार में अपने अधिकारों और अपनी दोयम स्थिति समझने के लिए बेहद इच्छुक थीं। इसी प्रकार की परिचर्चाएं हम अन्य कालेजों, छात्राओं, अध्यापकों और महिलाओं के बीच शुरू करना चाहते हैं। इस विषय पर हम एक पुस्तिका और प्रदर्शनी भी तैयार कर रहे हैं। कानून में समानता और न्याय के लिए संघर्ष में हम अन्य महिला संगठनों, जनाधिकार समूहों और साम्प्रदायिकता विरोधी ताकतों के साथ जुड़ कर अपने अभियान को और अधिक विस्तृत करने के प्रयत्न कर रहे हैं।

■■■■

# संक्षिप्त खबरें

### नर संहार की दसवीं बरसी

29 अक्तूबर 'पीपल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राईट्स' द्वारा 1984 के दंगों की दसवीं बरसी पर दिल्ली में पुलिस मुख्यालय के बाहर धरना आयोजित किया गया। 'सहेली' ने भी उनके साथ मिलकर यह मांग दोहराई कि इन दंगों व हत्याओं के दोषियों को, चाहे वे राजनेता, मंत्री या पुलिस अधिकारी हों, सज़ा दी जाए।

1 नवम्बर को कई जनाधिकार समूहों, महिला संगठनों और वामपन्थी संगठनों ने एक रैली में हिस्सा लिया जिसका उद्देश्य लोगों का ध्यान इस बात पर आकृष्ट करना था कि 1984 के दंगों के दोषी अभी भी खुले घूम रहे हैं।

### बाबरी मस्जिद

6 दिसंबर को 'पीपल्स मूवमेन्ट फार सिक्यूलरिज़म' ने बाबरी मस्जिद गिराने और उस वजह से हुई हिंसा के दो वर्ष पूरे होने पर भारतीय जनता पार्टी के दफ्तर पर प्रदर्शन किया। विभिन्न संगठनों से सैकड़ों कार्यकर्ताओं ने मोमबत्ती जुलूस में भाग लिया और मांग की, कि इसके जिम्मेदार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, शिव सेना, भारतीय जनता पार्टी और अन्य व्यक्तियों को सज़ा दी जाए। भा.ज.पा. और कांग्रेस की साम्प्रदायिक राजनीति की भर्त्सना की गई।

### विश्वविद्यालय में छेड़-छाड़

विश्वविद्यालय परिसर में दिल्ली विश्वविद्यालय के कई अध्यापकों और छात्राओं द्वारा 'स्वाभिमान' नाम से एक समूह बनाया गया। कई महिला संगठनों के समर्थन से यह समूह एस.सी. भाटिया (वयस्क शिक्षा विभाग) को पद से हटाने का अभियान चला रहा है। एस.सी. भाटिया के खिलाफ महिला सहयोगियों के साथ छेड़-छाड़ और अभद्र व्यवहार की कई शिकायतें आई हैं।

न्यायमूर्ति वाड कमेटी ने उन्हें दोषी पाया है, लेकिन इसके बावजूद विश्वविद्यालय के अधिकारी उनके खिलाफ कार्यवाही करने में हिचकिचा रहे हैं।

### सामूहिक बलात्कार की घटनाओं की भर्त्सना

राज्य और पितृसत्तात्मक ताकतों ने बलात्कार के हथियार का इस्तेमाल हमेशा से औरतों के खिलाफ किया है। अक्तूबर 1994 की शुरूआत में उत्तराखण्ड के मसले पर विरोध प्रकट करती हुई औरतों के साथ बलात्कार किया गया। दिसम्बर के मध्य में सहेली, जागोरी, पीपल्स लिंक, ए.आई.पी.डब्ल्यू.ए. के द्वारा अलीगढ़ के पास नागला परसी गांव में ईंटा भट्टी में काम करने वाली महिला मज़दूरों के ऊपर नियोजित तरीके से किए गए बलात्कार के बारे में जांच शुरू की गई। हम इस प्रकार की घटनाओं की भर्त्सना करते हैं और संघर्षरत औरतों को पूरा समर्थन देते हैं।

### 23 नवम्बर को हुए नागपुर हत्याकांड का विरोध

1 दिसम्बर, एक जुलूस में पुलिस गोली से आदिवासियों की मृत्यु के विरोध में, महाराष्ट्र सदन, नई दिल्ली के बाहर प्रदर्शन किया गया।

### वेश्याओं पर एड्स का जबरन परीक्षण

कलकत्ता के एक महिला संगठन, महिला संघ ने वालन्टरी हेल्थ ऐसोएिशन आफ इण्डिया और राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नेको) के द्वारा, पुलिस की मदद से वेश्याओं पर जबरन किए गए एड्स परीक्षण के खिलाफ विरोध प्रकट किया। विश्व एड्स दिवस की पूर्वसंध्या को 'एड्स भेदभाव विरोधी आन्दोलन' ने भी नेको के आफिस के बाहर प्रदर्शन कर इसका विरोध किया।

### राष्ट्रीय समायोजन समिति की प्रारम्भिक बैठक की घोषणा

नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन की राष्ट्रीय समायोजन समिति की प्रारम्भिक बैठक 25-26 मार्च 1995 को दिल्ली में हुई। इस का आयोजन 'जागोरी', सी. 54, साउथ एक्सटेंशन पार्ट-II, नई दिल्ली-110 049 कर रही है।

### प्लेग

काल्पनिक प्लेग महामारी की खबर फैलाकर दिल्ली के 90 लाख निवासियों में दहशत फैलायी गयी। बर्बर 'महमारी कानून' द्वारा जबरन् संभावित प्लेग पीड़ितों को बंद किया गया और बगैर चिकित्सीय आधार के टेट्रासाइक्लिन की खरीद की हड़बड़ी की गई। अंकुर, सबला संघ, एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन ने नागरिक महामारी जाँच समिति के तहत् यह मुद्दा उठाया व नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ कम्यूनिकेबल डिज़ीज़ेस के सामने 10 नवम्बर को धरना दिया। अस्पतालों, प्रशासन, दवा कम्पनियों व प्रेस पर गैर जिम्मेदाराना व्यवहार का आरोप लगाया गया- सहेली भी इस धरने में जुड़ी।

### औरतों को डेपो प्रोवेरा क्यों नहीं चाहिए

12-16 दिसम्बर, डेपो प्रोवेरा के खतरों के बारे में आम लोगों में जानकारी फैलाने के लिए 'सहेली' ने अपने कई समर्थक दोस्तों के साथ दिल्ली के व्यस्त इलाकों में पर्चियां बांटी। लोगों की प्रतिक्रिया उत्साहवर्द्धक थी और वे खतरनाक गर्भ निरोधकों के विषय में और जानने को इच्छुक थे।

### संचार माध्यमों में औरतों के विरुद्ध हिंसा

12 नवम्बर, सहेली में महीने के हर दूसरे शनिवार की जाने वाली बैठक में कुछ पत्रिकाओं में औरतों के अश्लील चित्रण और प्रचार माध्यमों में औरतों के वस्तुकरण पर चर्चा आयोजित की गई। कई महिला संगठनों ने इसमें हिस्सा लिया। इस बात पर रोष प्रकट किया गया कि किस प्रकार सौन्दर्य प्रतियोगिताएं, माडलिंग और विज्ञापन अमीर देशों के द्वारा तृतीय विश्व में अपने बाजार व उपभोक्तावाद को बढ़ाने के षडयन्त्र हैं।

### नॉरप्लान्ट के खतरों पर चर्चा

1 दिसम्बर, 'सहेली' ने इण्डियन सोशल इन्स्टिट्यूट के साथ मिलकर फिनलैंड की डा० इवा ओलिला के भाषण का आयोजन किया। इस बैठक में कई अन्य महिला संगठनों, एफ.पी.ए.आई. और पापुलेशन काउंसिल के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। डा० ओलिला ने नॉरप्लान्ट गर्भ निरोधक पर अपनी सालों की खोजबीन के परिणाम बताएं।

# सहेली

**वूमेन रिसोर्स सेन्टर**

*प्रिय सहेली,*

हम आपको सहेली द्वारा प्रकाशित नई पुस्तिका, "आपस की बातें-गर्भ नियंत्रण, सुरक्षा और हमारा स्वास्थ्य" के बारे में जानकारी देने के लिए लिख रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से हम औरतों के स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम कर रहे है तथा हानिकारक गर्भ निरोधकों के खिलाफ संघर्ष कर रहे है। यह पुस्तिका हमारे इस काम का परिणाम है।

इस संघर्ष की शुरूआत 80 दशक के दौरान नेट-एन सुई के विरोध से हुई। उसके बाद कई अन्य खतरनाक गर्भ निरोधक जैसे कि नारप्लांट, प्रजनन विरोधी टीका, डेपोप्रोवेरा और साइक्लोफोम की सुईयाँ और कई प्रकार की खाने की गोलियाँ, गर्भपात के लिए गोलियाँ, नेज़ल स्प्रे इत्यादि, तेज़ी से भारत के बाजारों में प्रवेश कर रहे हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में, हमने सहेली में यह सोचा कि गर्भ निरोधक तकनीकों से सम्बन्धित सारी जानकारी को एक लगह इकट्ठे कर और सरल भाषा में लिखकर अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाऐं जो कि सरकार के परिवार नियोजन कार्यक्रम और इन गर्भनिरोधकों का मुख्य लक्ष्य हैं।

नीति और प्रचार माध्यमों में दीर्घ प्रभावी हार्मोनल गर्भनिरोधकों के प्रति सरकार का झुकाव स्पष्ट नज़र आता है। यह पुस्तिका गर्भ निरोधक तकनीकों के खतरों के प्रति हमें सचेत करती है और सुरक्षित तरीकों जैसे प्रजनन जागरूकता, अवरोध पद्धतियाँ इत्यादि के बारे में जानकारी देती है।

यह पुस्तिका विशेष रूप से उन औरतों और स्थानीय स्तर पर काम कर रहे सक्रिय कर्मियों के लिए है जो कि औरत और स्वास्थ्य के मुद्दों पर काम कर रहे हैं। 68 पन्नों की यह पुस्तिका सरल भाषा में लिखी गई है और चित्रों के माध्यम से जानकारी को स्पष्ट और रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

अंग्रेजी पुस्तिका का मूल्य 30 रु० रखा गया है और हिन्दी पुस्तिका के लिए 20 रु० मूल्य रखा गया है और 5 रु० डाक खर्च हैं। आप अपना आर्डर सहेली को जल्द भेजें। यह पुस्तिका अन्य जगहों पर भी उपलब्ध है।

समर्थन में

सहेली समूह

## *जानकारी शक्ति है*

**इन परिस्थितियों में जबकि औरतों के पास गर्भनिरोधकों के इलावा किसी भी क्षेत्र, जैसेकि मकान, शिक्षा, रोजगार इत्यादि में कोई विशेष अधिकार नहीं है, सरकार की जनसंख्या नीति का विरोध अत्यन्त आवश्यक है। विशेष रूप से जबकि जिन गर्भनिरोधकों का प्रचार किया जा रहा है वे औरत के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त खतरनाक है। हमारा यह विश्वास है कि जानकारी के अभाव में किसी भी अभियान को आगे बढ़ाना कठिन है। सहेली की यह पुस्तिका इसी दिशा में एक छोटा सा प्रयास है।**

# सहेली

## हम से आप तक

वर्ष-10 अंक-1 अप्रैल 1996 निजी वितरण हेतु

- अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस - 8 मार्च, 1996
- परिवार कल्याण — भारत सरकार स्टाइल
- विश्व स्वास्थ्य संगठन को गर्भरोधी "टीके" के खिलाफ अपना मत भेजिए
- एक अभियान की शुरुआत - समतावादी पारिवारिक कानून

यह अंक छोटा अवश्य है पर बहुत महत्वपूर्ण क्योंकि इसमें पाठकों से अपेक्षा है कि वे अभियानों में अपना सक्रिय सहयोग दें। अगर आप पोस्ट कार्डों की और प्रतिलिपियाँ चाहते हैं तो अपना आर्डर हमें भेंजे।

सहेली वीमेन्स रिसोर्स सेंटर, डिफेंस पुल के नीचे,
नई दिल्ली-110 024 फोन न. 4616485

# अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस, 8 मार्च

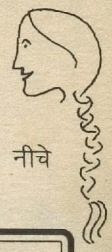

हर साल 8 मार्च को दिल्ली के महिला संगठन साथ आकर अपने संघर्ष को प्रगाढ़ बनाते हैं। इस साल का मुद्दा था "औरतें व हिंसा"। नीचे इस वर्ष की इस अवसर पर बाँटी गई पर्ची पेश है जिसे सब संगठनों ने मिलकर लिखा था।

**8 मार्च, अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस, महिलाओं के संघर्ष का दिवस है!** आज के दिन हम दुनिया की उन सभी बहनों का अभिनन्दन करते हैं जो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, मानसिक व शारीरिक - हर प्रकार के शोषण व हिंसा के ख़िलाफ संघर्ष कर रही हैं। हम सबने मिलकर बहुत सी मंज़िलें तय की हैं, लेकिन बहुत सी मंज़िलें अभी भी बाकी हैं। आइये, हम सब एकजुट होकर अपने हकों की लड़ाई को आगे बढ़ाएँ।

तमाम घोषणाओं, कानूनों और नियमों के बावजूद आज के माहौल में औरत बेहद असुरक्षित है। एक ओर है बढ़ती मंहगाई और ग़रीबी की मार, दूसरी ओर है सांप्रदायिक ताकतों के शिकंजे और राजतंत्र का दमन। घर-परिवार, पड़ोस-समाज हर जगह से यौनिक अत्याचार के मामले सामने आ रहे हैं।

रोज़मर्रा की ज़रूरत की चीजों के दाम आसमान छू रहे हैं। राशन प्रणाली धीरे- धीरे ख़त्म की जा रही है। बसों के निजीकरण से खर्चा बढ़ गया है - ऊपर से प्राईवेट बसों ने जान का ख़तरा भी बढ़ा दिया है।

औरत की सेहत वैसे ही राज-समाज की प्राथमिकता नहीं है। अब सरकारी अस्पतालों में पैसे ज़्यादा और सेवाएं कम होती जा रही हैं। दवाइयाँ बेहद महँगी हैं। लेकिन परिवार नियोजन के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ख़तरनाक गर्भनिरोधकों का धड़ल्ले से औरतों के ऊपर प्रयोग हो रहा है।

शिक्षा के निजीकरण का मतलब है शिक्षा पर बढ़ता ख़र्चा ! अब ख़र्चा बढ़ने से और अधिक लड़कियां शिक्षा से वंचित रहेंगी।

न्यूनतम वेतन, क्रेश की सुविधा, श्रम कानून आदि औरतों के लिए बेमानी तो हैं ही, ऊपर से कारखाने-बंदी व छँटनी की सबसे पहली शिकार महिला ही है। असंगठित क्षेत्र में महिला मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। दिन में दो-चार रुपये कमाने के लिए औरतें, घर बैठे घंटों टोपियां सिलने, बटन टांकने और ज़रदोज़ी का काम करने पर मजबूर हो रही हैं। मालिकों का मुनाफा हज़ारों गुना बढ़ गया लेकिन औरतों की कानूनी सुरक्षा घट गई।

पानी, बिजली, सफ़ाई आदि बुनियादी सुविधाओं में भी भेदभाव है - अमीर कालोनियों पर ज़्यादा खर्च - आम बस्तियाँ बेशक तरसती रहें।

राजधानी दिल्ली - कांग्रेस और भाजपा, दोनों की हुकूमत यहां चलती है। यदि इन्होंने हमें कुछ दिया है तो घरों को बर्बाद करने वाली शराब, लाटरी, अश्लील साहित्य और ब्लू फिल्में।

साम्राज्यवादी आकाओं के इशारे पर हमारे देश में आर्थिक सुधार किये जा रहे हैं। उदारीकरण, निजीकरण, खुले बाजार की यह अर्थव्यवस्था मुट्ठी भर अमीरों की पक्षपाती और आम, मेहनतकश जनता का शोषण बढ़ाने वाली साबित हो चुकी है। सब ग़रीब देशों का यही अनुभव है। उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ाने वाले "आर्थिक सुधारों" ने औरत को 'वस्तु' बना दिया है।

जहाँ आम औरतों सस्ते अनाज, इलाज, शिक्षा आदि के लिए तरस रही हैं वहाँ बड़े-बड़े राजनेता करोड़ों रुपयों का भ्रष्ट्राचार कर रहे हैं। हवाला कांड ने इन लोगों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा साम्राज्यवादी ताकतों के साथ साठ-गांठ की पोल खोली है। राजनीति में बढ़ता भ्रष्टाचार, अपराधीकरण का सगा भाई है। सत्ता के नशे में, पैसे के बल पर, औरतों का बलात्कार व हत्या सब माफ़ हैं। जलगांव का सैक्स कांड, दिल्ली का नयना साहनी कांड, यही साबित करते हैं।

चुनाव की सरगर्मियाँ बढ़ रही हैं। ऐसे में महिलाओं के वोट बटोरने के लिए तरह तरह के हथकण्डे अपनाये जाते हैं। एक खतरनाक तरीका है मज़हब का राजनैतिक इस्तेमाल - औरतों की धार्मिक आस्था और श्रद्धा का दुरूपयोग। जब महिलाओं के अधिकारों का सवाल आता है तब सभी धर्मों की फिरकापरस्त ताकतें दकियानूसी कायदे और संस्कार औरतों पर थोपती हैं। कभी कभी तो धर्म और जाति की प्रतिष्ठा के नाम पर औरत को औरत के ख़िलाफ खड़ा कर दिया जाता है जैसे कि जयपुर में भंवरी बाई के विरोध में ग्रामीण महिलाओं का जाली संगठन बनाया गया।

यौन-हिंसा और बलात्कार की ख़बरें औरत पर बढ़ते अत्याचार का सबूत है। न एक साल की बच्ची बख्शी जाती है न अस्सी साल की वृद्धा। भ्रूण-हत्या, छेड़-छाड़, बच्चियों के साथ यौन हिंसा, घरेलू मार-पीट, दहेज उत्पीड़न, वृद्धाओं की हत्या, धर्म और जातिगत हिंसा, राजसत्ता द्वारा हिंसा, व बढ़ता सैक्स व्यापार - हिंसा के इन अनेकों पहलुओं से हर उम्र, वर्ग, जाति व धर्म की औरतें मानसिक यंत्रणा भुगत रही हैं। जनता के आन्दोलनों को कुचलने के लिए भी राजतंत्र यौनिक हिंसा को हथियार बना रहा है। मुज़फ्फरनगर काण्ड इसका ताज़ा उदाहरण है।

हाल में हुए कोर्ट के कुछ फैसले न्याय – व्यवस्था के नारी विरोधी रूख को उजागर करते हैं। जैसे बिहार का पड़रिया काण्ड, बंगलौर की नर्स के साथ बलात्कार का केस, राजस्थान की भंवरी बाई का केस। सबसे बेतुकी बात यह है कि बलात्कार की स्थिति में, शिकारी को नहीं, शिकार को अपराध के प्रमाण देने पड़ते हैं - ऐसे बेमानी प्रमाण, जिन्हें जुटाना भी मुश्किल है। पुरुष-प्रधान समाज में औरत ही कसूरवार ठहरायी जाती है।

औरत की ओर देखने की नज़रें क्यों इतनी घृणित और कुत्सित होती जा रही हैं ? आज प्रसार माध्यमों में विज्ञापन, फिल्में, धारावाहिक आदि सैक्स व हिंसा, लालच व ईर्ष्या, होड़ व स्वार्थपरता जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रही हैं, जिनसे हमारे पितृसत्तात्मक समाज में औरत का दर्जा गिरता ही जा रहा है।

**आइये, हम सब एक जुट होकर एक नए संघर्ष का एलान करें।**

- **हम आर्थिक 'सुधार' नहीं आर्थिक 'बदलाव' चाहते हैं।**
- **हम सांप्रदायिक ताकतों का मोहरा नहीं बनेंगे। हम अमन और चैन चाहते हैं।**
- **हम औरत पर हो रही हर प्रकार की हिंसा का प्रतिकार करेंगे।**
- **हम औरतों के पक्ष में कानून बनवाएंगे।**

# परिवार कल्याण
## – भारत सरकार स्टाइल

टी वी पर आजकल रोज़ कोई न कोई जानी-मानी हस्ती हमें कहती है "हर साल परिवार कल्याण की योजना सरकार बनाती आ रही है, पर इस साल वह चाहती है कि परिवार कल्याण की योजना लोग खुद बनाएं। अपने विचार वे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से लेकर सचिव, परिवार कल्याण विभाग को भेजें।" आप पूछ सकते हैं कि भला इसमें बुराई क्या है - हाँ, बुराई तो कुछ नहीं, पर यह हो क्या रहा है ? क्या यह इस दमनकारी विभाग की धूमिल छवि को पोतने की कोशिश है या यह सरकार का इस कार्यक्रम में जन्म-दर कम करने में अपनी असफलता का इज़हार है ? नहीं तो जनता की भागीदारी सिर्फ परिवार कल्याण विभाग तक ही सीमित क्यों ? सरकार पैसे उधार लेते समय यह क्यों नहीं पूछती कि क्या हम इस उधार से सरदार सरोवर बाँध बनवा लें ? वह विदेशी पूँजी को निमंत्रण देने से पहले यह क्यों नहीं पूछती कि क्या हम गुलामी का इतिहास दोहरा लें ? वह देश की जनता से लड़ने के लिए सैनिक व अर्धसैनिक बल भेजते समय जनता को क्यों नहीं कहती कि आप अपने सुझाव बगल के थाने में दर्ज करा दें ? सरकार बड़ी से बड़ी राष्ट्रीय सम्पत्ति कौड़ियों के दाम विदेशी वित्तीय संस्थाओं को बेचने से पहले क्यों नही पूछती कि क्या हम आपकी जायदाद लुटा दें ? हमारे राजनेता हवाले के पैसों के दम पर अपनी पार्टियाँ चलाते वक्त हमसे क्यों नहीं पूछते कि क्या हमारी पार्टी की आपको जरूरत है ? अरे, जनता की तो दूर, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस सरकार ने तो देश के भविष्य को डंकल प्रस्ताव के जरिए नीलाम करते समय संसद तक की राय लेना जरूरी नहीं समझा।

न जाने सरकार परिवार कल्याण को कैसे देखती है पर हमारे हिसाब से तो परिवार कल्याण का अर्थ है बच्चों का भविष्य, जवानों को रोजगार, बुढ़ापे में आराम, सबके लिए काम, शिक्षा, दवा-दारु का प्रबंध, इत्यादि-इत्यादि। और ये बातें तय होती हैं सरकार की व्यापक नीतियों से - न कि परिवार कल्याण विभाग द्वारा, और आज तो हमें सरकारी नीतियों के चलते परिवार का बेड़ा गर्क होता नजर आ रहा है।

हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था ही नहीं पूरी व्यवस्था ही बैठ गई है। राजनेताओं ने पता नहीं उधार लेकर अपने क्या-क्या उल्लू सीधे किए - हमें तो सिर्फ यह मालूम है कि इनका अंजाम रहा "कलर टीवी" और ढाँचागत समायोजन। अब तो आलम यह है कि सरकार का पैसा उधार चुकता करने में जा रहा है और शिक्षा व "परिवार कल्याण" के कार्यक्रम भी उधार ले लेकर चलाए जा रहे हैं। कलर टीवी का इस्तेमाल लोगों को झूठे सपने दिखाने में हो रहा है और जब मौका मिलता है देशी-विदेशी हर चैनल पर सरकार अपना गुणगान शुरू कर देती है। शायद वह यह सोचती है कि रोज

Re. 1

सचिव
परिवार कल्याण विभाग
निर्माण भवन
नई दिल्ली-110 001.

Re. 1

सहेली
डिफेंस कॉलोनी फ्लाई ओवर मार्किट
नई दिल्ली-110 024.

महोदय,

हम आपके आभारी हैं कि आपने परिवार कल्याण पर हमें योजना बनाने में स्थान दिया। पहले-पहल तो हम यह कहना चाहते हैं कि परिवार कल्याण की सीमा आपका विभाग नहीं है क्योंकि अपने परिवार के असली कल्याण के लिए हमें रोजगार, सही दामों पर भोजन, बच्चों के लिए शिक्षा, बूढ़ों के लिए पेंशन व सबको स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध होना जरूरी है। साथ ही हम चाहते हैं कि हर कदम पर फैसला हमारे हाथ में ही बनाए रखने के लिए आप हमें अच्छी गुणवत्ता के निरोध, डायफ्राम व अन्य अवरोधक तरीके उपलब्ध कराएँ।

अगर आप वाकई योजना बनाने में आम लोगों की भागीदारी चाहते हैं तो तुरंत बच्चों की संख्या के आधार पर चुनाव लड़ने की पात्रता सीमित करने वाले कानून को बदलिए, ताकि योजना का दायरा आम लोगों की आम समस्याओं तक पहुँचे व बच्चे सीमित करने पर ही केंद्रित न रहे।

मित्रो,

हमने भारत सरकार को अपने सुझाव भेज दिये हैं।

- आपके द्वारा की जाने वाली भावी पहल की हमें सूचना देते रहिए
- हमें पोस्टकार्ड की और प्रतियाँ भेजें

एक ही झूठ दोहराने से शायद लोगों को वही सच लगने लगे। वे यह मानने लग जाएं कि देश का ही नहीं बल्कि परिवार का भी कल्याण हुआ है - आपसी भाईचारा बढ़ा है (बाबरी मस्जिद टूटी तो क्या), लोगों को नौकरियाँ मिल रही हैं (उद्योग बंद हो रहे हैं तो क्या), झुग्गी में रहने वाले भी रे बैन धूप के चश्में पहन रहे हैं (घर नहीं तो क्या रंगीन चश्में से सभी कुछ रंगीन हो जाएगा) और जवान लड़कियाँ खुश होकर हमारे प्रधानमंत्री की तस्वीर को सोहराने में लगी हैं (शाहरूख खान जी बुरा न मानिए)। दूने दाम पर बच्चों के लिए दूध खरीदते हुए भी हमसे यह उम्मीद रखी जा रही है कि हम मँहगाई की दर में कमी आने की खबर पचा जाएँ।

हाँ, तो हम भूल ही गए थे कि सवाल देश या जनजीवन का नहीं "परिवार कल्याण" को आगे बढ़ाने का था। तो चलिए हम फिर एक बार सरकार के इस नए पैतरें की वजह खोजें। सरकार को अगर वाकई हमारी राय चाहिए थी तो वह पंचायती राज का फायदा उठाती। पर यह रास्ता तो सरकार ने खुद ही बंद कर दिया - पंचायती राज के तहत उसने पहले ही दो से ज्यादा बच्चों वाली औरतों को चुनाव लड़ने के लिए नाकाबिल करार दे दिया। अब जिस देश में औरतों के औसतन 3.6 बच्चे हो रहे हैं वहाँ अधिकांश औरतें तो चुनाव लड़ ही नहीं सकतीं - भला सरकारी तंत्र से सरकार को अब यह कैसे पता चले कि हम चाहते क्या हैं। यह तो रही सरकार की लोगों की आवाज को बाहर रखने की कोशिश।

अब और देखें सरकार की मंशा क्या है ? सरकार आज भी सिर्फ नाम की ही भागीदारी दे रही है। असलियत में तो उसने विश्व बैंक समेत अनेकों द्विपक्षीय व बहुपक्षीय संस्थाओं से अगले 10-12 सालों के लिए "परिवार कल्याण" कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर करार कर लिए हैं। इन करारों की पकड़ हमारे सुझावों से कहीं ज्यादा मज़बूत है और हर करार में सरकार ने इस मामले में दम्पत्ति व विशेष रूप से औरत की स्वाधीनता को दाँव पर लगा दिया है। मसलन, विश्व बैंक के साथ किए गए करार में सरकार ने यह माना है कि वह सूइयों का प्रचलन करेगी। इसी तरह अमरीका के साथ किए गए करार में उसने माना है कि वह अमरीकी उत्पादों को भारत आने देगी और गर्भ निरोधक गोलियों का वितरण डाक्टरी सलाह की एवज पान वाले की दुकानों से होगा। शायद अपने सुझाव भी हमें पान वाले को ही दे देने चाहिए, क्योंकि कम-से-कम पान तो वह हमारी पसंद का ही बनाता है।

तो, एक ओर तो ऐसा प्रतिनिधित्व है जिसकी मदद से औरतों को सत्ता की दहलीज के बाहर ही रख दिया गया है ओर दूसरी और हैं वे गर्भ निरोधक जो औरतों की इच्छा पर निर्भर ही नहीं करते - जैसे सूइयाँ, नॉरप्लांट व टीका - जिन पर आजकल ज्यादा जोर है। परिवार कल्याण की शासकीय परिभाषा यह है कि औरतों को बस एक बार किसी तरह बच्चे पैदा करने से रोकने के लिए तैयार कर लो, फिर सालों-साल तक यह फैसला ही उनके हाथ से छीन लो। तो, चाहे जिस पहलू से हम देख लें, हमारी मर्जी की

सरकारी तंत्र में कोई जगह है ही नहीं।

पर सरकार भी आज चैन से रह पाने की स्थिति में है नहीं। उसे तो ढाँचागत समायोजन की मानी हुई शर्त के तहत विश्व बैंक को जनसंख्या वृद्धि रोकने की दिशा में कुछ करके दिखाना है। पहले तो उसने जनसंख्या नीति बनाने की कोशिश की, ताकि और उपाय फेल हो जाएं तो सेना ही जनसंख्या पर काबू पा ले। हवालिए भले ही सजा पाएँ या नहीं, दो से ज्यादा बच्चे पैदा करने वालों की सजा हो, उनको नौकरी, राशन इत्यादि की सुविधाओं से वंचित रखा जाए। पर इस नीति को कार्यान्वित करने में सरकार की दाल कुछ गली नहीं। और वह तो कुछ नया कर दिखाने का वायदा कर चुकी है - ऐसे समय में उसने उठाया है "सहभागिता" का नारा। "सुझावों" का असली मतलब है कि हम सरकार को बताएँ कि हम कम बच्चे पैदा करने का क्या लेंगे। सवाल की दिशा पहले से ही तय है। आप कहीं गलती से यह न समझ लीजिए कि आपको मनचाहे बच्चे पैदा करने की छूट है।

पर हमारे बच्चों से विश्व बैंक को क्या लेना-देना ? पर हमें यह याद रखना चाहिए कि पिछले 50 सालों से विश्व बैंक ने सम्पन्न देशों की प्रभुता बनाए रखने के लिए काम किया है। आज इन देशों में वाकई भविष्य की एक चिंता है — चूँकि इन देशों में बच्चे कम पैदा हो रहे हैं व बूढ़े ज्यादा समय तक जी रहे हैं, इसलिए एक ऐसा समय आने वाला है जब काम करने वालों की संख्या तो कम हो जाएगी, पर उन्हें बहुत सारे बूढ़े लोगों का भार ढोना होगा। दूसरी ओर इनके देशों के प्रभाव में जीने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और यह संख्या शक्ति का संतुलन बदलने की सम्भावना रखती है।

और आज शक्ति के इस प्रतिकूल संतुलन को बनाए रखने के लिए हमारे सुझाव माँगे जा रहे हैं। सुझाव शायद बंद ताले में पड़े कागजों की तरह चूहों द्वारा कुतर लिए जाएं पर फिर भी हम यह मौका क्यों गवाएँ। इसलिए अपने सुझावों द्वारा आज जरूरत है :

1. परिवार कल्याण को फिर से परिभाषित करने की - ताकि इसके तहत हम सरकार से बुनियादी सुविधाएँ माँग सकें;
2. अपने बच्चों के भविष्य को सुनिश्चित करने की;
3. फैसलों को अपने हक में कराने के लिए जन प्रतिनिधित्व कानून से बच्चों के आधार पर पात्रता तय करने की शर्त हटाने की;
4. गर्भ निरोधक तरीकों में निहित नियंत्रण को पलटकर कारगर अवरोधक गर्भ निरोधकों की माँग उठाने की;

इस आशय से आप अपने पोस्ट-कार्ड परिवार कल्याण विभाग को भेजें व एक प्रति हमें भी ताकि हम आपके सुझावों की शक्ति को और मजबूत कर सकें।

गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका"

Re. 1

डेविड ग्रिफिन
c/o विश्व स्वास्थ्य संगठन, क्षेत्रीय कार्यालय
इंद्रप्रस्थ इस्टेट
नई दिल्ली-110 002.

Re. 1

सहेली
डिफेंस कॉलोनी फ्लाई ओवर मार्किट
नई दिल्ली-110 024.

# विश्व स्वास्थ्य संगठन को गर्भरोधी "टीके" के खिलाफ अपना मत भेजिए

## पोस्टकार्ड अभियान में जुड़िए !

गर्भरोधी "टीके" पर चल रही खोज का विरोध तीन साल से हो रहा है और इस विरोध में नारी संगठनों के अलावा देश-विदेश के छात्र संगठन, विज्ञान संगठन, ट्रेड यूनियनें भी जुड़ी हैं। इस खोज से जुड़े संस्थानों में से खास हैं – विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कार्यक्रम कोष, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम का मानव प्रजनन शोध प्रोग्राम (ह्यूमन रिप्रोडक्शन रिसर्च प्रोग्राम), अमरीका की पाप्यूलेशन काउंसिल व भारत का राष्ट्रीय प्रतिरक्षण संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनालोजी)। अभियान के दौरान अंतरराष्ट्रीय अभियान दल ने विभिन्न शोध संस्थानों व दाता एजेंसियों से बात-चीत की है। इसी बात-चीत के दौरान मानव प्रजनन शोध प्रोग्राम के "टीके" पर काम करने वाले दल के प्रमुख श्री डेविड ग्रिफिन ने कहा कि अगर उन्हें पता चले कि औरतें उनका बनाया "टीका" नहीं चाहती हैं तो वे अपनी शोध बंद करने की सोचेंगे। हमने सोचा कि यह एक अच्छा मौका है कि पूरी दुनिया से औरतें ग्रिफिन को पोस्टकार्ड लिखकर अपनी राय दें। टीके तो आखिर बीमारी से बचने के लिए लगाए जाते हैं और हमें इस बात से ही परेशानी है कि गर्भावस्था को बीमारी माना जाय, इसलिए हम इस अजीबो-गरीब टीके को "टीका" कहकर ही सम्बोधित करने पर मजबूर हैं।

आज विकसित हो रहे गर्भरोधी "टीकों" का काम है शरीर को एच सी जी नामक हार्मोन के खिलाफ लैस कर देना। एच सी जी गर्भावस्था के लिए जरूरी होता है व औरत के शरीर में तब बनता है जब उसका अंडा निषेचित हो जाता है।

वैसे तो दूसरे कई "टीके" भी बन रहे हैं जो शरीर को शुक्राणु, अंडे व अन्य हार्मोनों के खिलाफ लैस करने के सिद्धांत पर आधारित हैं।

अब तक जो "टीके" बने हैं उनके साथ वैसे तो कई दिक्कतें हैं पर कुछ दिक्कतें ऐसी हैं जो प्रतिरक्षण प्रणाली पर आधारित हर गर्भ निरोधक पर लागू होती हैं। ये हैं :

- लोगों की प्रतिरक्षण क्षमता का अलग-अलग होना। अर्थात् एक ही प्रकार के "टीके" से किसी औरत के अंदर तो इतनी भी क्षमता नहीं बन पाना कि गर्भधारण रुक सके व दूसरी औरत का हमेशा के लिए बाँझ हो जाना;
- बीमारी, थकान, तनाव के चलते व्यक्ति विशेष की प्रतिरक्षण क्षमता का कभी भी गिर जाना। अर्थात् किसी भी समय गर्भनिरोध का बेअसर हो जाना:

गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका" • गर्भरोधी "टीका"

महोदय

हमें पता चला है कि आप गर्भरोधी "टीके" के विकास पर सम्भावित उपभोक्ताओं के विचार जानना चाह रहे हैं। हमारे अनुसार तो प्रतिरक्षण प्रणाली के इस्तेमाल पर आधारित व शोध से उजागर हो चुके खतरों वाले इन अविश्वसनीय गर्भ निरोधकों को कोई उपभोक्ता चाहता ही नहीं है।

हाँ, इन "टीकों" को हमारी जानकारी अथवा स्वीकृति बगैर हम पर जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम के तहत थोपे जाने की पूरी सम्भावना है।

हम आपसे आग्रह करते हैं कि आप इस शोध को रोकिए, जिससे किसी औरत को फायदा तो नहीं है पर उसकी जिंदगी से खिलवाड़ होने की पूरी सम्भावना है। इसके विपरीत आप ऐसे गर्भ निरोधकों पर शोध कीजिए जो भरोसेमंद हों, जिनसे स्वास्थ्य को खतरे न हों व जो उपभोक्ताओं के वश में हों।

मित्रों,

हमने डेविड ग्रिफिन को चिट्ठी भेज दी है

- हम चाहते हैं कि आप हमें इस पोस्टकार्ड की और प्रतियाँ भेजें।
- हम स्वयं भी जनसंख्या नियंत्रण और जबरन लगाए जा सकने वाले खतरनाक गर्भ निरोधक विरोधी अभियान में जुड़ना चाहते हैं।
- इन "टीकों" पर और जानकारी चाहते हैं।

- उपयोग करने वालों को पता नहीं चल पाना कि उनका गर्भ निरोधक कब बेअसर हो गया;
- प्रतिरक्षण के लिए बनी कोषिकाओं का प्रजनन संबधी दूसरे अंगों व हार्मोनों को भी नष्ट करना, क्योंकि इनकी बनावट लक्षित अवयव या हार्मोन से मिलती है।
- प्रतिरक्षण के लिए बनी कोषिकाओं का स्वयं शरीर का विरोधी होने के कारण उनसे जानलेवा एलर्जी, व प्रतिरक्षण सम्बंधी बीमारियों का बढ़ जाना, यहाँ तक कि एड्स जैसी बीमारी के तेजी से उभरने की आशंका को भी नकारा नहीं जा सकता।

कुल मिलाकर ये गर्भ निरोधक हमेशा ही अविश्वसनीय रहेंगे व स्वास्थ्य के लिए खतरनाक भी। साथ ही, दूसरे हार्मोनों को नष्ट करके ये हार्मोनल गर्भ निरोधकों के नुकसान भी शरीर को दे सकते हैं। अत : यह सम्भव ही नहीं है कि कोई जान-बूझकर ऐसे गर्भ निरोधक इस्तेमाल करना चाहे, क्योंकि इनसे कहीं ज्यादा भरोसेमंद व सुरक्षित विकल्प पहले से ही मौजूद हैं।

फिर भी विश्व के गर्भ निरोधक शोध के बजट का 10% "टीके" की शोध पर लगाया जा रहा है और अजीबो-गरीब टीकों का परीक्षण औरतों पर हो रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन जिस "टीके" के पीछे पड़ा हुआ है वह टूथ पेस्ट जैसा गाढ़ा है व इतना अस्थायी है कि उस बनाते ही लगाना पड़ता है। वैसे ही नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलाजी ऐसे "टीके" को लेकर परीक्षण करने पर आमादा है जो 20% से भी अधिक औरतों में बेअसर पाया गया है। जाहिर है कि शोध का उद्देश्य औरतों की जरूरत को पूरा करने वाले गर्भ निरोधक बनाना नहीं है।

हाँ, एक बात ज़रूर गौरतलब है - ये "टीके" अब तक विकसित सभी गर्भ निरोधकों को दुरुपयोग की कसौटी पर पीछे छोड़ सकते हैं, क्योंकि इन्हें लगाने से पहले सहमति लेना तो दूर, औरतों को बताने तक की जरूरत नहीं है कि उन्हें गर्भ निरोधक लगाया जा रहा है। यह "टीका" उन्हें दूसरे टीकों के साथ दिया जाना है - जैसे टिटेनस टॉक्साइड व डिफ्थीरिया टॉक्साइड के साथ - व टीकाकरण प्रोग्राम के तहत इसे आराम से लगाया जा सकता है। औरतों को तो यह बताने की जरूरत ही नहीं है कि अब वे गर्भ धारण करने लायक नहीं हैं, क्योंकि इनके विपरीत असर प्रजनन प्रणाली से ज्यादा जुड़े हुए नहीं है।

दुरुपयोग की इस संभावना के चलते ये जनसंख्या नियंत्रण के मजबूत हथियार हैं। क्या हुआ, अगर ये व्यक्ति विशेष की जरूरतों को पूरा नहीं करते - कम से कम इन्हें हर आदमी और हर औरत को लगाया तो जा सकता है। 20 प्रतिशत बेअसर होने पर भी ये जन्मदर घटा तो देंगे। नैतिक डाक्टरी शोध का तकाजा है कि नए गर्भ निरोधक पुरानों से बेहतर हों पर ये "टीके" नैतिकता की सीमा से परे हैं।

इस्तेमाल करने वालों के नज़रिए से तो ऐसे गर्भ निरोधक चाहिए जो भरोसेमंद, निरापद व खुद के नियंत्रण में हों। पर ऐसे गर्भ निरोधकों पर शोध हो ही नहीं रही है क्योंकि अमीर देशों की दाता एजेंसियाँ सिर्फ उन्हीं गर्भ निरोधकों पर शोध के लिए पैसे देना चाहती हैं जिन पर डाक्टर समुदाय का वश हो, व जिन्हें व्यापक स्तर पर लगाकर लम्बे अर्से के लिए गर्भ धारण को रोका जा सके। औरतों के स्वास्थ्य व नियंत्रण की इन्हें कोई परवाह ही नहीं है।

इसी प्रचलन को रोकने के लिए हमारी आपसे गुजारिश है कि आप ग्रिफिन को पोस्टकार्ड भेजकर बताएँ कि आप क्या चाहते हैं क्या नहीं। अपने पोस्टकार्ड भेजने की खबर हमें भी भेजें ताकि हम इस खतरनाक शोध को रोकने के लिए दबाव डाल सकें।

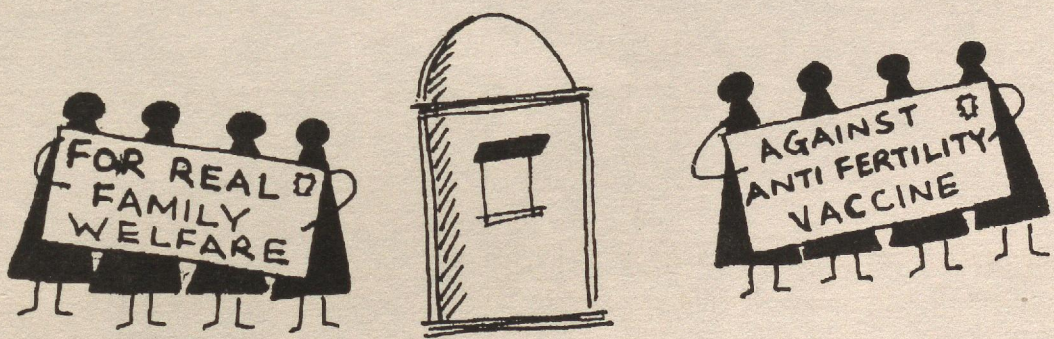

all women

# एक अभियान की शुरुआत - समतावादी परिवारिक कानून

one law

पिछले दस सालों से औरतों की कानून में बराबरी की लड़ाई लगातार सेमिनार कक्षों व गोष्ठियों तक सीमित हो कर रह गई हैं। इस वर्ष सहेली ने इस मुद्दे को फिर लोगों के बीच ले जाने की पहल की हैं। नीचे हमारी पर्ची पेश हैं :

**साथियों,**

आज, 8 मार्च के अवसर पर यह पर्चा लेकर हम आपके पास आए हैं। 8 मार्च, 1907 के दिन अमरीका की हजारों कामकाजी औरतें अपने आर्थिक अधिकारों व काम करने की बेहतर शर्तों की मांग को लेकर संघर्ष पर उतर आई थीं। इस ऐतिहासिक घटना को याद करते हुए, 8 मार्च को अतंराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। आइए, **इस वर्ष, आज के दिन हम सब मिलकर धर्म पर आधारित पारिवारिक कानूनों के खिलाफ आवाज बुलन्द करें** और एक ऐसी प्रगतिशील नागरिक संहिता की मांग उठाएं जिसमें औरत व मर्द को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो।

समय-समय पर, सत्ता में आने वाली हर सरकार, महिला कल्याण के प्रति अपनी जिम्मेदारी दिखाने का नाटक करती रही है। दूसरी तरफ देश की करोड़ों औरतें बदहाली का जीवन जीने को मजबूर हैं क्योंकि उन्हें आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। पुरुष-प्रधान समाज व जन-विरोधी सरकार ने घरेलू कार्य में औरतों के श्रम को आज तक मान्यता नहीं दी है। देश भर में चल रहा नारी-मुक्ति आंदोलन इसी क्रूर सच्चाई के खिलाफ लड़ता रहा है।

विवाह, विरासत, तलाक, खर्चा इत्यादि सभी कानून धार्मिक कानूनों पर आधारित हैं। अलग-अलग धर्मों के अलग-अलग कानून होते हुए भी एक बात इन सब कानूनों में समान है - कानूनन औरत को बराबरी के हक न देना। धार्मिक कानून, चाहे वह हिन्दू धर्म हो या मुस्लिम या फिर ईसाई, घर के काम में औरत की मेहनत को श्रम नहीं मानता।

शिक्षा व नौकरी में अवसरों की कमी तथा क्रेश आदि जैसी बुनियादी सहूलियतों का अभाव औरतों के घर से बाहर निकल कर काम करने की संभावना को कम कर देते हैं। साथ ही बच्चों के पालन-पोषण व कमरतोड़ घरेलू काम को कोई काम मानता ही नहीं। तलाक की स्थिति में औरत अपने वैवाहिक घर में रहने तक का कानूनी दावा नहीं कर सकती। दहेज आज भी पति की सामाजिक हैसियत को मद्देनजर रखते हुए दिया जाता है। औरत को किसी प्रकार की सुरक्षा देना तो दूर रहा, उल्टे दहेज-प्रथा आज भी अनगिनत औरतों को मौत के मुँह में धकेल रही है। इस प्रकार घर चलाने में की गई भागीदारी औरत को परिवार की कमाई व सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं देती।

ज़िल्लत भरी इस स्थिति से निकल कर आत्म-सम्मान का जीवन शुरू करना किसी भी औरत को असंभव जान पड़ता है। शादी टूटने की दशा में जब वह न्याय पाने की कोशिश करती है तो उसका सामना धर्म पर आधारित पारिवारिक कानून से होता है जो उसे न्याय दे ही नहीं सकता, फिर चाहे वह खर्च का मामला हो, जायदाद का या फिर तलाक का। यह एक ऐसी सच्चाई है जिसका सामना आज देश की हर औरत कर रही है चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या समुदाय की हो।

सभी औरतों के लिए समान कानून की मांग को लेकर चलते आए लम्बे संघर्ष के बावजूद भी स्थिति में कुछ बदलाव नहीं आया है। साम्प्रदायिक राजनीति, बढ़ती हुई कट्टरवादिता और चुनावी खेल के कारण औरतों के अधिकारों से जुड़े इस मुद्दे को उठाना और मुश्किल हो गया है। सालों से सत्ता में बैठी कांग्रेस सरकार इसे धर्म का मामला बताकर कानून में बदलाव करने को तैयार नहीं है। दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टी आज औरतों के अधिकारों के रक्षक का मुखौटा चढ़ाए एक 'समान नागरिक संहिता' की मांग उठा रही है। इस मुखौटे के पीछे साम्प्रदायिकता की वह राजनीति छिपी है जो सभी अल्पसंख्यक समुदायों को हिन्दू पारिवारिक कानून से बांधता चाहती है। चुनावों की इस राजनीति ने अधिकारों के इस मुद्दे को चुनावी मुद्दा बना छोड़ा है। इसलिए आज जरूरत है कि हम सब औरतें मिलकर अपने हकों की लड़ाई को आगे बढ़ाएं।

- **आइये, भेदभाव करने वाले इन पारिवारिक कानूनों के खिलाफ संघर्ष करें।**
- **आइये, सभी औरतों के लिए समतावादी कानून की मांग उठाएं क्योंकि यह एक बुनियादी जनवादी अधिकार है।**
- **आइये, सभी औरतों के लिए एक प्रगतिशील, बराबरी का दर्जा देने वाली नागरिक संहिता के लिए संघर्ष तेज करें।**
- **आइये, समाज में व्याप्त, औरतों के शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ एकजुटता के साथ मोर्चा बांधें।**

# सहेली

न्यूजलेटर

सितम्बर 1997

## विषय


क्विनाक्रिन
–नारी शरीर पर अनैतिक और अवैध प्रयोग 2

साथिन संघर्ष
–मौजूदा स्थिति 7

कार्यस्थल पर यौन उत्पीडन
–सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आखिर इस समस्या की स्वीकृति 8

नारी आन्दोलनों का राष्ट्रीय सम्मेलन
–महिलाओं के नाम एक पैगाम 11



कृपया निम्नलिखित पते पर लौटा दें:
सहेली वूमेन्स रिसोर्स सेन्टर, दुकान न.१०५-१०८ के उपर,डिफेन्स कालोनी फ्लायओवर मार्केट, नई दिल्ली ११००२४, टेलिफोन-४६९६४८५


मुद्रित सामग्री/बुक पोस्ट

# क्विनाक्रिन नसबन्दी

## नारी शरीर पर अनैतिक और अवैध प्रयोग

ग्यारह जुलाई, प्रति वर्ष 'विश्व जनसंख्या दिवस' के रूप मे मनाया जाता है। और इस दिवस पर जनसंख्या नियंत्रण का खुल कर प्रचार किया जाता है। इस वर्ष, जनसंख्या दिवस के अवसर पर सहेली ने *'क्विनाक्रिन : औरतों की रासायनिक नसबंदी की घिनौनी कहानी '* नामक एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में यह बताने का प्रयास किया गया है कि सरकार की आक्रमणकारी जनसंख्या नीति किस तरह महिलाओं के जीवन व स्वास्थ्य को खतरे में डाल रही है।

इस रिपोर्ट में नाज़ी नज़रबंदी शिविरों में क्विनाक्रिन के भयानक प्रयोग से लेकर महिला नसबंदी के लिए इसके मौजूदा प्रयोग का इतिहास दिया गया है। यह रिपोर्ट विकसित देशों में प्रवासियों का विरोध करने वाले नस्लवादी समूहों, जैसे एलटन केस्सल और स्टिफेन ममफोर्ड, के निहित स्वार्थो का पर्दाफाश करती है। इन समूहों का मानना है कि तीसरी दुनिया की जनसंख्या विकसित देशों के लिए खतरा पैदा कर सकती है। रिपोर्ट में यह भी साबित हो जाता है कि भारत में क्विनाक्रिन नसबंदी से संबंधित सभी वर्ग किस तरह चिकित्सा व नैतिकता के आदर्शों का और देश के कानूनों का उल्लंघन कर रहे हैं।

लगभग तीन दशकों से महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन के इस्तेमाल को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके प्रचार में वैज्ञानिक प्रमाणों को नहीं बल्कि इसके समर्थकों द्वारा बढ़ा–चढ़ा कर किए दावों को अधिक महत्व दिया गया है। आश्चर्य की बात है कि अपर्याप्त शोध के बावजूद इसका प्रयोग विश्व भर में किया जा रहा है। निहित स्वार्थो के समर्थन में व उनके लाभ के लिए जानकारी व आँकड़ो को गलत ढंग से पेश कर अनैतिक चिकित्सा व्यवसाय को बड़ी बेशर्मी से बढ़ावा दिया गया। नतीजा यह कि तीसरी दुनिया की महिलाओं के स्वास्थ्य की निरंतर अवहेलना होती गयी।

पिछले बीस वर्षो में महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन का प्रयोग भारत को मिलाकर पंद्रह देशों में किया गया है। औपचारिक रूप से स्वीकृति न होने के बावजूद भारत में इसका प्रयोग किया जा रहा है। देश भर में क्विनाक्रिन नसबंदी अधिकतर गैर सरकारी संस्थाओं व निजी चिकित्सकों द्वारा की जा रही है। इस आचरण को किसी भी आधार पर सही नहीं ठहराया जा सकता, न मेडिकल, न सामाजिक ; कानूनी या नैतिकता के आधार पर भी नहीं। उन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं कि उनके इस आचरण से महिलाओं के जीवन व स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है। उन्हें मतलब है तो केवल इस प्रयोग का दायरा बढ़ाने से।

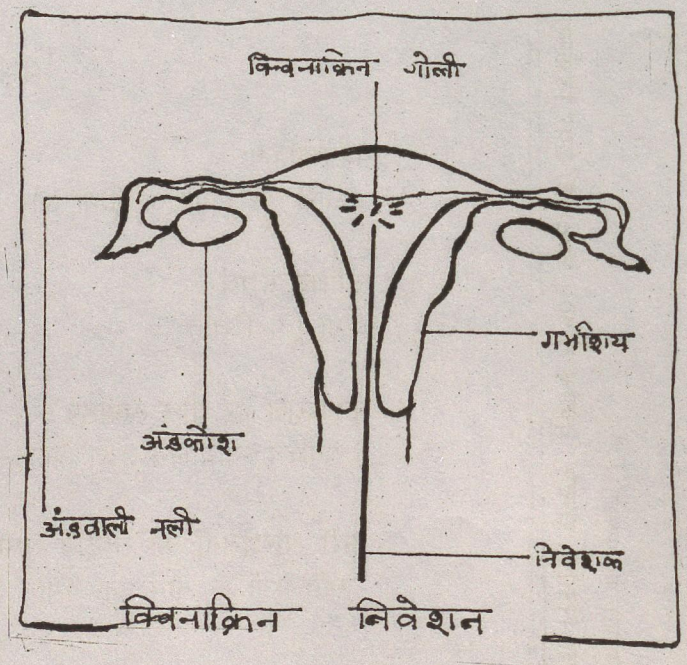


### चिकित्सा संबंधी मुद्दे : सवाल अनेक, जवाब एक भी नहीं

महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन का प्रयोग प्रारम्भिक परीक्षणों से ही विवादास्पद रहा है। क्विनाक्रिन जैसे क्षयकारी कारक से गर्भाशय की परत को क्षति पहुंचा कर नसबंदी करने के सुझाव से दिक्कतें भी आई। परन्तु इसके बावजूद, इसका प्रयोग बंद नही किया गया। लेकिन इन सालों में, महिलाओं के स्वास्थ्य पर हुए इसके भयंकर दुष्प्रभाव स्पष्ट रूप से नजर आए। और इस स्पष्टता के साथ ही विरोध ने जोर पकड़ा।

चिंता का एक मुख्य कारण रहा है, गर्भाशय में क्विनाक्रिन का अप्रत्यक्ष रूप से प्रवेश करना। प्रवेश के इस तरीके से कई समस्याएं उत्पन्न हुई, जैसे, गर्भाशय की बाहरी व अन्दरूनी परतों का जुड़ना, गर्भाशय में छेद होना, गर्भाशय का मुँह बंद होना ( स्पाईकल स्टेनोसिस् ), इत्यादि।

नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन के प्रभावी होने का मूल प्रश्न भी सदा चिंता का विषय रहा है। इसके समर्थक भी इस बात को मानते हैं कि इस उपाय की सफलता–असफलता का दर घटता–बढ़ता है। यह निवेश करने वाले की दक्षता, अतिरिक्त गर्भ निरोधक के संरक्षण, इत्यादि पर निर्भर रहता है। और वे यह भी मानते हैं कि इसकी सफलता का दर अभी संतोषजनक सीमा तक नहीं पहुंचा है। फिर भी विश्व भर में महिलाओं पर इस तरीके का इस्तेमाल किया जा रहा है।

एक और चिंताजनक विषय है इस उपाय के इस्तेमाल से नली में गर्भ ठहरने ( एक्टोपिक प्रेग्नन्सि ) के खतरे का बढ़ना। इस जानलेवा संभावना पर जरा भी ध्यान नही दिया गया। इसके सर्जक इस बात को यह कहकर टाल जाते हैं कि इसके कारण नली में गर्भ ठहरने का खतरा उतना ही है जितना कि लूप/ कापर टी के निवेश से।

परन्तु सच्चाई यह है कि इंडियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च ( आय सी एम आर) द्वारा क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षणों को बंद करने का एक मुख्य कारण था नली में गर्भ ठहरने (एक्टोपिक गर्भ ) की भारी संख्या। दरअसल, लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज ( एल एच एम सी), नई दिल्ली द्वारा सम्पन्न एक सॅम्पल अध्ययन में बताया गया कि परीक्षणाधीन 32 महिलाओं में से एक को नली में गर्भ ठहरा। फिर विश्व भर में लगभग एक लाख महिलाओं में से कितनों की जान खतरें में पड़ी होगी, यह सोच कर तो शरीर सिहर जाता है।

इस उत्पाद के दीर्घकालीन

प्रभावों जैसे महत्वपूर्ण पहलू के अध्ययन पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया। आज तीन दशकों के बाद भी जानवरों पर इसके परीक्षण अपर्याप्त हैं। अभी तक यह भी पूरी तरह ज्ञात नहीं है कि इसके इस्तेमाल करने से टिश्यू में परिवर्तन लाने की संभावना कितनी है ( म्यूटाजेनिक् संभावना); भ्रूण पर इसके क्या प्रभाव हो सकते हैं ( टेराटोजेनिसिटि); कैंसर होने की क्या संभावना हैं ( कारसिनोजेनिसिटि) और टिश्यू में समाए रहने की क्षमता कितनी है, इत्यादि। जो थोड़े बहुत अध्ययन हुए हैं उनमें इस बात का संकेत दिया गया है कि क्विनाक्रिन के कारण उत्परिवर्तन ( म्यूटेशन) हो सकते हैं, इसलिए, इस पर अभी और परीक्षण होने चाहिए। क्विनाक्रिन से भ्रूण पर पड़ने वाले प्रभावों पर कोई जानकारी नहीं मिलती। जानकारी की कमी को सुविधापूर्वक ऐसे प्रभावों के न होने का प्रमाण बताया गया है। और इस उपाय के इस्तेमाल पर चिंताजनक "वैज्ञानिक जानकारी" के बावजूद इसको बड़े पैमाने पर अविकसित देशों के लिए एक आदर्श उपाय के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है।

**लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज,नई दिल्ली जैसे 'जिम्मेवार' चिकित्सा संस्थान में भी क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षणों के लिए,महिलाओं से जानकारी पर आधारित सहमति नहीं ली गई थी।**

क्विनाक्रिन के प्रचारकों का दावा है कि "इस पद्धति के कोई घातक परिणाम नहीं हैं। " और इसी आधार पर इस पद्धति को शल्य नसबंदी से बेहतर व निरापद तरीका बताते हैं। परन्तु समर्थकों के इस दावे की पुष्टि के लिए कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। दरअसल, स्थिति कुछ और ही है। इस औषधि के उत्पादक के अनुसार, 'क्विनाक्रिन घोल के इस्तेमाल से तीन महिलाओं की मृत्यु हुई'। इसी प्रकार की जानकारी बांग्लादेश के एक सुप्रसिद्ध डाक्टर, श्री जाफरूल्लाह चौधरी ने 10 मई, 1997 को दिल्ली में आयोजित एक सभा में दी। ऐसे उदाहरणों के बावजूद, समर्थकों का कहना है कि इसके इस्तेमाल से हुई मृत्यु की 'रिपोर्ट' नहीं मिलती। इसका कारण आंकड़ों का अभाव भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त, क्विनाक्रिन के विपरीत प्रभाव व दीर्घकालिन दुष्प्रभाव अस्वस्थता–दर (Morbidity) को भी बढ़ा सकते हैं। परन्तु इन पर पर्याप्त मात्रा में अध्ययन न होने के कारण न तो उनकी सही नापतोल ही हो सकी और न ही सुनिश्चित पूर्वानुमान की सम्भावना बन पायी।

एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा है क्विनाक्रिन का इस्तेमाल बंद करने के बाद प्रजनन क्षमता का लौटना। क्योंकि जिन विकासशील देशों में इसका प्रयोग किया जा रहा है, वहाँ की अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाओं, शिशु व बाल की भारी मृत्यु–दर, और कम उम्र में ही महिला नसबंदी के कारण प्रजनन क्षमता के बहाल होने के सवाल को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। परन्तु उपलब्ध आँकड़ों में प्रजनन क्षमता के लौटने का दर केवल 50 प्रतिशत बताया गया है। यह दर बहुत ही निम्न व अवांछनीय है। फिर भला इस तरीके को पूर्णतया निरापद या सफल कैसे माना जा सकता है ?

## शरीर पर परीक्षण : महिलाओं के जीवन के साथ खिलवाड़

जिस ढंग से क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षण किए गए वह बहुत ही संदेहास्पद है। कुछ परीक्षणों के अध्ययनों से पता चला कि कहीं अध्ययन के मध्य में निवेश का तरीका बदल दिया गया; कहीं निवेश की औषध का मिश्रण अचानक बदल दिया गया (उदाहरणतः क्विनाक्रिन+इबूप्रोफेन; क्विनाक्रिन+ टेट्रासाइक्लिन और क्विनाक्रिन+ डिक्लोफेनॉक)। परन्तु इन विभिन्न मिश्रणों के प्रभावों का अलग–अलग मूल्यांकन नहीं किया गया। कुछ अध्ययनों से पता चला कि क्विनाक्रिन नसबंदी के साथ अतिरिक्त निरोधक भी दिया गया। गर्भ निरोधक गोलियों की जगह दीर्घप्रभावी हार्मोनल गर्भ निरोधक सुई, डेपो प्रोवेरा दी गई। डेपो प्रोवेरा को अतिरिक्त गर्भ निरोधक के रूप में सम्मिलित करना बहुत अचम्भे की बात है क्योंकि इसके कई गंभीर दुष्प्रभाव हैं जिनमें से एक प्रजनन क्षमता के लौटने का सवाल है। इसके बावजूद, इसको इस्तेमाल करने की स्वीकृति दी गई और एल एच एम सी जैसे 'एक जिम्मेदार मेडिकल कालेज' मे इसका प्रयोग किया जा रहा है।

जानकारी के आधार पर सहमति, इन परीक्षणों का एक और विवादास्पद मुद्दा है। हालांकि परीक्षणों से जुड़े हुए अधिकतर निजी चिकित्सक व गैर सरकारी संगठन दावा करते हैं कि वे जानकारी के आधार पर सहमति जैसी शर्तों का पालन कर रहे हैं, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। शरीर पर परीक्षण करने के लिए, जानकारी के आधार पर सहमति के बारे में अर्न्तराष्ट्रीय निर्देश बहुत स्पष्ट हैं। उनके अनुसार, ऐसी स्वीकृति के लिए परीक्षण में भाग लेने वाले को बताना जरूरी है कि उस पर किसी दवा का परीक्षण किया जा रहा है। उससे संभावित दुष्प्रभावों, समस्याओं, विपरीत प्रभावों, इत्यादि के बारे में पूर्ण जानकारी देनी चाहिए। परन्तु सवाल उठता है कि जब क्विनाक्रिन नसबंदी और उसके दुष्प्रभावों पर पूर्ण जानकारी ही उपलब्ध नहीं, तब भला इस मूल शर्त का परिपालन कैसे होगा!

भारत की सर्वप्रथम शोध संस्था, आय. सी. एम. आर. के निर्देश इस बात का विशेष उल्लेख करते हैं कि भारत जैसे देश में परीक्षण में भाग लेने वाले व्यक्ति को उस पर हो रहे परीक्षण के बारे में जानकारी किसी डाक्टर द्वारा नहीं, बल्कि किसी सामाजिक कार्यकर्ता या उसके समान किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी जानी चाहिए। परन्तु ऐसे निजी चिकित्सक और गैर सरकारी संगठन बहुत कम हैं जो इस निर्देश का पालन करते हैं। एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जहाँ एल एच एम सी के डाक्टरों ने क्विनाक्रिन निवेश से कई नसबंदिया कीं, का सर्वे करने पर पता चला कि उस केंद्र के मुख्य स्वास्थ्य अधिकारी, सामाजिक कार्यकत्ता और महिला स्वास्थ्य निरीक्षक को इस उपाय के बारे में कोई भी जानकारी नहीं थी। न ही उन्हें यह मालूम था कि क्विनाक्रिन नसबंदी के लिए परीक्षण किए जा रहे हैं। और न उन्हें उसके संभावित दुष्प्रभावों की कोई जानकारी थी। जिन छः महिलाओं के साथ सम्पर्क किया गया हुआ उनमें से एक को यही मालूम नहीं था कि उसकी नसबंदी की गई थी। फिर भला उसे क्या पता कि क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षण के लिए उसका प्रयोग किया जा रहा है!

किसी भी दवा के परीक्षण का एक महत्वपूर्ण चरण होता है, उसके उपयोग से होने वाले दुष्प्रभावों व समस्याओं का अध्ययन करना, जिसके लिए नियमित जांच की जरूरत होती है। परन्तु देखने में आया कि क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षणों के बाद महिलाओं की कोई नियमित जांच नहीं की गई। इसके लिए परीक्षणकर्ता दलील देते हैं कि उनके पास पर्याप्त राशि नहीं है। यह दलील कभी सार्वजनिक तो कभी व्यक्तिगत

तौर पर दी गई; कभी लिखित में तो कभी किसी साक्षात्कार के दौरान। ऐसे में सवाल उठता है कि जब उपयोग के बाद नियमित जांच ही नही की गई, फिर भला दुष्प्रभावों, इत्यादि का पता कैसे चलेगा? और जब दुष्प्रभावों का ही पता नहीं तो यह दावा कैसे किया जा सकता है कि यह उपाय निरापद है? क्या यह इस बात का सूचक नहीं कि इसके प्रचारकों को महिलाओं के स्वास्थ्य के बारे में कोई चिंता नहीं?

नतीजन, बिराल मल्लिक जैसे कलकत्ता स्थित ग्रामीण चिकित्सा संस्था के डाक्टर जिन्होंने 10,000 से ज्यादा नसबंदियां की हैं बड़ी आसानी से यह दावा करते हैं कि चूँकि कोई भी महिला उनके पास शिकायत लेकर नहीं लौटी, इसलिए यह माना जा सकता है कि क्विनाक्रिन नसबंदी के न तो कोई विपरीत प्रभाव हैं और न ही अन्य समस्याएं। परन्तु ऐसे अवैज्ञानिक दावों को मानना हमारे लिए बहुत कठिन है। हमारा विचार है कि जब उपचार के बाद नियमित जांच की ही नहीं जाती, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इसके कोई विपरीत प्रभाव या समस्याएं नहीं हैं?

इस तरह के अनैतिक व अवैज्ञानिक परीक्षणों पर तुरन्त प्रतिबंध लगाना चाहिए। परीक्षणों में सम्मिलित सभी गैर सरकारी संस्थाओं और निजी चिकित्सकों को चाहिए कि वे जल्दी से जल्दी नियमित जांच की कार्यवाही शुरू करें। जिन महिलाओं पर इस उपाय का परीक्षण किया गया है उन सभी का निरीक्षण करें व उनकी देखभाल के लिए विशेष स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबंध करें और परीक्षण से हुई हानि का मुआवजा देने का आधार निश्चित कर उसकी व्यवस्था करें।

भारत में क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षण गैर कानूनी हैं। इसलिए ऐसे गैर कानूनी परीक्षणों से संबंधित सभी लोगों के विरूद्ध सख्त कार्यवाही कर, एक मिसाल कायम की जाए ताकि इस तरह की अवैध व अनैतिक पद्धति को प्रोत्साहन न मिल सके।

गर्भ निरोधक शोध के लिए स्पष्ट निर्देश होने चाहिएं कि वह ऐसे निरापद व प्रभावी उपायों का ईजाद करें, जो महिलाओं व पुरूषों के स्वास्थ्य व तंदुरूस्ती के लिए हानिकारक न हों।

## व्यापक पैमाने पर उपयोग की क्षमता : बृहत दुरूपयोग की संभावना

क्विनाक्रिन नसबंदी के पक्ष में एक मुख्य दलील दी जाती है कि यह एक 'सरल उपाय' है। परन्तु हमारे विचार में यह दलील उसके पक्ष में न होकर उसके प्रतिकूल जाती है। हमारा यह विचार दो कारणों पर आधारित है। पहला यह कि तकनीकी रूप से यह उपाय सरल लगता है, परन्तु इसका प्रभावी होना निवेश करने वाले के कौशल व दक्षता पर पूरी तरह निर्भर करता है। और इसके लिए विशेष प्रशिक्षण की जरूरत अनुभवी डाक्टरों व नर्सों के लिए भी है। इस तथ्य को इस उपाय के प्रोत्साहकों ने भी स्वीकारा है। लेकिन इसके बावजूद, मल्लिक जैसे चिकित्सक प्रशिक्षण के लिए केवल दो दिन की कार्यशाला का आयोजन करते हैं। जिस व्यापक पैमाने पर इस उपाय के इस्तेमाल करने की बात ये लोग करते हैं, उसके लिए दो दिन की कार्यशाला में कितना प्रशिक्षण हो पाएगा, कौशल का कितना विकास होगा और कितनी दक्षता प्राप्त कर पाएंगे, इनका अनुमान लगाना कोई कठिन बात नही। यह मामला और भी गंभीर हो जाता है जब हम देखते हैं कि इस प्रक्रिया को एक ही दौर में पूरा करने का दावा किया जाता है। और उपचार के बाद उपाय के प्रभावी होने, उससे उत्पन्न समस्याओ या उसके विपरीत प्रभावों को जानने के लिए नियमित जांच की जरूरत पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा।

**10,000 से ज्यादा क्विनाक्रिन नसबंदी करने के लिए आसानी से संसाधन जुटानेवाले कलकत्ता के डाक्टर बिराल मल्लिक नियमित जांच (फालोअप) न कर पाने के लिए संसाधनों की कमी का रोना रोता है।**

दूसरा, विकास व प्रशिक्षण संस्थान द्वारा प्रकाशित प्रशिक्षण पुस्तिका में भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि क्विनाक्रिन निवेश की प्रक्रिया एक ही बार में पूरी नहीं होती। इस पुस्तिका में उल्लेख मिलता है कि पहले या दूसरे निवेश के दौरान, यदि रक्तस्त्राव होता है तो तीसरा निवेश अनिवार्य है। रक्तस्त्राव का कारण माहवारी या इस उपाय की प्रक्रिया हो सकता है। इसके अलावा, बैंगलूर के डाक्टर भटेजा के अनुसार भी, निवेशों के दौरान रक्तस्त्राव होना एक आम बात है, जिसके लिए तीसरा निवेश अनिवार्य हो जाता है। ऐसे प्रमाणों के बावजूद इसके प्रोत्साहक झूठा दावा करते हैं कि एक बार के निरीक्षण में ही प्रक्रिया पूरी हो जाती है। और चूंकि क्विनाक्रिन नसबंदी की प्रक्रिया व उसके तत्कालीन प्रभाव आई यू डी ( कापर–टी) से मिलते जुलते है; जैसे पेट के निचले हिस्से में दर्द या मरोड़ उठना, तो नसबंदी के बावजूद उपभोक्ता महिलाएं काप़र–टी के भ्रम में रह सकती हैं। इसका उदाहरण हमें एल एच एम सी द्वारा किए गए परीक्षणों में से महिला न. तीन का मिला, जो इस भ्रम में थी कि उसे कापर–टी लगाई गई थी।

यही है वो 'क्षमता' जिसका, जैन जैसे प्रोत्साहक 'लाभ उठाने' की बात करते हैं। और जिसके लिए उन्होंने देश भर में महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन गोलियों के वितरण का जाल बिछाया हुआ है। और दुख की बात यह है कि इसका शिकार होती हैं महिलाएं– खासकर, गरीब तथा हाशिये पर रहने वाली महिलाएं। जाहिर है कि व्यापक पैमाने पर क्विनाक्रिन नसबंदी के दुरूपयोग को रोकने की आवश्यकता है। और इसके लिए एक ही रास्ता है– वह है उस के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना। और यदि इसके उपयोग की कोई घटना सामने आती है तो उपयोगकर्ताओं के विरूद्ध सख्त कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए। उपयोगकर्ता चाहे निजी चिकित्सक हों या "खैराती" न्यास, गैर सरकारी संगठन हो या सरकारी अस्पताल।

## जनसंख्या नियंत्रण : क्विनाक्रिन नसबंदी में निहित स्वार्थ

विश्व व्यापक जनसंख्या नियंत्रण लॉबी (गुट) व भारत सरकार की जनसंख्या नीति के फलस्वरूप ही क्विनाक्रिन नसबंदी जैसे मामले को प्रोत्साहन मिलता है। विकसित देशों के जनसंख्या नियंत्रण गुट के लिए 'विकासशील देशों की महिलाओं की प्रजनन शक्ति पर नियंत्रण/अंकुश' पाने के लिए क्विनाक्रिन नसबंदी एक स्थायी उपाय है। इस गुट का मानना है कि यदि अविकसित देशों की जनसंख्या पर नियंत्रण नहीं किया गया तो वह विकसित देशों के लिए खतरा पैदा कर सकती है। हालांकि क्विनाक्रिन नसबंदी का तरीका सरल है फिर भी इसका नियंत्रण महिला के हाथ में न रहकर स्वास्थकर्मी के हाथ में ही रहता है। और जनसंख्या नियंत्रण गुट के हाथ में यह एक ताकतवर हथियार का काम करता है।

यह कोई अचम्भे की बात नहीं कि विश्व भर में क्विनाक्रिन नसबंदी को प्रोत्साहन देने वालो में केस्सल और ममफोर्ड अति सक्रिय है। इन की निजी संस्थाओं–इंटरनेशनल फेडरेशन फॉर फैमिली हैल्थ और सैंटर फॉर रिसर्च ऑन पापूलेशन एंड सिक्युरिटी के लिए पैसा प्रवासी विरोधी दक्षिणपंथी गुटों से प्राप्त होता है। ममफोर्ड का तो रिकार्ड किया वक्तव्य है "..यदि अमरीका (यू.एस.ए.) की सीमाओं को (प्रवासियों के लिए) बंद नहीं किया गया तो अमरीका भी तीसरी दुनिया का एक देश बनकर रह जाएगा"।..

इस उपाय के समर्थकों का तर्क है कि यह उपाय विकासशील देशों के लिए बहुत उपयुक्त है क्योंकि गर्भ निरोधक का काम करते हुए यह मातृ मृत्यु–दर को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। परन्तु उनका यह तर्क बेबुनियाद है क्योंकि आज यह सर्वविदित है कि मातृ मृत्यु–दर कम करने के लिए एकमात्र उपाय है स्वास्थ्य स्तर को बढ़ाना। और इसके लिए आवश्यक है स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाना, न कि क्विनाक्रिन जैसे खतरनाक नसबंदी उपाय को लागू करना। वे यह भी दलील देते हैं कि विकसित और अविकसित देशों के बीच, स्वास्थ्य स्तर और गर्भ निरोधक प्रचलन की पाट इतनी बड़ी है कि दोनो के लिए किए जाने वाले शरीरी परीक्षणों का एक ही मानक लागू करना असंगत होगा। बल्कि उनका प्रस्ताव है कि इसके बदले में, विश्व स्वास्थ्य संगठन का 'ट्रापिकल रोगों' के लिए खतरा/लाभ वाला मानक अपनाना चाहिए। इस मानक के अनुसार यदि किसी रोग से होने वाले खतरे बहुत भारी हैं तो उसके उपचार में अपरीक्षित दवाओं का इस्तेमाल न्यायसंगत होगा। परन्तु इस मानक के दो गंभीर पहलू हैं:पहला यह कि अपरीक्षित दवाओं को रोग के उपचार के लिए इस तरह अनुमति देना अपने आप में अनैतिक है और चिकित्सा पद्धति के भी विरूद्ध जाता है। दूसरा, प्रजनन शक्ति को 'रोग' का दर्जा देकर अपरीक्षित दवाओं द्वारा 'उपचार' करने की यह धारणा आपत्तिजनक है। ऐसी धारणा महिला विरोधी पूर्वाग्रहों को ही दर्शाती है और यह धारणा इसलिए भी आपत्तिजनक है कि यहाँ प्रजनन शक्ति को अनियंत्रित व अविज़ित बताते हुए उस पर किसी भी तरह और किसी भी मूल्य पर नियंत्रण लगाने की सोच झलकती है, जिसका नतीजा महिलाओं को भुगतना पड़ता है।

**जे.के.जैन, भाजपा के भूतपूर्व सांसद एवं सर्जन, ने अपने राजनीतिक रिश्तों, तथा चिकित्सा क्षेत्र के अपने ओहदे और अपने टेलीविजन चैनल ,जैन टीवी, का इस्तेमाल करके गैरकानूनी ढंग से क्विनाक्रिन नसबन्दी को बढ़ावा देने का काम किया।**

विकासशील देशों में गरीबों को लक्ष्य बनाकर लागू की गई जनसंख्या नीति की पहल भारत सरकार ने भी की। और इसके लिए उस अंर्तराष्ट्रीय गुट की वाहवाही का मज़ा लूटा। हमारे नीति निर्धारक देश की गरीबी और पिछड़ेपन को जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण मानते हैं। वे यह मानने को तैयार नहीं कि संस्थानों की असमान पहुंच और विशिष्ट वर्ग के प्रभुत्व के कारण ही आज भी देश पिछड़ा हुआ है।

विकासशील देशों की सरकारों का यह दायित्व बनता है कि वे अपनी जनता के स्वास्थ्य व तंदुरूस्ती के लिए कुछ ठोस कदम उठाएं और क्विनाक्रिन नसबंदी पर तत्काल प्रतिबंध लगाएं।

## निजीकरण के दौर में क्विनाक्रिन नसबंदी : भयंकर परिणाम

भारत में क्विनाक्रिन नसबंदी के परीक्षणों की यह कहानी देश की मौजूदा स्थिति का एक वास्तविक चिन्ह है। दरअसल, कुछ वर्ष पहले शुरू की गई उदारीकरण और स्वास्थ्य क्षेत्र के निजीकरण की प्रक्रिया के कारण ही, क्विनाक्रिन नसबंदी जैसी भयानक पद्धति संभव हो पाती है। इस उपाय के प्रचार में सम्मिलित संगठनों और व्यक्तियों की साजिशों से पता चलता है कि आज चिकित्सा पद्धति का अवैध दायरा किस हद तक बढ़ चुका है।

आज बाजारू प्रवृत्ति ही प्रधान बन गई है। लोगो के स्वास्थ्य की चिंता छोड़कर लागत–कुशलता की चिंता प्रमुख हो गई है। दीर्घकालीन अध्ययनों को त्याग कर बिक्री–उपरान्त सर्वेक्षणों/निरीक्षणों को महत्व दिया जा रहा है। और सरकार भी स्वास्थ्य क्षेत्र के अपने उत्तरदायित्व को हड़बड़ी में गैर सरकारी संगठनों के सुपुर्द करती जा रही है।

निहित और व्यापारिक स्वार्थों की शक्तियाँ आज एकजुट हो सरकारी व अन्य विनियामक प्राधिकरणों के निर्णयों व कार्यप्रणालियों पर दबाव डाल अपनी मनमानी करवा रहे हैं। डेपो प्रोवेरा के मामले में हम देख चुके हैं कि अमरीका की फूड एंड ड्रग्स एडमिनिस्ट्रेशन(एफ.डी.ए.) ने कैसे व्यापारिक शक्तियों के आगे घुटने टेक कर, डेपो प्रोवेरा को गर्भ निरोधक के इस्तेमाल के लिए स्वीकृति दे दी। इसके फलस्वरूप, भारत की आय.सी.एम.आर. समेत विश्व की अनेकों संस्थाओं ने भी डेपो प्रोवरा बेचने की अनुमति प्रदान की। केवल एक ही शर्त पर कि बिक्री उपरान्त परीक्षण/निरीक्षण किए जाएंगे। इससे उत्पादकों और उनकी सहायक भारतीय कंपनियों के दरवाजे आसानी से खुलते गए।

क्विनाक्रिन नसबंदी के मामले में हो सकता है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन और अमरीकी एफ डी ए जैसे अंर्तराष्ट्रीय संगठनों ने इस उपाय के लिए स्वीकृति न देकर अपना दायित्व निभाया हो.....फिर भी किसी भी देश की जनता के हित के लिए उस देश की सरकार व विनियामक संस्थाओं का दायित्व बनता है कि वे अंर्तराष्ट्रीय गुटों या संस्थाओं के दबाव के अधीन न होकर, स्वतंत्र रूप से उपायों/दवाओं को जांचने व उन्हें लाइसेंस देने के लिए कड़े मानकों को स्थापित करें।

देश के अविकसित स्वास्थ्य ढांचे के कारण ही हमारे यहाँ बाल व मातृ मृत्यु, प्रसव के दौरान मृत्यु इत्यादि की दर ऊँची पाई जाती है। फिर ऐसी परिस्थितियों में स्वास्थ्य सेवाओं को विकसित करने के बजाय उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी गैर सरकारी संगठनों को सौंपना या परिवार नियोजन केंद्रों के अधीन करने की योजना के परिणाम क्या होगे? इसका अनुमान लगाया जा सकता है। यदि इस योजना को लागू करना ही है तो सरकार को चाहिए कि स्वास्थ्य क्षेत्र में काम करने वाले गैर सरकारी संगठनों के लिए वह स्पष्ट निर्देश तैयार करे और उनके पालन के लिए ऐसे तंत्र का विकास करे कि निर्देशों का उल्लंघन न हो पाए। सरकार का दावा है कि वह अपनी जनता के स्वास्थ्य व कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है। अपने इस दावे की विश्वसनीयता के लिए सरकार को चाहिए कि देश के स्वास्थ्य ढांचे को विखंडित करने की प्रक्रिया को अविलंब बंद करे। और देश भर में उपलब्ध मौजूदा प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को विकसित करे।

## सरकार का कर्तव्य : विनियमन की कोई भूमिका नहीं

क्विनाक्रिन नसबंदी के विवाद पर भारत सरकार की प्रतिक्रिया बहुत दिलचस्प रही। संबंधित अधिकारी, जैसे भारत के औषधि नियंत्रक, श्री पी. दासगुप्ता और भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के अतिरिक्त निदेशक जनरल, श्री बी.एन. सक्सेना, सहेली की कार्यकर्ताओं से बड़े आत्म–विश्वास व धर्म–परायणता के साथ मिले। उन दोनों ने बताया कि देश में हो रही क्विनाक्रिन नसबंदियों के साथ उनका कोई लेना–देना नहीं था और दरअसल, उन दोनों ने तो बड़ी जिम्मेदारी की भूमिका अदा की थी। परन्तु छानबीन के दौरान जो स्थिति प्रकट हुई वह ठीक इसके विपरित थी।

सक्सेना का यह दावा कि असफलता की ऊंची दर के कारण आय सी एम आर ने परीक्षण बंद करवा दिए और इन परीक्षणों से जुड़े निजी चिकित्सकों या गैर सरकारी संगठनों के साथ उनका कोई लेन–देन नही, दो महत्वपूर्ण तथ्यों से झूठा साबित होता है। पहला, सरोकार न होने के बावजूद आय सी एम आर ने क्विनाक्रिन पर किये परीक्षणों के दूसरे चरण के अध्ययन में मल्लिक व उसकी 'शोध' को उद्धृत कर उसे वैधता प्रदान की। 1992 में उन्होंने मल्लिक को 'ट्यूबल (नली) नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन का उपयोग' पर हुई सभा में निमंत्रित किया। इसी तरह, सक्सेना ने अपने व्यवहार से साबित करना चाहा कि वह जैन के बारे में कुछ नहीं जानता। परन्तु सच बात तो यह है कि आय सी एम आर द्वारा किए गए क्विनाक्रिन के अध्ययन का परामर्शदाता जैन ही था। मल्लिक और जैन की इस तरह की अनधिकृत अवैध गतिविधियों को विश्वसनीयता प्रदान करते हुए सरकारी अधिकारी कैसे यह कहकर अपने हाथ धो सकते हैं कि उनका इनसे कोई लेना–देना नहीं?

जब तक सरकारी व विनियामक संस्थाएं स्वयं दायित्व के साथ विधिवत रूप से काम नहीं करती, तब तक उनके निर्देशों के सही पालन की उम्मीद करना व्यर्थ होगा।

क्विनाक्रिन नसबंदी के बारे में औषधि नियंत्रक की प्रतिक्रिया भी ढ़ोंगी ही थी। सहेली के साथ एक घंटे के साक्षात्कार में उनका कहना था कि वे भी इस विषय पर क्षुब्ध थे। उन्होंने बार बार सफाई दी कि वैध रूप से ,नसबन्दी के लिए क्विनाक्रिन के प्रयोग का मायना था कि यह एक 'नई दवा' थी और इसलिए इसको अलग से स्वीकृति की जरूरत थी। उन्होंने यह भी दावे के साथ कहा कि आय.सी.एम.आर. के अध्ययन के अलावा उन्होंने इसके लिए किसी को भी स्वीकृति नहीं दी थी। और यह कि किसी भी शारीरिक परीक्षण के लिए उनकी स्वीकृति आवश्यक थी। ये परीक्षण चाहे एल.एच.एम. सी. या भारतीय ग्रामीण चिकित्सा संस्थान में किए जाएं। आगे उन्होंने बताया कि उनकी अनुमति के बिना क्विनाक्रिन गोलियों का उत्पादन व आयात गैर कानूनी है। उनका यह भी कहना था कि चूंकि वे 'केवल लाईसेंस देनेवाले अधिकारी थे' इसलिए छानबीन के अलावा इस मामले में वे और कुछ नहीं कर सकते थे। उसके बाद का कार्य कानूनी अधिकारियों के क्षेत्र में आता है।

औषधि नियंत्रक इतने विवश नहीं है जितना कि वे हमें विश्वास करने को कह रहे थे। ड्रग्स एण्ड कास्मेटिक्स एक्ट के अंतर्गत,औषधि नियंत्रक को औषधियों के अवैध उत्पादन व आयात के मामलों में छानबीन करने, माल जब्त करने और कानूनी कार्यवाही शुरू करने के लिए विशेष अधिकार दिए गए हैं। इस सन्दर्भ में औषधि नियंत्रक की छानबीन सन्तोषजनक नहीं है। उनका पक्षपाती रवैया इसी बात में झलकता है कि मल्लिक द्वारा निरीक्षकों को सप्लायर के स्त्रोत का गलत नाम देने के बावजूद, औषधि नियंत्रक ने मल्लिक को बड़ी उदारता से माफ कर दिया। जब औषधि नियंत्रक से पूछा गया कि

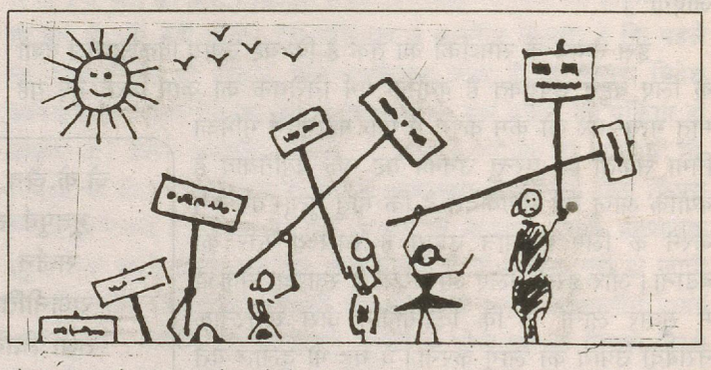

जैन व उसके व्यापार के स्त्रोतों की छानबीन क्यों नहीं की गई तो उन्होंने यह दर्शाने का प्रयास किया कि वे जैन के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। लेकिन कुछ क्षणों के बाद ही उन्होंने स्वयं अपनी बात का खण्डन किया। उन्होंने यह बताया कि जब कुछ समय के लिए केंद्र में भाजपा सरकार विराजमान थी तो उस दौरान, जैन, जो तब एक सांसद थे, केंद्रीय स्वास्थ मंत्री से मिले और क्विनाक्रिन का प्रस्ताव रखते हुए उसके लिए अनुमति मांगी। लेकिन उन्हें अनुमति देने से साफ इंकार कर दिया गया था। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद तक औषधि नियंत्रक ने जैन के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है।

जाहिर है कि औषधि नियंत्रक जैसे उच्चाधिकारियों को देश में हो रहे क्विनाक्रिन नसबंदी परीक्षणों के बारे में पूरी जानकारी है। और दरअसल, औषधि नियंत्रक की मौन सहमति से ही ' महिलाओं के शरीर पर प्रयोग' किए जा रहे हैं। अवैध व अनैतिक परीक्षणों से जुड़े लोगों के विरूद्ध अविलंब सख्त कार्रवाई ही इस तरह की संदिग्ध चिकित्सा पद्धति को रोक सकती है।

**चिप ट्रस्ट जैसे एन.जी.ओ.ने समूचे कर्नाटक के स्तर पर निजी चिकित्सकों के साथ मिलकर इस पद्धति को अनैतिक और गैरकानूनी ढंग से उपयोग में लाने का काम किया है और आजभी वे बेदाग हैं।**

30 मई 1997 को संसद में अशोक मित्र द्वारा क्विनाक्रिन के उपयोग/परीक्षण की वैधता पर उठाए प्रश्न के उत्तर में, कानून विभाग के राज्यमंत्री श्री रमाकांत खलप ने इस बात की पुष्टि की कि इस उपाय को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विशेष तौर पर अस्वीकार कर दिया था। और उन्होंने यह भी बताया कि क्विनाक्रिन के परीक्षणों के लिए भारत के औषधि नियंत्रक ने किसी भी जांच करनेवाले को अनुमति प्रदान नहीं की । जब उनसे पूछा गया कि क्या सरकार को इस बात की जानकारी है कि कई गैर सरकारी संगठन निजी चिकित्सकों के साथ मिलकर देश के कई भागों में इस औषधि का वितरण व प्रयोग कर रहे हैं, तो राज्यमंत्री ने उत्तर दिया कि "समाचार पत्रों के जरिये इस बात की रिपोर्ट मिली है कि कुछ निजी चिकित्सक क्विनाक्रिन का वितरण तथा प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु किसी विशेष मामले की सूचना सरकार को नहीं

मिली।" यह कथन इस तथ्य के बावजूद दिया गया कि सहेली ने इस विषय में औषधि नियंत्रक को लिखे पत्रों में,दिनांक 22.4.97 और 17.5.97 को, इसके अवैध प्रयोग के बारे में विशेष मामलों का उल्लेख किया था और औषधि नियंत्रक से हुई 7.5.97 की भेंट में भी इन मामलों का जिक्र किया था।

सरकारी दावा क्विनाक्रिन नसबंदी परीक्षणों के विरूद्ध होने के बावजूद, सरकार इसके समर्थकों व उपयोगकर्ताओं की अवैध व अनैतिक पद्धति को देख कर भी अनदेखा कर रही है। इस स्थिति को बदलना होगा।

### क्विनाक्रिन नसबंदी के विरूद्ध उठी आवाजें : न्यायोचित मांगें

महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन के उपयोग की अनैतिक व अवैध चिकित्सा पद्धति और उसके उपयोग से होनेवाले सामाजिक दुष्परिणामों के पता लगते ही सभी देशों तथा भारत के महिला संगठनों ने इसके विरोध में आवाज उठाई। कलकत्ता स्थित गणतांत्रिक महिला समिति के विरोध के परिणामस्वरूप ही मल्लिक ने इस के परीक्षणों को छोड़ दिया। दिल्ली में कई महिला संगठनों, जैसे आल इण्डिया डेमोक्रटिक वूमेन्स एसोसिएशन (एडवा), सेण्टर फार विमेन्स स्टडीज, ज्वाइंट विमेन्स प्रोग्राम, सहेली विमेन्स रिसोर्स सेण्टर इत्यादि ने एकजुट होकर से इस उपाय का विरोध किया। जैन क्लिनिक के सामने प्रदर्शन का आयोजन कर उन्होंने भारत में क्विनाक्रिन नसबंदी को प्रोत्साहन देने में जैन की भूमिका का पर्दाफाश भी किया। औषधि नियंत्रक और स्वास्थ व परिवार कल्याण मंत्री को सामूहिक विरोध पत्र लिखकर यह मांग की गई कि परीक्षणकर्ताओं और उनसे संबंधित अन्य अपराधियों के विरूद्ध अविलंब कानूनी कार्रवाई की जाय। परन्तु अभी तक ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की गई है। एडवा और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंण्टर फार सोशल मेडिसिन एण्ड कम्युनिटी हेल्थ प्रभाग ने मिलकर इस मामले पर सर्वोच्च न्यायालय में लोक हित मुकदमा भी दायर किया है।

समय की मांग है कि इस मामले मे तुरंत कार्रवाई की जाय ताकि देश में क्विनाक्रिन से महिला नसबंदी की पद्धति को प्रोत्साहन न मिले। और यह बहुत आवश्यक है कि महिला संगठन व अन्य सम्बन्धित संगठन व सरोकार रखनेवाले लोग सामूहिक रूप से इस अवैध व अनैतिक चिकित्सा पद्धति के विरोध में अपनी आवाज को मजबूत करें और सरकार पर यह दबाव बनाए रखें कि वह इस मामले में तुरंत कार्रवाई करे।

सहेली समूह द्वारा प्रकाशित ***क्विनाक्रिनः औरतों की रासायनिक नसबंदी की घिनौनी कहानी*** रिपोर्ट की प्रति के लिए सहेली से सम्पर्क करें। मूल्यः 30 रूपये (डाक व्यय समेत)

## साथिन संघर्षः मौजूदा स्थिति

मई 1997 में एक लम्बे संघर्ष के बाद राजस्थान के महिला विकास कार्यक्रम में काम कर रही साथिनों ने एक महत्वपूर्ण सफलता हासिल की। राजस्थान सरकार ने साथिनों का मासिक भत्ता 250 रूपये से बढ़ाकर 350 रूपये कर दिया। साथिनें एक लम्बे समय से अन्य सामुदायिक सेवा कार्यक्रमों में काम कर रहे कर्मचारियों के बराबर न्यूनतम मजदूरी, और अन्य सेवा सुरक्षा सम्बन्धी शर्तो की मांग कर रही हैं। मासिक भत्ते में हुई यह बढ़ौत्तरी सन्तोषजनक तो नहीं है, परन्तु यह देखते हुए कि सरकार इस कार्यक्रम को बन्द करने या इसके ढांचे में आमूल परिवर्तन करने की सोच रही थी, यह कुछ राहत है।

लेकिन जयपुर उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक फैसले से लगता है कि संघर्ष अभी खत्म नहीं हुआ। उच्च न्यायालय ने औद्योगिक विवाद कानून के अर्न्तगत दी गई 'श्रमिक' की परिभाषा को साथिनों के संदर्भ में लागू करने से मना कर दिया है। साथिनों के संघर्ष का मुख्य मुद्दा यही रहा है कि महिला विकास कार्यक्रम के अर्न्तगत साथिनों के काम को 'स्वैच्छिक' काम का दर्जा दिया गया है, जिसका मतलब है कि वे न्यूनतम मजदूरी, नौकरी की सुरक्षा और अन्य लाभों की मांग नहीं कर सकतीं।

केकरी (जिला अजमेर) की पांच साथिनों को, दिसम्बर 1990 में कालीकत में हुए महिला आंदोलनों के चौथे सम्मेलन में भाग लेने के सिलसिलें में, नौकरी से मुअत्तल कर दिया गया। इसका विरोध करते साथिनों ने उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की कि उन्हें नौकरी पर फिर से बहाल किया जाए, क्योंकि उनकी नौकरियाँ मनमाने तरीके से समाप्त की गई थीं।

मार्च 1992 में, न्यायालय के एक पीठ ने इस आधार पर कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरूद्ध दिए गए साथिनों के मुअत्तली के आदेश को वापस लेने तथा इन साथिनों को नौकरी पर फिर से बहाल करने का आदेश दिया। इस आदेश में औद्योगिक विवाद कानून को लागू किए जाने और संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी मुद्दों पर विचार नहीं किया गया। राजस्थान सरकार के महिला व बाल विकास विभाग ने इस आदेश के विरोध में उच्च न्यायालय में याचिका दायर की है।

इस याचिका के उत्तर में 29 मई, 1997 को न्यायालय के खण्ड पीठ ने एक फैसला दिया, जिसमें महिला विकास कार्यक्रम के प्रोजेक्ट दस्तावेजों का खूब हवाला दिया। यह कहा गया कि, "जब नियुक्ति का स्वरूप केवल किसी विकास कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए हो और उसके लिए ग्रामीण महिलाओं में से एक महिला, चाहे वह पढ़ी लिखी न हो, को प्रेरक या प्रोजेक्ट आयोजकों के बीच कड़ी के रूप में नियुक्त किया जाए, तब ऐसी नियुक्ति मुअत्तली से पहले सुने जाने का कोई अधिकार प्रदान नहीं करतीं"।

यह फैसला साथिनों के संघर्ष के लिए एक बड़ी चुनौती है। साथिनें 'श्रमिक' का दर्जा प्राप्त करने और अपने काम के लिए मान्यता प्राप्त करने के संघर्ष को जारी रखने के लिए दृढ़संकल्प हैं। साथिनों ने इस निर्णय के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की है।

# कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़नः

## सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आखिर इस समस्या की स्वीकृति

महिलाऐं हमेशा से दफ्तरों और अन्य काम करने की जगहों पर पुरूष कर्मचारियों और मालिकों द्वारा यौन–उत्पीड़न का शिकार रहीं हैं। महिलाओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार उनके मानस पर गहरा असर करता है जिससे उनको काम करने में बेहद मुश्किल आती है। यह रोजमर्रा का अपमान और अधिक बढ़ जाता है जब मजबूरन उन्हें अपराधियों के साथ हर रोज काम करना पड़ता है। ये लोग अक्सर दफ्तरों में उच्च पदों पर आसीन होते है।

यौन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज़ उठाना बहुत ही मुश्किल होता है क्योंकि ऐसा करने से काम करने की जगह पर तनाव बढ़ जाता है। इस का असर यह भी होता है कि शिकायत करने वाली महिला को न केवल विद्वेषी वातावरण का ही सामना करना पड़ता है, बल्कि उसकी तरक्की रोक दी जाती है या फिर उसे नौकरी से ही निकाल दिया जाता है। इन गंभीर परिणामों को देखते हुए महिलाएं कोई भी कदम उठाने में हिचकिचाती हैं। और अक्सर खामोश ही रहती हैं। वैसे भी इस विषय पर उनकी खामोशी को मान कर ही चला जाता है। पिछले कुछ वर्षो में महिला आन्दोलन द्वारा पुरूषों की इस हिंसात्मक प्रवृत्ति का विरोध करने के बावजूद इस सामाजिक समस्या को जो मान्यता मिलनी चाहिए थी वो नहीं मिली। तसल्ली योग्य बात है कि हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय पर कुछ दिशा निर्देश अंकित कर इस समस्या को स्वीकृति प्रदान की।

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय खंड पीठ ने 13 अगस्त 1997 को कामकाजी महिलाओं के कार्यस्थल पर होने वाले यौन–उत्पीड़न को रोकने के लिये एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया।

न्यायाधीशों ने यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए महिला संगठनों द्वारा सुझाये गये दिशा निर्देशों को स्वीकार करते हुए उन्हें जारी कर ने का आदेश दिया। विशाखा, काली, जागोरी तथा अन्य महिला संगठनों ने 1992 में सरकारी विकास कार्यक्रम में काम करने वाली महिला कार्यकर्ता साथिन भंवरी देवी के साथ हुए सामूहिक बलात्कार के खिलाफ एक याचिका दायर की थी। भंवरी देवी पर यह अत्याचार तब किया गया, जब वह राजस्थान में बालविवाह रोकने का काम कर रही थी। यह याचिका संविधान में मौजूद नागरिकों के मौलिक अधिकारों के अनुच्छेदों 14,19 और 21 को लागू करने के लिये दायर की गयी थी, जिसमें महिलाओं को बराबरी का जीवन जीने तथा पूरी आजादी से कार्य करने के बुनियादी अधिकार की गारंटी दी गयी है।

सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को अनुच्छेद 19 का उल्लंघन माना। इस अनुच्छेद में नागरिकों को कोई भी नौकरी, व्यवसाय, उद्योग या व्यापार करने के अधिकार की गारंटी दी गयी है। कोई भी नौकरी या व्यवसाय करने का अधिकार तभी वास्तविक हो सकता है जब उसके लिए सुरक्षित वातावरण मिले। साथ ही जीवन का अधिकार तभी सुरक्षित है, जब मान–सम्मान एवं गरिमा के साथ जीने का वातावरण मिले। इन अधिकारों को सार्थक करने के लिए कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के संभावित खतरे व जोखिम को दूर करना आवश्यक है। इस खतरे व जोखिम से निपटने के लिये समुचित कानून न होने की वजह से संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत प्रदत्त मौलिक अधिकारों को लागू करते हुए कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने के लिये दिशा निर्देश जारी किये गए। जब तक कोई नया कानून नहीं बनाया जाता , तब तक इन दिशा निर्देशों का कानूनी तौर पर पालन करना अनिवार्य कर दिया गया है।

अदालत द्वारा यौन उत्पीड़न को अपराध मानना सचमुच एक सकारात्मक कदम है। महिलाओं के खिलाफ़ इस तरह की हिंसा को साधारण छेड–छाड़, चोचलेबाजी, प्रेमप्रदर्शन तथा हँसी मज़ाक मानकर टाल दिया जाता है। जब कोई महिला इस तरह के उत्पीड़न का विरोध करती है तो उसे अत्यधिक संवेदनशील माना जाता है या उसमें विनोदप्रियता का अभाव माना जाता है। इसलिये अदालत के दिशा निर्देशों को इस तरह के यौन–उत्पीड़न के खिलाफ चल रहे संघर्ष की बहुत बड़ी जीत माना गया है। पुरूषों के आपत्तिजनक व्यवहार द्वारा कई तरह से महिलाओं का यौन–उत्पीड़न किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तार से इस पर रोशनी डाली है।

हालांकि उच्चतम न्यायालय के फैसले में हर तरह के दिशा निर्देश विस्तृत और स्पष्ट रूप से दिए गए हैं, किंतु उन्हें लागू करने के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है। इसमें यह स्पष्ट नही है कि यौन–उत्पीड़ित महिला/लड़की किसे शिकायत करेगी या उसकी शिकायत पर कौन सुनवाई करेगा। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली भी महिलाएं न्याय की गुहार किससे करंगी, यह स्पष्ट नहीं है। यही बात घरों में काम करने वाली औरतों और ठेकेदारों और जमींदारों के यहाँ काम करने वाली महिला भूमिहीन मजदूरों के बारे में भी सही है जो अपने मालिकों के यौन शोषण का शिकार है। इस बारे में स्पष्टता जरूरी है वरना इन दिशा निर्देशों का महिलाओं को वास्तविक लाभ नही मिलेगा।

**कार्यस्थल पर यौन उत्पीडन की समस्या से मुक्ति पानी ही होगी ताकि काम के अधिकार का सवाल सही संदर्भ ग्रहण कर सके।**

प्रत्येक कार्यस्थल पर स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों साथ शिकायत सुनवाई कमेटी बनाने वाला निर्देश व्यावहारिक तौर पर संभव नहीं लगता। साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि स्वयंसेवी संस्थायें भी श्रम विवादों और यौन–उत्पीड़न से मुक्त नहीं हैं। इसके लिए अन्य व्यावहारिक योजना बनानी होगी।

यौन–उत्पीड़ित महिला को न्याय दिलाने के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि कमेटी की अध्यक्ष कोई महिला हो या उसमें महिला प्रतिनिधि हों। उसके

## दिशा निर्देशों के मुख्य अंश

1. संस्था और कार्यस्थल के नियोक्ताओं एवं अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों के कर्तव्य : अधिकारी की यह जिम्मेदारी होगी कि वह यौन–उत्पीड़न तथा ऐसी घटनाओं के निदान, निष्पादन तथा दंड प्रावधान के लिए आवश्यक सभी कदम उठायें।

2. **परिभाषा :** यौन–उत्पीड़न में प्रत्यक्ष या संकेत रूप में प्रदर्शित सारे अवांछित यौन व्यवहार आते हैं जैसे :

(क) शारीरिक स्पर्श या संकेत (ख) यौन कार्य की मांग या अनुरोध (ग) यौन सूचक टिप्पणियां (घ) अश्लील साहित्य दिखाना (ड़) अन्य अवांछित शारीरिक, शाब्दिक या गैर शाब्दिक यौन जनित व्यवहार।

3. **निवारक कदम :** सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के सभी नियोक्ताओं या कार्यस्थल के अधिकारियों को यौन–उत्पीड़न रोकने के लिए निम्न कदम उठाने चाहिए।

क. कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न पर लगाए प्रतिबंध को उचित तरीके से सूचित, प्रकाशित एवं वितरित किया जाए।

ख. सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को आचरण एवं अनुशासन से संबंधित नियमों, कानूनों में यौन–उत्पीड़न रोकने के प्रावधानों को शामिल करना चाहिए तथा ऐसे अपराधियों को दंडित करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

ग. निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं को औद्योगिक रोजगार (चालू आदेश) अधिनियम, 1946 के तहत उपर्युक्त प्रावधानों को शामिल करना चाहिए।

घ. कार्यस्थल पर महिलाओं के लिए काम, छुट्टी, स्वास्थ्य तथा सफाई के संदर्भ में अनुकूल परिस्थितियों की व्यवस्था की जाए।

4. **दंड प्रावधान :** जहां ऐसे व्यवहार भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून के दायरे मे आते हों, तो नियोक्ता को नियमानुसार उचित प्राधिकार के पास शिकायत करने के साथ उचित कार्यवाई की पहल करनी चाहिए।

खासतौर पर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यौन–उत्पीड़ित महिला या घटना के गवाहों के साथ कोई भेदभाव न हो या उन्हें अन्य किसी प्रकार से प्रताड़ित न किया जाए। यौन–उत्पीड़ित महिलाओं के लिए यह विकल्प होना चाहिए कि वैसी स्थिति में वे अपना या उत्पीड़क का स्थानांतरण करवा सकें।

5. **अनुशासनात्मक कार्रवाई :** जहां ऐसे व्यवहार तत्संबंधी सेवा–नियमों के तहत दुर्व्यवहार में आते हों, वहां नियोक्ता द्वारा नियमानुसार उचित अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए।

6. **शिकायत दर्ज करने की प्रणाली :** हर संस्था में नियोक्ता को शिकायत सुनने की प्रणाली विकसित करनी चाहिए, जो उत्पीड़ित महिला की शिकायतों का निवारण करे और तय करे कि ऐसे व्यवहार सेवा अधिनियमों का उल्लंघन है या नहीं। ऐसी शिकायतों का एक समय सीमा के अंदर ही निपटारा करना चाहिए।

7. **शिकायत समिति :** शिकायत समिति की अध्यक्ष किसी महिला को बनाया जाना चाहिए तथा समिति के सदस्यों में कम से कम आधी संख्या महिलाओं की होनी चाहिए। वरिष्ठों द्वारा अनुचित दबाव या प्रभाव को रोकने के लिए इस समिति मे बाहरी सदस्य के रूप में किसी ऐसी स्वयंसेवी संस्था या अन्य संगठन को रखा जाना चाहिए जो यौन–उत्पीड़न के मुद्दे से पूर्ण परिचित हो। शिकायत समिति को तत्संबंधी सरकारी विभाग को शिकायतों और उन पर उठाए गए कदमों की वार्षिक रिपोर्ट पेश करनी चाहिए।

8. **कर्मचारियों की पहल :** कर्मचारियों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे कर्मचारियों की बैठक में या अन्य उचित मंच पर यौन–उत्पीड़न के मामले को उठा सकें। नियोक्ता–कर्मचारी बैठकों में भी इस मुद्दे पर सकारात्मक चर्चा होनी चाहिए।

9. **जागरूकता :** महिला कर्मचारियों के अधिकारों के बारे में दिशानिर्देशों (और कानून, जब पारित हों) को प्रभावी तरीके से सूचित करते हुए इस सन्दर्भ में जागरूकता उत्पन्न की जानी चाहिए।

10. यदि यौन–उत्पीड़न के लिए कोई बाहरी व्यक्ति या कोई तीसरा व्यक्ति जिम्मेदार हो, तो नियोक्ता या प्रभारी, उत्पीड़ित महिला को समर्थन देने और निवारक कार्यवाही में सहायता के लिए सभी आवश्यक एवं समुचित कदम उठाएगा।

11. **केन्द्र एवं राज्य सरकारों से अनुरोध है** कि वे निजी उद्यमों के नियोक्ताओ द्वारा इन दिशा–निर्देशों का पालन सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कदम उठायें व कानून पारित करें।

लिए महिला अध्यक्ष या महिला प्रतिनिधि की औरतों के मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता होना भी आवश्यक है।

शिकायत की सुनवाई,घटना का निवारण और अनुशासनात्मक कार्रवाई करने की समस्त जिम्मेवारी नियोक्ता /अधिकारियों को सौंपने में सर्वोच्च न्यायालय ने उनपर जरूरत से ज्यादा ही भरोसा दर्शाया है। जबकि कई बार यह प्रमाणित हो चुका है कि नियोक्ता/अधिकारी स्वयं, अपने अधीन काम करनेवाली महिलाओं की स्थिति का लाभ उठा देते हैं। फिर जब रक्षक ही भक्षक हो जाते हैं तो उनसे न्याय की क्या उम्मीद की जा सकती है? ऐसी स्थिति में उत्पीड़ित महिला किसके पास अपनी शिकायत लेकर जाएगी?

**सर्वोच्च न्यायालय के दिशा निर्देशों का परिपालन करवाना संघर्ष का केवल एक हिस्सा है। हमें सत्ता सन्तुलन को विभिन्न तरीकों से चुनौती देनी होगी ताकि कार्यस्थलों को औरतों के लिए सुरक्षित बनाया जा सके।**

और तो और, नियोक्ता /अधिकारी के स्वयं अपराधी न होने पर भी देखा गया है कि इस तरह के मामले सामने आने पर उचित कार्यवाही करने के बजाय वे मामले को रफा–दफा करने की ही कोशिश करते हैं। यहां तक कि अपराधी को ही समर्थन देकर उसे संरक्षण प्रदान करते हैं। ऐसी हालत में उत्पीड़ित महिला की स्थिति बहुत नाजुक हो जाती है। उसके लिए अपने वरिष्ठ अधिकारियों के अनुचित प्रभुत्व का प्रतिरोध करना बहुत कठिन हो जाता है। यदि कोई महिला साहस करती भी है तो उसके लिए उसे भारी दाम चुकाना पड़ता है। इसका प्रमाण डा.सुषमा मेर (एस. सी. भाटिया केस),डा. सहला अग्रवाल (बी. एस.एन. रेड्डी केस) के अनुभवों से मिलता है जिन्होंने यह सब झेला है। इसलिए यह जरूरी है कि कार्यस्थल पर यौन–उत्पीड़न के मामलों की जांच के किसी निष्पक्ष निकाय द्वारा ही होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, ट्रेड यूनियनों और श्रमिक अधिकारों के संघर्षों में सक्रिय महिलाओं की हिम्मत तोड़ने के लिए भी यौन–उत्पीड़न को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इन परिस्थितियों में मालिक/ नियोक्ता द्वारा यौन–उत्पीड़न के मामलों में न्याय की उम्मीद रखना बेकार है क्योंकि अक्सर वे स्वयंभी इसमें शामिल होते हैं।

इन कमियों के बावजूद ये दिशा–निर्देश यौन–उत्पीड़न की समस्या का निवारण करने में कुछ हद तक सहायक हो सकते हैं। इस के लिए जरूरी है कि इन निर्देशों का प्रचार किया जाए और इनको व इनके निवारण तंत्र को प्रभावकारी रूप से लागू कराने की कोशिश की जाए।

लेकिन यह केवल पहला कदम है। महिला संगठनों, ट्रेड यूनियनों जन संगठनों, मजदूर गुटों और सभी कामकाजी पुरूषों और महिलाओं को इन दिशा–निर्देशों को जल्द से जल्द कानून बनाने पर जोर देना चाहिए ।–

# आईयें, एकजुट होकर कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करें!

प्रिय मित्र,

भविष्य के अंकों में सहायता हेतु और पत्रिका के मुद्रण और डाकखर्च चलाते रहने के लिए, हम चाहेंगे कि आप पत्रिका की वार्षिक सदस्यता की राशि रूपये 35/--भेजने का कष्ट करें।

आप के पत्रों,प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हमें इन्तज़ार रहेगा।

अपनी प्रतिक्रिया अवश्य लिखें।

न्यूजलेटर में छपी सामग्री को आप पुनर्मुद्रित कर सकते हैं। मगर इसका श्रेय 'सहेली' को देना न भूलें। सम्भव हो तो एक कापी भेजें। हमें इस बात की खुशी होगी।

नाम _____

संस्था _____

पता _____

फोन _____

भुगतान कैश, मनिऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट या चेक के जरिये करें। चेक के जरिये करें। चेक तथा ड्राफ्ट सहेली वूमेन्स रिसोर्स सेन्टर (Saheli Women's Resource Centre ) के नाम से भेजें।

# महिलाओं के नाम एक पैगाम

एक बार फिर, देश के विभिन्न राज्यों में महिला संगठनों और आंदोलनो से जुड़ी हम सब औरतें, छठे नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन के लिए रांची में 28-30 दिसंबर 1997 को इकट्ठी होने जा रही हैं। हमारी उम्मीद है कि सम्मेलन मे हम अपने अनुभव, समझ, नजरिये, संघर्ष ओर अभियान एक दूसरे के साथ बाँटेगें। हम साथ जुड़ कर अपनी उम्मीदों और अपने सपनों के बारे में और रणनीतियों पर बातचीत करेंगे। अन्य जन आंदोलनों और संघर्षो से भी जुड़ेंगे। अलग–अलग विषयों पर हम चर्चा करेंगे। हम एक साथ आने के इस उत्सव को मनाएंगे।

हर दो–तीन साल में होने वाले ये सम्मेलन भारत के महिला आंदोलन की एक परंपरा से बन गए हैं। कुछ संगठन इकट्ठे आकर एक समन्वय समिति बनाकर इनका आयोजन करते हैं। सम्मेलन कहां होगा, किन विषयों पर चर्चा होगी, कौन से विषयों पर जोर दिया जाएगा, ये सब यह समिति तय करती है। साथ ही सम्मेलन के लिए पैसा इकट्ठा करने की पहल भी यही समिति लेती है। इस बार रजिस्ट्रेशन दर दो स्तर पर है। सामान्य दर रूपये 300 और घटी हुई दर रूपये 150 ताकि जो औरतें सामान्य दर चुकाने में अक्षम हैं वह भी सम्मेलन में भाग ले सकें।

- देशव्यापी बलात्कार विरोधी अभियान के संदर्भ में 1980 में पहला सम्मेलन बंबई में हुआ था। स्वायत्त महिला संगठनों से जुड़ी करीब–करीब 200 औरतें पहली बार इस सम्मेलन में इकट्ठी हुई थी।

- दूसरा सम्मेलन फिर बंबई में ही हुआ 1985 में। तब तक देश भर में पनपे महिला संगठनों से 380 औरतें इस सम्मेलन में आई और महिला आंदोलन के उभरते नजरियों पर बातचीत हुई।

- तीसरा सम्मेलन औरंतों की भागीदारी बढ़ाने के लिए पटना में 1988 में आयोजित किया गया। 760 औरतें इसमें शामिल हुई और बिहार के महिला आंदोलन और संगठनों को देश भर की औरतों के आने से काफी ताकत मिली।

- चौथा सम्मेलन 1990 में कालीकत में हुआ। आने वाली औरतों की संख्या बढ़कर 2980 हो गई थी। लगभग 113 संगठन इसमें शरीक हुए।

- पांचवा सम्मेलन 1994 में तिरूपति में हुआ। 3000 से ज्यादा औरतें इससे जुड़ीं और सांप्रदायिकता, सरकार की नई आर्थिक नीति और सरकारी आतंकवाद के मुद्दों पर जोर दिया गया।

छठा नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन

**28 – 30 दिसंबर 1997**

**जगह : रांची कॉलेज,**
**मोरबादी, रांची - 834001**
**बिहार**

**अब छठे सम्मेलन के लिए समन्वय समिति ने साथ में दिए तीन मुद्दों पर खास जोर देने का निर्णय लिया है :**

**औरतों का विस्थापन :** हमेशा से चली आ रही विकास नीतियों और अब नई आर्थिक नीति के तहत् हजारों की तादाद में लोग विस्थापित होते रहे हैं। इसका सबसे बुरा असर औरतों पर होता है। अपनी जमीन, काम, कमाई के जरिये और संस्कृति, सभी से वे विस्थापित हो रही हैं। औरतें पहले ही घर–परिवार, भले ही मायका हो या ससुराल, में हाशिए पर पहुँची हुई हैं और अब वे इन नीतियों की दोहरी मार सह रही हैं।

**औरतों के खिलाफ बढ़ती हुई हिंसा :–** हिंसा के खिलाफ लगातार संघर्ष करने के बावजूद, औरतों पर होती हिंसा आए दिन बढ़ती जा रही है। पति व रिश्तेदारों द्वारा किए जा रहे बलात्कार और कार्यस्थल पर छेड़–छाड़ और यौनिक हिंसा के मसले भी आंदोलन के मुद्दे बन रहे हैं। औरतों पर होती इस हिंसा के खिलाफ हम कौन सी रणनीति अपनाना चाहते हैं इस पर चर्चा करना बहुत जरूरी है।

**राज सत्ता का स्त्री विरोधी चरित्र :–** सरकार ने औरतों के लिए कई कानून और नीतियां समय–समय पर बनाई हैं। परंतु पितृसत्ता के मूल्यों पर आधारित सरकार इन नीतियों को लागू करने के लिए या इन कानूनों के तहत् न्याय दिलवाने के लिए कोई काम नहीं करती। सरकार का पितृसत्तात्मक जातिवादी व वर्गीय चरित्र उसके हर कार्यक्रम, नीति और योजना में नजर आता है। सेना और पुलिस जैसी राजसत्ता की शाखाओं से औरतों पर की जाने वाली हिंसा तक की रोकथाम नहीं हो पाती।

इन तीन मुख्य मुद्दों के अलावा स्वास्थ्य, परिवार व मददगार ढांचे, सांप्रदायिकता, जेन्डर न्याय आधारित कानून, यौनिकता, प्राकृतिक संसाधन, नारी आंदोलन में उभरते विभिन्न नजरिये, औरतें व काम, आदिवासी औरतें, दलित औरतें व मुस्लिम औरतों की खास समस्याओं पर भी अलग से बातचीत होगी। इन सब विषयों पर कार्यशालायें और चर्चाओं के साथ–साथ होंगे हमारे अपनी बात कहने–सुनने के माध्यम–कविता, गाने, नाटक, पोस्टर, फिल्म इत्यादि।

इस सम्मेलन के घोषणा पत्र से सहमत होने वाली सभी महिलाओं को सम्मेलन में शामिल होने के लिए हम आमंत्रित कर रहे हैं। इस सम्मेलन मे आने का, इसमें जुड़कर अपने तरीके से अपनी बात कहने का, एक दूसरे की बात सुनने–सुनाने का, अपनी सृजनात्मकता व अनुभव बांटने का, आप सभी औरतों को और औरतों के संगठनों का आह्वान है।

**इस सम्मेलन का आयोजन हम सभी की मिली जुली मेहनत से हो रहा है।** इसे बेहतर बनाने के लिए कृपया आप भी अपना योगदान दीजिए।

सम्मेलन के दौरान अलग अलग कार्यों के लिए वालंटियर करें।

अगर आपको कोई कार्यशाला करनी है, या अपने संगठन के काम के बारे में अन्य किसी माध्यम से जानकारी देनी है, या किसी विशेष मुद्दे पर कुछ कहना है तो नारी अत्याचार विरोधी मंच, मुंबई से संपर्क करें। संपर्क का पता : **नारी अत्याचार विरोधी मंच**, 29 भाटिया भवन, बाबरेकर मार्ग, दादर (पश्चिम) मुंबई. 400028.

**इस सम्मेलन में रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है।** आयोजकों द्वारा भोजन का इंतजाम सिर्फ उन औरतों के लिए किया जाएगा जिन्होंने रजिस्ट्रेशन करवाया है। **कृपया जल्दी से जल्दी रजिस्ट्रेशन फॉर्म भर कर भेजिए। रजिस्ट्रेशन करवाने की अंतिम तारीख 31 अक्टूबर 1997 है।**

सम्मेलन के लिए चंदा या मदद राशि जमा कीजिए और जमा की हुई राशि रांची भेजिए। आप जो राशि भेजें वह 'नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन, रांची' के नाम चेक, डिमांड ड्राफ्ट या मनी आर्डर द्वारा रांची में राज्य समन्वय समिति को भेंजे।

**अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :**

**राज्य समन्वय समिति**, नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन, स्वर्गीय एस.के. बॅनर्जी का मकान, वुमेन्स कॉलेज लेन, नागरा टोली, रांची 834001, बिहार। फोन : 207741, 301963

## सम्मेलन का कार्यक्रम

| | |
|---|---|
| 28 दिसंबर | : स्वागत |
| **तीन मुख्य विषयों** | : औरतों का विस्थापन |
| **पर सत्र** | : राजसत्ता का स्त्री विरोधी चरित्र |
| | : औरतों के खिलाफ बढ़ती हिंसा |
| सांस्कृतिक कार्यक्रम व उसके साथ सभी का परिचय | |
| 29 दिसंबर | : उपविषयों पर सत्र |
| **साथ साथ चलने** | |
| **वाले प्रमुख सत्र** | : जेन्डर न्याय आधारित कानून |
| | : प्राकृतिक संसाधन |
| | : यौनिकता |
| | : सांप्रदायिकता |
| | : स्वास्थ्य |
| | : परिवार व सहायता के ढांचे |
| | : स्त्रियाँ व काम |
| | : नारी आंदोलन में उभरते विभिन्न नज़रिये |
| **विशेष सत्र** | : मुस्लिम महिलायें |
| | : आदिवासी औरतें |
| | : दलित महिलायें |
| **शाम को विशेष** | : समयौनिक औरतें |
| **कार्यशालायें एवं** | : राष्ट्रीयता के संघर्ष |
| **बैठकें** | : कविता और अन्य माध्यमों पर कार्यशालायें |
| | : विदेश में रहनेवाली भारतीय औरतों की समस्याएं |
| 30 दिसंबर | : विभिन्न सत्रों की रपटें व उनमें |
| **आम सत्र** | पारित प्रस्ताव |

**अंत में रैली और आम सभा**

**विशेष सूचनाः**

- सम्मेलन के सभी सत्र केवल औरतों के लिए हैं। इस बात की पूरी कोशिश होगी कि सत्र के दौरान ही कार्यवाही का विभिन्न भाषाओं में रूपांतर चलता रहे। राँची में दिसम्बर में बड़ी कड़ाके की सर्दी होती है इसलिए पर्याप्त ऊनी वस्त्र लेकर आएँ।
- आपको अपना बिस्तर साथ लाना है। वैसे जमीन पर पुआल व बोरियाँ बिछायी जाएंगी पर सबके लिए गद्दे मुहैया कराना सम्भव नहीं है।
- बच्चों के लिए सम्मेलन स्थल पर पालनाघर (क्रेश) की व्यवस्था होगी।
- रेल यात्रा के भाड़े में छूट दिलाने की कोशिशें सहेली व जागोरी द्वारा की जा रही हैं।
- सम्मेलन में सिर्फ औरतों का ही रजिस्ट्रेशन होगा। साथ आने वाले पुरूषों को अपनी व्यवस्था खुद करनी होगी।

**अत्याचार, विस्थापन और राजसत्ता के दमन के खिलाफ एकजुट संघर्ष करें**

# सहेली

न्यूजलेटर

(निजी वितरण हेतु)

**8 मार्च 1998**

## अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस


रांची कान्फ्रेन्स
–कुछ प्रतिक्रियाएं 2.

उद्योगों की बन्दी
–मजदूरों की आवाज 4

अनैतिक मेडिकल शोध
–कुछ सवाल 6

क्विनाक्रिन नसबन्दी
–ताजा स्थिति 7



कृपया निम्नलिखित पते पर लौटा दें:
**सहेली वूमेन्स रिसोर्स सेन्टर, दुकान न.105-108 के ऊपर, डिफेन्स कालोनी फ्लायओवर मार्केट, नई दिल्ली 110024, दूरभाष-4616485**



**मुद्रित सामग्री/बुक पोस्ट**

# छठा नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन–रांचीः

## कुछ प्रतिक्रियाएं

28-30 दिसम्बर 1997 को रांची में हुए महिला आन्दोलनों के छठे राष्ट्रीय सम्मेलन में देश भर से 260 संगठनों से लगभग 4000 औरतों ने हिस्सा लिया । हमेशा की तरह ,यह हम सबके लिए अपने संघर्षों और सपनों को बांटने का महत्वपूर्ण अवसर था। प्रारम्भिक सत्र से ही यह उत्साह और भाव ,भाषा और क्षेत्रों के अवरोधों को तोडते हुए गीतों और नृत्यों और हमारी समान चिन्ताओं में प्रकट हुआ। इस सम्मेलन में पहली बार उत्तर-पूर्व की महिलाओं की भागीदारी हुई और उन्होंने अपने मुद्दों को सम्मेलन में रखा।

जैसा कि तय किया गया था, सम्मेलन में मुख्य विषय थे–औरतों का विस्थापन,महिलाओं पर बढती हुई हिंसा और राज-सत्ता का स्त्री-विरोधी चरित्र।

विस्थापन के सत्र में सबसे अधिक महिलाओं ने हिस्सा लिया। इस सत्र में जिन मुद्दों पर चर्चा हुई उनमें मुख्य था बड़े बान्धो की वजह से उत्पन्न हुई विस्थापन की समस्या। सत्र में इस प्रकार के विकास का आम जनता और मुख्यतः औरतों पर प्रभाव पर बातचीत की गई। चर्चा का एक अन्य महन्वपूर्ण पक्ष रहा इस प्रकार के विस्थापन के विरुद्ध चल रहे आन्दोलनों में औरतों की भूमिका।

महिलाओं पर बढती हुई हिंसा के सत्र की मुख्य विशेषता रही कि इस समस्या को कई नाटकों और गीतों के माध्यम से उजागर करने की चेष्टा की गई। चर्चा के उद्देश्य से इस सत्र को कई उप-सत्रों में विभाजित किया गया जैसे कि बलात्कार,दहेज,घरेलू हिंसा,डायन और अविवाहित माताओं की समस्याएं। इस सत्र में भाग लेने वाली महिलाओं ने सम्मेलन के दूसरे दिन एक अनुवर्ती बैठक भी की।

'राज-सत्ता के स्त्री-विरोधी चरित्र' सत्र में चर्चा को इस बात पर केंद्रित किया गया कि राज्य द्वारा महिलाओं और उनके मुद्दों के प्रति संवेदनशील होने के दावे और महिला-आन्दोलन की शब्दावली अपनाए जाने के बावजूद ,राजसत्ता का चरित्र मूलतः महिला-विरोधी है। इस सत्र को चार मुख्य उप-सत्रों में बांटा गयाः जनसंख्या नियंत्रण की नीतियाँ, विकास सम्बन्धी नीतियाँ,शराब-बन्दी आन्दोलन और सरकारी दमन। आखिरी दो सत्रों, में चल रहे आन्दोलनो में जुडे संगठनों के राष्ट्रीय स्तर पर गठबन्धन की सम्भावनाओ पर विचार किया गया।

मुस्लिम,आदिवासी,दलित महिलाएं ,औरत और श्रम,आरक्षण,सम्प्रदायवाद, लैंगिकता,मानसिक स्वास्थ्य,समलैंगिकता,नारी आन्दोलन पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य, उत्तराखण्ड इत्यादि पर समानान्तर सत्र और कार्यशालाएं आयोजित की गई। पहली बार तिब्बती औरतों और वेश्या व्यवसाय से जुड़ी औरतों की समस्याओं पर विशेष सत्र हुए। वास्तव में सम्मेलन में जिन विषयों पर चर्चा हुई वे इस बात का संकेत थे कि समाज के विभिन्न हिस्सों की औरतें किस प्रकार की समस्याओं का सामना कर रही हैं।

चर्चाओं के अलावा कई समूहों ने नृत्य,गीतों,नाटकों और फिल्मों जैसे रचनात्मक माध्यमों का इस्तेमाल भी किया। बहुत सी औरतें जो कि चर्चा से स्वयम् को जोड नही पाती ,उनके लिए ये माध्यम बहुत अर्थपूर्ण हो जाते है। बहुत से स्टॉल और प्रदर्शनियाँ लगायी गई जहाँ विभिन्न संगठनों ने अपनी पत्रिकाओं ,किताबों ,पोस्टरों ,पर्चों और सूचना पत्रों को रखा। औरतों द्वारा बनायी गई दस्तकारी की चीजों को भी प्रदर्शित किया गया।

शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था जहाँ देश के विभिन्न हिस्सों से आई औरतों ने गीतों,नृत्यों,और नाटकों के द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया। सम्मेलन में देर रात तक गतिविधि बनी रहती थी क्यूंकि सम्मेलन में शामिल महिलाएं केवल विभिन्न मुद्दों पर बहस ,अपने अनुभवों को बाटने,और संगठनों के साथ जुडने और नई रणनीतियाँ बनाने में ही नही लगी हुई थी बल्कि वे अपने सामान को बेचने ,सम्मेलन मे हिस्सा लेने आई अन्य औरतों से बातचीत और प्रेस को रिपोर्ट करने में भी व्यस्त थी।

कार्यक्रम के तीसरे और आखिरी दिन जब कि सामान्य सत्र में सभी सत्रों की रिपोर्ट रखी जानी थी और प्रस्ताव पारित किये जाने थे ,कोई कार्यवाही नही हो पाई । रैली और सार्वजनिक सभा का कार्यक्रम जो कि पिछले कई सम्मेलनों का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है ,नहीं हो पाया क्योंकि हमारी एक साथिन के साथ पुलिस ने दुर्व्यवहार किया। इस घटना का तुरन्त विरोध हुआ और हजारों औरतों ने रांची के मेन चौक पर चक्का -जाम किया और दोषी पुलिस वालों को निलम्बित करते के आश्वासन पर ही वहाँ से हटे ।

रांची सम्मेलन ने नारी आन्दोलन के भीतर कई महत्वपूर्ण मुद्दो, जैसे कि सम्मेलन के ढांचे ,संगठन ,हिस्सेदारी और स्वरूप ,पर एक गम्भीर और खुली बहस की जरुरत पर ध्यान दिलाया है ! कुछ समस्याएं जिन्हें पहचाना गया वे थीः सत्रों के विषयों का चुनाव,रजिस्ट्रेशन शुल्क ,ठहरने की व्यवस्था ,स्थानीय वालन्टियरों का अभाव,सत्र करने के लिए जगह की कमी,सम्मेलन में हिस्सा लेने का आधार इत्यादि !

बहुतों ने यह भी महसूस किया कि मुख्य और उप-विषयों पर चर्चाओं का समय हिस्सा लेने वालों की संख्या और मुद्दो की गम्भीरता को देखते हुए बहुत ही कम था। यह भी महसूस किया गया कि सत्रों के संचालक पूरी तैयारी के साथ नही आए थे जोकि चर्चाओं के स्तर और हिस्सेदारी में साफ नजर आ रहा था।

सम्मेलन के लिए जगह के चुनाव में एक महत्वपूर्ण उद्देश उस क्षेत्र में चल रहे संघर्ष को आगे बढाना और उन संघर्षो से जुडे लोगों के साथ पूरे भारत की महिलाओं की एकजुटता प्रदान करना होता है। इस के लिए जरुरी है कि स्थानीय मुद्दों से सम्बन्धित एक विशिष्ट सत्र रखा जाए। रांची सम्मेलन में इस प्रकार के सत्र का विशेष तौर पर पूर्णतया अभाव था। इन सब कमियों के सन्दर्भ में यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम इन सम्मेलनों को किस प्रकार देखते हैं। इन सम्मेलनों का क्या उद्देश्य है ,किस प्रकार के नारी संगठन इसमें हिस्सा ले रहे है ,क्या ये संगठन संघर्षरत है या गैरसरकारी संगठन हैं? इन सब प्रश्नों के सन्दर्भ में यह बहुत ही जरुरी हो जाता है कि महिला आन्दोलन में वर्तमान प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाए और यह समझने की कोशिश की जाए कि ये प्रवृत्तियाँ सम्मेलनों के आयोजन को किस प्रकार प्रभावित कर रही है ।

**रांची सम्मेलन ने ऐसे सवालों की तरफ ध्यान दिलाया है जिन्हें नारी मुक्ति के लिए संघर्षरत संगठन अब और अनदेखा नहीं कर सकते।**

सहेली ने 30 जनवरी को रांची सम्मेलन के समीक्षा हेतु दिल्ली के महिला संगठनों की बैठक बुलाई। इस बैठक में लगभग 30 महिलाओं ने हिस्सा लिया। कुछ मुद्दे जो निकल कर आए वे इस प्रकार है:राष्ट्रीय समन्वय समिति और राज्य समन्वय समिति जो कि इस सम्मेलनों का आयोजन करती है उनकी क्या भूमिका होनी चाहिए ? दोनों के बीच में समन्वय कैसे बेहतर किया जाए ? इस बात पर जोर दिया गया कि सम्मेलनों के आयोजन के समन्वय में राष्ट्रीय समन्वय समिति किस प्रकार निरन्तरता/बातचीत बनाए रखे इस पर विचार किया जाना चाहिए। यह भी महसूस किया गया कि सम्मेलनों के बीच के समय में विभिन्न संगठनों मे पारस्परिक आदान-प्रंदान बहुत कम हो जाता है उस स्थिति को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए। यह सुझाव भी आया कि सम्मेलन के दौरान जो निर्णय व प्रस्ताव पारित किए जाते हैं उन्हें कहाँ तक आगे ले जाया गया है यह भी समीक्षा का विषय होना चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा जो बहस से निकल कर आया वह था: राष्ट्रीय समन्वय समिति में विभिन्न संगठनों को किस आधार पर शामिल किया जाए ? यह बात भी उठाई गई कि इन सम्मेलनों में गैर -सरकारी संगठनों और सरकारी कार्यक्रमों में शामिल औरतें बड़ी संख्या में भाग ले रही है। यह तय किया गया कि अप्रैल में बड़ौदा में होनेवाली समीक्षा बैठक में इस मुद्दे को उठाया जाए और अन्य संगठनों की इस पर राय ली जाए।

दि डेवलपिंग कन्ट्रीज रिसर्च सेंटर (डी.सी.आर.सी.) नें दिल्ली विश्वविद्यालय में 3 फरवरी को नारी आन्दोलनों के सम्मेलन पर एक परिचर्चा का आयोजन किया । सहेली को पहले किए गए सम्मेलनों के परिप्रेक्ष्य और इतिहास के सन्दर्भ में रांची सम्मेलन की रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा गया। इस परिचर्चा में बहुत सी वे महिलाएं शामिल थीं जो सम्मेलन में भाग लेने गई थीं।'सहेली' के वक्तव्य के बाद,इन सम्मेलनों में महिला आन्दोलनों की राजनीति किस प्रकार प्रतिबिम्बित होती है, इस पर काफी रोचक और समीक्षात्मक बहस हुई।

गैर-सरकारी संगठनों की बढ़ती हुई हिस्सेदारी और विदेशी पैसे के आन्दोलनों पर प्रभाव पर भी बातचीत हुई। यह बात बहुत जोर से उठाई गई कि रांची मे सत्रों और चर्चाओं में संघर्ष के परिप्रेक्ष्य का अभाव था। इस बात पर भी ध्यान दिलाया गया कि शुरुआत में जिस प्रकार इन सम्मेलनों को स्वायत्त महिला संगठनों का सम्मेलन कहा गया था ,अब इन सम्मेलनों को इस प्रकार परिभाषित नही किया जा सकता। बहस मुख्य रूप से फण्डिग और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका और वामपंथी संगठनों के साथ गठ-बन्धनों के प्रश्नों पर केन्द्रित हो गई। इस तथ्य पर भी ध्यान आकर्षित किया गया कि पहले के दो सम्मेलनों के मुकाबले में रांची में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दलों की महिलाओं की भागीदारी बहुत कम थी। एक अन्य विचार जो उभर आया वह था कि यदि महिला आन्दोलन में बहुत भिन्न-भिन्न प्रवृतियाँ है तो क्या यह जरुरी है कि सभी महिलाएं केवल एक ही सम्मेलन के झण्डे के नीचे एकत्रित हो? क्या अलग-अलग प्रकार के सम्मेलनों ,जो कि महिला आन्दोलन की विभिन्न प्रवृतियों को प्रतिबिम्बित करते हो,का आयोजन भी हो सकता है ? सवाल बहुत थे और उन सबके जवाब सबके पास नही थे,परन्तु यह स्पष्ट था कि सम्मेलनों के बदलते हुए चरित्र चिन्ता का विषय है।

ये सब सवाल है जिन्हें न ही हम और न ही अन्य जो नारी मुक्ति संघर्षो से जुडे हुए है ,अनदेखा कर सकते हैं। इस समय,राष्ट्रीय समन्वय समिति का हिस्सा होने के नाते ,सहेली नें यह महसूस किया जा रहा है कि सम्मेलनों में अपने संगठनात्मक उद्देश्यों और भूमिका को साफ तौर से तय किया जाय। रांची सम्मेलन का मूल्यांकन यह जरुरी कर देता है कि नारी आन्दोलन की विभिन्न प्रकृतियों पर पुनः विचार किया जाए।

# औद्योगिक इकाइयों की बन्दीः

## मजदूरों की आवाज

'दिल्ली मास्टर प्लान' को आधार बना दिल्ली को स्वच्छ बनाने की एक विस्तृत योजना तैयार की गई जिसके तहत 4378 इकाइयों को प्रदूषणकारी घोषित किया गया। और योजना के पहले चरण में 168 खतरनाक प्रदूषणकारी इकाइयों को दिल्ली के बाहर पुर्नस्थापित करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जुलाई 1996 में आदेश जारी किए गए। इसके परिणापस्वरूम मालिकों ने इन 168 इकाइयों को बन्द कर हजारों मजदूरों को ,बिना कोई मुआवजा /वेतन दिए बेरोजगार बना दिया। इन स्थितियों को देखते हुए, दिसम्बर 1996 में दिल्ली के विभिन्न श्रमिक व महिला संगठनों,विद्यार्थी संगठनों और लोकतांत्रिक अधिकार ग्रुपों व अन्य समूहों ने एक साथ मिलकर *दिल्ली जनवादी अधिकार मंच* का गठन किया जिसमें *सहेली* भी शामिल है और शुरु सें ही मंच के काम में सक्रिय रही है। आज हम यहाँ मंच की कुछ गतिविधियों की चर्चा कर रहे हैं।

**यह बहुत दुख की बात है कि एक जनहित याचिका 50,000 मजदूरों का रोजगार छीनने का साधन बनी।**

गठन के समय से *दिल्ली जनवादी अधिकार मंच* के लिए दो मुद्दे मुख्य रहे हैं। (1) इकाइयों के बन्द किए जाने पर हजारों मजदूरों और उनके परिवारों का विस्थापन और (2) झुग्गी बस्तियों के ढाये जाने से वहाँ के निवासियों का विस्थापन। इन मुद्दों पर सर्वोच्च न्यायालय,श्रम मंत्रालय व अन्य जगहों पर धरनों और विरोध सभाओं का आयोजन किया गया। इकाइयों को बन्द करने के मुद्दे पर दिल्ली के विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों,विश्वविद्यालयों व अन्य जगहों पर जनसभाओं का आयोजन किया गया। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के विरोध में अभियान चलाया गया जिसमें परचे बांटे गए और सांस्कृतिक कार्यक्रमों और रैलियों का आयोजन किया गया। झुग्गी बस्तियों के ढाए जाने के विरोध में चल रहे झुग्गी निवासियों के संघर्ष को समर्थन व जरुरी सहायता भी दी गई।

*जब अदालती आदेश ने शहर ढहा दिया* नामक रिपोर्ट में प्रदूषण की राजनीति और दिल्ली के मजदूरों के विस्थापन के मुद्दे का विश्लेषण किया गया। इस में बताया गया कि उद्योग मालिकों द्वारा औद्योगिक सुरक्षा,मल की निकासी,खतरनाक प्रक्रियाओं इत्यादि के सम्बन्ध में बने अनिवार्य कानूनों के उल्लंघन की कीमत मजदूर किस तरह चुका रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के एक साल बाद मंच ने एक सर्वे किया। सर्वेक्षण का उद्देश यह पता लगाना था कि मजदूरों को मुआवजा दिया जा रहा है या नहीं, इकाइयों का स्थानान्तरण हो रहा है या उन्हें बन्द किया जा रहा है तथा इस मामले में राज्य और केन्द्र सरकारों की क्या भूमिका व प्रतिक्रिया रही है । इस सर्वे रिपोर्ट *आगे की दास्तान* (द डे आफ्टर) में इन मजदूरों की चिन्ताजनक स्थिति का विवरण दियां गया।

प्रभावित मजदूरों की आवाज और इस मुद्दे को लोगों तक पहुचाने के लिए मंच ने जन-सुनवाईयों का आयोजन किया। शाहदरा,नांगलोई,वजीरपुर और ओखला के औद्योगिक क्षेत्रों में स्थानीय सुनवाई के बाद केन्द्रीय सुनवाई 13 दिसम्बर 1997 को हुई जिसमें जन-अदालत की जूरी ने अपना फैसला सुनाया।

जन-सुनवाइयों की तैयारियाँ अक्तूबर 1997 में शुरु की गईं। इसके दौरान मंच के कार्यकर्ता दिल्ली के विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों और मजदूर बस्तियों में गए। परचों,गीतों,नुक्कड सभाओं व नाटकों के माध्यम से मजदूरों को जन-सुनवाई के बारें में बताया और उसमें भाग लेने का अनुरोध किया। यहाँ यह बताना उचित होगा कि इस अभियान में बन्द की जा चुकी 168 इकाइयों के बारे में ही नही बल्कि उन 9000 से अधिक इकाइयों के बारें में भी चर्चा की गई जिनके सर पर तलवार टंगी हुई है।

स्थानीय सुनवाइयों में वहाँ के प्रभावित मजदूर आए और अपनी आपाबीती बयान कर गए। कुछ एक परिवार वालों ने यह भी बताया कि अदालती आदेश से उनके जीवन पर क्या प्रभाव पडा। उनके इन बयानों को केन्द्रीय सुनवाई में सबूत के तौर पर पेश किया गया। जूरी के सदस्य दिल्ली का जानी-मानी हस्तियाँ थी जिन में अकादमिक प्रोफेसर जावेद आलम,प्रा. इमराना कादिर व प्रो.दिनेश मोहन ,साहित्यकार ललित कार्तिकेय व राजेन्द्र यादव और रंगकर्मी हबीब तनवीर शामिल थे।

केन्द्रीय सुनवाई के लिए मंच ने केन्द्र सरकार के पर्यावरण ,उद्योग और श्रम मंत्रालयों, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और केन्द्रीय श्रम विभाग को भी आमंत्रित किया। इनके अलावा ,जस्टिस कुलदीप सिंह व जस्टिस सगीर अहमद,पर्यावरण वकील श्री एम्. सी. मेहता ,बन्द इकाइयों के मालिकों ,दिल्ली के मुख्य मंत्री व राज्य के श्रम विभाग के अधिकारियों को भी अपना पक्ष रखने के लिए आमंत्रित किया गया। इसी तरह स्थानीय सुनवाइयों में इकाइयों के मालिकों और श्रम विभाग व पुलिस अधिकारियों को भी अपनी बात रखने के लिए आमंत्रित किया गया था!

खेद की बात है कि इन आमंत्रित लोगों में से किसी ने भी आना और अपने पक्ष की बात करना जरुरी नहीं समझा। यहाँ गौरतलब बात यह भी है कि एम्. सी.मेहता द्वारा दायर जनहित याचिका पर ग्यारह साल तक चली सुनवाई में मजदूरों या उनके प्रतिनिधियों को अपना पक्ष रखनें के लिए एकबार भी नही बुलाया गया था। इस के बावजूद मंच ने न्यायोचित जन-सुनवाई के लिए अधिकारियों और मालिकों को अपना पक्ष रखने के लिए आमंत्रित किया परन्तु सुनवाई में न आकर उन्होने मंच के न्यायसंगत प्रयास को विफल कर दिया। इससे तो यही लगता है कि वे मजदूरों की आवाज को पूरी

तरह दबाना चाहते हैं। इसलिए स्वाभाविक था कि जूरी को एक महत्वपूर्ण सवाल यह तय करना पडा कि सरकारी मुकद्दमें में प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तो का पालन हुआ या नही । और जूरी के सभी सदस्यों की राय थी कि ऐसा नही हुआ और इसलिए सरकार व उसकी एजेंसियों को चाहिए कि वे इस मामले पर पुनर्विचार करे।

केन्द्रीय सुनवाई में बयान देनेवालों में वकील,विज्ञानी,पत्रकार मानवाधिकार समूहों और नगर योजना संस्थानों के साथ जुडे लोग भी शामिल थे। इनके बयानों से जो बात साफ उभर आई वह थी कि विस्थापन के तात्कालिक मुद्दों पर संघर्ष करने के साथ साथ मामले की जड़ तक जाना भी जरुरी है। और उसके लिए मौजूदा मास्टर प्लान,जिसे सरकार और न्यायालय नें 'सत्य वचन' मान लिया,की न केवल आलोचना बल्कि उसका विकल्प तैयार करना भी जरुरी है । इस बात को मंच अभी तक एक राजकीय मांग के रूप में उठाता रहा है। सुनवाई के समय पता चला कि आलोचना और विकल्प तैयार करना व्यावहारिक तौर पर उपयुक्त भी है और सम्भव भी । ऐसा इसलिए कि एक नए मास्टर प्लान का प्रारूप तैयार किया जा रहा है । और उसे गजट में घोषित करने से पहले सरकार को उस पर लोगों के सुझाव व आपत्तियाँ कानूनन आमंत्रित करनी होंगी।इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।

जूरी के सदस्यों ने अपने फैसले में कहा कि यह बहुत दुख की बात है कि एक जनहित याचिका 50,000 मजदूरों का रोजगार छीनने का साधन बनी। और कहा कि चूंकि इस सारी प्रक्रिया में प्राकृतिक सिद्धान्तो का उल्लंघन हुआ है इसलिए इस मामले पर पुनर्विचार होना चाहिए। और साथ ही जिस मास्टर प्लान को सत्य वचन मानकर आदेश जारी किया गया उसको पूरी तरह बदलना चाहिए। उन्होने यह भी कहा कि सरकार को चाहिए कि वह एक ऐसा तंत्र बनाए जो तकनालॉजियों को आम उपयोग में लाने से पहले उनके प्रदूषण सम्बन्धी सभी पहलुओं की पूरी जाँच करे। मजदूरों और उद्योग मालिकों के प्रतिनिधि इस तंत्र में शामिल होने चाहिएं।

अभी तक मजदूरों को वेतन और मुआवजा न दिए जाने पर जूरी ने अपना दुख प्रकट करते हुए कहा कि उनका भुगतान तुरन्त होना चाहिए। और यदि मजदूरों की पहचान व सही संख्या के बारे में कोई समस्या हो तो उस पर मजदूरों के दिए गए बयानों को पूरा वजन दिया जाना चाहिए। आगे उन्होने कहा कि इकाइयो के स्थानान्तरण के कारण जो जमीन खाली हो नही है उसपर मजदूरों का भी अधिकार होना चाहिए और उनकी राय मे बाद ही उस जमीन के भावी उपयोग का निर्णय लिया जाना चाहिए।

जन सुनवाई के इस फैसले को परचे,गीतों और नुक्कड नाटकों के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया गया। परचे में मजदूरो से अनुरोध किया कि वे राजनैतिक नेताओं,जो चुनाव प्रक्रिया में लगे हुए थे ,के सामने अपने सवालों के जवाब की मांग रखे।

प्रभावित मजदूरों के परिवारों पर खासकर औरतों और बच्चों पर पड़े प्रभाव की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मंच ने एक सर्वे किया । इकाइयों के बन्द होने से औरतों पर किस तरह का भारी बोझ पडा है उसका विवरण रिपोर्ट मे दिया गया है । संयोगवश यह रिपार्ट अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर जारी हुई।

प्रिय मित्र,

भविष्य के अंकों में सहायता हेतु और पत्रिका के मुद्रण और डाकखर्च चलाते रहने के लिए, हम चाहेंगे कि आप पत्रिका की वार्षिक सदस्यता की राशि रूपये 35/--भेजने का कष्ट करें।

आप के पत्रों,प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हमें इन्तज़ार रहेगा।

अपनी प्रतिक्रिया अवश्य लिखें।

न्यूजलेटर में छपी सामग्री को आप पुनर्मुद्रित कर सकते हैं। मगर इसका श्रेय 'सहेली' को देना न भूलें। सम्भव हो तो एक कापी भेजें। हमें इस बात की खुशी होगी।

नाम

संस्था

पता

फोन

भुगतान कैश, मनिऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट या चेक के जरिये करें। चेक तथा ड्राफ्ट सहेली वूमेन्स रिसोर्स सेन्टर (Saheli Women's Resource Centre ) के नाम से भेजें।

## भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसन्धान परिषद(आइ.सी.एम्.आर् ) के समर्थन से चल रहे

# अनैतिक शोध के खिलाफ अभियान

खतरनाक गर्भनिरोधकों के खिलाफ अपने अभियानों में हम भारत में हों रहे ऐसे अनुसन्धानों की प्रकृति व तरीकों की आलोचना करते है जो गरीब व निरक्षर औरतों को लक्ष्य बनाकर उनपर प्रयोग करते हे। खतरनाक गर्भनिरोधकों में गर्भ-विरोधी टीका व भारत में विभिन्न गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा नसबन्दी के रासायनिक तरीके के रूप में क्विनाक्रिन का उपयोग भी शामिल है। क्लीनिकल प्रयोगों के संदर्भ मे हमने नैतिक दिशानिर्देश के मुद्दे को भी उठाया है।

2 दिसम्बर 1997 के टाइम्स ऑफ इंडिया में एक रपट छपी। इस रपट से इन्स्टिट्यूट ऑफ सायटोलॉजी व प्रिवेंटिव ओकोलॉजी (आइ.सी.पी.ओ.)द्वारा 1976 में किये गये एक शोध के लिए दिल्ली के आसपास की गरीब औरतों को शिकार बनाई जाने की एक घिनौनी कहानी प्रकाश में आयी। आइ.सी.पी.ओ.,जिसे आइ.सी. एम्.आर्.से अनुदान मिलता है, ने दिल्ली की सरकारी अस्पतालों में जाने वाली औरतों पर एक सर्वेक्षण किया।इसके तहत करीब 65000 औरतों की 8 सालों से ज्यादा समय तक जाँच की गयी। सर्वेक्षण 1984 में खत्म हुआ। इस दौरान तीन औरतों की गर्भाशय की ग्रीवा पर असामान्य उतक उगे हुए पाये गये (सर्वाइकल डिस्प्लासिया रोग) जो केन्सर के पूर्व की एक सम्भावित परिस्थिति है।उन्हे आगे के अधिक अध्ययन के लिए चुना गया। पत्रिका 'एक्टा साइटोलॉजिका' (अंक 31,पृष्ठ 226-233)में प्रकाशित हुआ था कि इस अध्ययन का उद्देश 'गर्भाशय की ग्रीवा में केन्सर पूर्व व केन्सर के शुरुआती घावों के प्राकृतिक इतिहास' का अध्ययन करता था। आमतौर पर सर्वाइकल डिस्प्लाशिया से ग्रसित औरतों में सम्भाविन केन्सर पूर्व की यह परिस्थिति बरसों तक बनी रहती है। कुछेक में यह स्पष्ट केन्सर के रूप में विकसित हो सकती है। इस अध्ययन का उद्देश गर्भाशय की ग्रीवा में केन्सर पूर्व की परिस्थिति को पकडना ,केन्सर व उसके शुरुआती घावों का इलाज करना था ताकि गर्भाशय के आक्रमक कॅन्सर की रोकथाम की जा सके।

**- आई.सी.एम.आर. को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए और अनैतिक शोध के खिलाफ जांच में तेजी लानी चाहिए।**

**- इस प्रकार की अनैतिक व अमानवीय शोध के लिए जिम्मेवार लोगों के विरूद्ध सख्त कार्यवाही की जाने चाहिए।**

**- जिन औरतों पर इस प्रकार के शोध किए गए है उन्हें तुरन्त पहचाना जाना चाहिए और उनका न केवल सही उपचार किया जाना चाहिए बल्कि उन्हें हुए नुकसान के लिए उन्हें मुआवजा भी दिया जाना चाहिए।**

जिन 1100 औरतों पर करीब साढे चार वर्षो तक अध्ययन जारी रखा गया उनमें से 22 को केन्सर हो गया। अध्ययन में शामिल होने की वजह से केन्सर की सम्भावना की पहचान शुरु के स्टेज में ही हो गयी थी। इसके बावजूद भी उन्हे केन्सर का इलाज तुरन्त उपलब्ध नही कराया गया और उनपर अध्ययन जारी रहा। जिन औरतों को केन्सर हो गया था उनमें से कुछ अध्ययन की समाप्ति से पहले ही मर गयी। पर उनकी मृत्यु के सही कारणों का पता नही चला । इन औरतों का इलाज कराना डॉक्टरों की पहली प्राथमिकता होनी चाहिये थी,परन्तु डॉक्टरों के ऐसा न करने के रवैये के साथ ही सहभागी औरतों से सूचित सहमति लेने का मुद्दा भी बहुत सतानेवाला है। आइ.सी.पी.ओ. के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए इस अध्ययन के परिणाम 1997 में प्रकाशित हुए। इनके अनुसार जिनपर शोध किया जाए उनसे लिखित मे औपचारिकं सहमति लेने की परम्परा भारत में नही है।' हालांकि फरवरी 1980 में ,जब यह अनुसन्धान जारी था, आइ.सी. एम्.आर्. ने मनुष्य पर शोध के सन्दर्भ में गौर करने योग्य नैतिक मुद्दों पर एक नीतिगत वक्तव्य जारी किया था।

आइ.सी.एम्.आर्. देश का उच्चतम आयुर्विज्ञान संस्थान है जिसमे नयी दवाअं के क्लिनिकल प्रयोगों,नये टीके और अन्य लम्बी अवधि के अध्ययनों के लिये दिशानिर्देश बनवाए है। इसलिये आइ.सी:एम्.आर्. से अनुदान प्राप्त करने वाली संस्था आइ.सी.पी. ओ.के लिये यह मानना जरुरी है कि उसके द्वारा संचालित अध्ययन के दौरान सूचित सहमति सम्बन्धी नैतिक दिशानिर्देशों का पालन हो ।परन्तु आइ.सी.पी.ओ. के शोधकर्ताओं ने इन दिशानिर्देशों को नजरअन्दाज किया। कुछ दिशानिर्देश इस प्रकार है:'इस देश में मनुष्यों पर प्रयोग करने पर यह पक्का करना जरुरी है कि एक व्यक्ति को होनेवाले खतरों की तुलना में उसे या समाज को हो सकने वाला सम्मानित लाभ या बढनेवाला ज्ञान ज्यादा महत्वपूर्ण है ।'और आगे 'व्यक्तियों को सही व पर्याप्त तरीकों से सूचित सहमति प्राप्त की गयी।' जिस अध्ययन के विषय में यहाँ चर्चा की जा रही है उसमें इन दोनों शर्तो को तोडा गया है। जिन औरतों को गर्भाशय के ग्रीवा का केन्सर हो गया उन्हे बिना इलाज उपलब्ध कराए उनपर अध्ययन जारी रखा गया जिससे उन्हें नुकसान हुआ। दूसरा सूचित सहमति के नामपर आइ.सी.पी.ओ. ने औरतों को मात्र एक कार्ड द्वारा यह सूचना दी थी कि उनका पेप परीक्षण(ग्रीवा का केन्सर पता करने लिए यह परीक्षण किया जाता है) असामान्य है और उन्हे दी गयी तारीख पर अस्पताल पहुंचना चाहिए।

अखबार की खबरों के आधार पर सहेली ने पहल की। फिर सहेली के साथ जनवादी महिला संघ,एक्शन इंडिया,निरन्तर,मॅजिक लॅण्टर्न फाउण्डेशन ,पी.यू.सी.एल्. ,एडस् भेदभाव विरोधी अभियान(ए.बी.वी.ए.),डी.जी.एम्.ए.,जागोरी,एम्.ए.आर्.जी., व अन्य समूहो ने मिलकर 10 दिसम्बर 1997 को मानव अधिकार दिवस पर,आइ.सी. एम्.आर्. के सामने विरोध प्रदर्शन किया। आइ.सी.एम्.आर्. एथिकल गाईडलाइन्स समिति के सदस्य सचिव डॉ. बद्री सक्सेना को एक ज्ञापन भी दिया गया। डॉ.सक्सेना पर आइ.सी.पी.ओ. के अध्ययन को सार्वजनिक करने के लिये भी दबाव डाला गया और 18 दिसम्बर 1997 को महिलाओं के साथ एक मीटिग में डॉ. सक्सेना ने माना कि ऐसा कोई तरीका नही था जिसके तहत आइ.सी.एम्.आर. इन लोगों के खिलाफ कार्यवाही शुरु कर सकती जिन्होंने इस परियोजना को स्वीकृति दी थी या इसके हिस्से रहे।

उसी दौरान ,न्यायविद् एम्.एन्.वेंकटचल्लैया .जो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष भी है,की अध्यक्षता में मनुष्यों पर होने वाले बायोमेडिकल अनुसन्धान के लिए नैतिक दिशानिर्देश का ड्राफ्ट तैयार किया गया है । यह अपेक्षित है कि इन नयी दिशानिर्देशो में शोध के नये क्षेत्रों को शामिल किया जायेगा और क्लिनिकल प्रयोगों को ज्यादा मानवीय व नैतिक बनाया जायेगा। परन्तु उपलब्ध दिशानिर्देशों को लागू करने व जो उन्हे नही मानते उनको सजा देने सम्बन्धित प्रमुख प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। आइ.सी.एम्. आर्. के साथ मीटिंग के दौरान हमने प्रस्तावित नैतिक दिशानिर्देयश मूल्यांकन और विश्लेषण के अपने अधिकार पर भी जोर दिया। आइ.सी.एम्.आर्. और आइ.सी.पी.ओ. जैसी सार्वजनिक संस्थानों से जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए महिला समूहो द्वारा चौकसी जरुरी है।

## अभियान/ताजा स्थिति: क्विनाक्रिन नसबन्दी

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में महिला नसबन्दी के लिये क्विनाक्रिन नसबन्दी विरोधी अभियान ने जोर पकड लिया है। महिला आरोग्य रक्षण समिति और इसी प्रकार महिला जागृति के बैनर तले बंगलूर के कुछ महिला समूह क्विनाक्रिन पद्धती के अनैतिक परीक्षण से जुडे खतरों के मुद्दे पर ध्यान केन्द्रित कर रहे है। बंगलूर में प्राइवेट डॉक्टरों व गैरसरकारी संस्थानों के सख्त विरोध के कारण कर्नाटका के क्वीनाक्रिन पद्धती को बढावा देने वाले ड्रग कन्ट्रोलर को सार्वजनिक रूप से यह कहने पर मजबूर होना पडा कि उसके दफ्तर नें किसी भी डॉक्टर को क्वीनाक्रिन की नसबन्दी के एक तरीके के रूप में इस्तेमाल करने को स्वीकृति नही दी है। डॉ. भटेजा ,जो इस पद्धती को बढावा देने वाली एक प्रमुख व्यक्ति रही हैं उनके क्लीनिक के सामने धरनों और विरोध प्रदर्शनों के परिणामस्वरूप वे भी यह कहने पर बाध्य हुई है कि वे इस पद्धती का इस्तेमाल बन्द कर देगी। उन्होने यह भी दावा किया कि वे उस पद्धती के हानिकारक प्रभावों के बारें में अनभिज्ञ थी और उन्हे इसके बारें में जानकारी अगस्त 1997 में कोपेनहेगेन में स्त्री व प्रसूती विशेषज्ञों की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में ही हुई। डॉ. किणी 'चिप' नामक एक गैरसरकारी संस्था के अध्यक्ष हैं,जिसके द्वारा डॉक्टरों का प्रशिक्षण ,सूचनाओं व क्वीनाक्रिन नसबन्दी किट का वितरण आदि किया जाता था। उन्होंने भी कहा है कि वे अब क्विनाक्रिन नसबन्दी नहीं करते हैं।

पश्चिम बंगाल के डॉ.मलिक ने यह दावा किया है कि गणतांत्रिक महिला समिति के सदस्यों द्वारा उनके क्लीनिक के बाहर किए गए प्रदर्शनों के बाद उन्होंने क्विनाक्रिन पद्धती का इस्तेमाल बन्द कर दिया है। परन्तु महिला समूहों को इन दावों की सत्यता को लेकर सतर्क रहना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पद्धती भूमिगत तो नहीं कर दी गई जहाँ उसको पकड़ पाना व उसपर निगरानी रखना ज्यादा मुश्किल हो जाएगा। कर्नाटक व बंगाल में चिप व रूरल मेडिकल एसोसिएशन के द्वारा सैकडों डॉक्टरों को प्रशिक्षित किया गया है। सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के तेजी से घटने व निजीकरण के फैसले के साथ-साथ ज्यादा-से-ज्यादा गैर-सरकारी संस्थाएं स्वास्थ्य ,खास तौर से प्रजनन स्वास्थ्य के क्षेत्र मेंआ रही है। इनकी गतिविधियों पर नजर रखना और यह सुनिश्चित करना कि ये मानक मानदण्डों का पालन कर रही है व इनके चिकित्सको से जवाबदेही की मांग करना आगे एक चुनौती भरा काम होगा ।

सहेली ने भारत के औषधि नियंत्रक (ड्रग कन्ट्रोलर ऑफ इंडिया)पर इस सम्बन्ध में अपना एक स्पष्ट मन प्रस्तुत करने के लिए दबाव बनाने का प्रयास किया है। दिसम्बर 1997 को हमें ड्रग कन्ट्रोलर ऑफ इंडिया से संदेश मिला कि ड्रग टेक्निकल एडवायजरी बोर्ड ने लाभ और खतरों को ध्यान मे रखकर सोच-विचार किया व इसके आधार पर क्विनाक्रिन की गोलियों पर पाबन्दी लगाने की सिफारिश की। क्विनाक्रिन के आयात पर ड्रग व कॉस्मेटिक्स कानून की धारा 10 ए के तहत व इसकी गोलियों के वितरण व विक्रय पर इसी कानून की धारा 26 ए के तहत पाबन्दी लगी है। हालांकि जिस कानून के तहत क्विनाक्रिन पर प्रतिबन्ध लगा है उसमें बचाव के रास्ते भी हैं। जैसे, ड्रग व कॉस्मेटिक्स कानून की धारा 10 में एक प्रावधान है, 'परन्तं यह धारा जाँच या परीक्षण या विश्लेषण या व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए किसी भी औषधि की अल्प मात्रा में खरीद पर लागू नहीं होती बशर्ते इसके लिए समुचित आदेश हों। धारा 'समुचित आदेश', 'अल्प मात्रा', 'किसी भी औषधि' जैसी अस्पष्ट शब्दावली के उपयोग से दुरूपयोग की बहुत सम्भावनाएं छोड़ देती हैं। ऐसा लगता है कि जनवादी महिला संघ व जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की फैकल्टी के सदस्यों द्वारा उच्चतम न्यायालय में किए गए मुकद्दमों से भी दबाव बना है। 16 मार्च को सर्वोच्च न्यायालय ने महिला नसबन्दी के लिए क्विनाक्रिन के प्रयोग पर प्रतिबन्ध को जायज करार दिया है। इस बारे में अधिसूचना सरकारी गजट में छप चुकी है।

औरतों के स्वास्थ्य को खतरे में डालने को लेकर जबतक प्रतिबद्धता व राजनैतिक इच्छाशक्ति नहीं होगी मात्र एक प्रतिबन्ध से कुछ विशेष फायदा नहीं है। नीतिनिर्धारकों के कानों में 'जनसंख्या विस्फोट' जैसे शब्द भनभनाते रहते हैं। ऐसे में अनैतिक क्लीनिकल प्रयोगों व खतरनाक तरीकों के खिलाफ नैतिक मापदण्ड सुनिश्चित करने में वे दृढसंकल्प नहीं हो सकते। इसीलिए यह जरूरी है कि प्राइवेट डाक्टरों व गैरसरकारी संस्थानों से जवाबदेही सुनिश्चित करने व सरकार पर अपनी जिम्मेदारी निभाने का दबाव बनाए रखने के लिए महिला समूह संघर्ष जारी रखें।

# आजादी के पचास वर्ष —कुछ सवाल ,कुछ आंकडे

देशभर में आजादी की स्वर्णजयन्ती बडी धूम-धाम के साथ मनाई जा रही है। इस अवसर पर तरह-तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रमों,सेमिनारों का आयोजन किया जा रहा है।व्यापारी गण भी स्वर्ण जयन्ती के नाम व निशान का इस्तमाल कर पैसा जुटाने में लगे हुए हैं। परन्तु चारों तरफ का माहौल देखकर कई सवाल उठते है । यह सच है कि आज से पचास वर्ष पहले हमारे देश को अंग्रेजी राज्य से आजादी मिली। परन्तु प्रासंगिक सवाल है'किस तरह की आजादी?'

आज सभी यह जानते है कि बढती साम्प्रदायिकता और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के चलते किस तरह लोगों का जीवन प्रभावित हो रहा है। और किस तरह विकास के नाम पर बांध इत्यादि बनाने की योजना द्वारा लोगों को विस्थापित किया जा रहा है, कारखानों को बन्द कर मजदूरों को काम से हटाया जा रहा है,शहरों की 'सुन्दरता' के नाम पर झुग्गी झोपडी बस्तियों और रेहडी-खोमचे वालों को हटाया जा रहा है। ये सब इस बात की परवाह किए बिना हो रहा है कि इससे लोग को बेघर हो रहे हैं और उनसे उनकी रोजी कमाने का अधिकार व जरिया छिन रहा है।

यह कहना अनुचित नही होगा कि राज्य की ऐसी नीतियों का प्रभाव औरतों को सामाजिक और व्यक्तिगत ,दोनो स्तरों पर झेलना पडता है। ऐसी स्थिति में मन में सवाल उठता है कि हमने ऐसा क्या हासिल कर लिया है जिसकी हम खुशियाँ मनाये? खासकर तब जब हम देखते है कि

– देश के लगभग दो तिहाई लोग गरीबी में रहते है।
– लगभग 94 प्रतिशत औरतें कृषि और असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। उनके लिए संगठित क्षेत्र की सुविधाएं तो दूर,उन्हे बदतर स्थितियों में काम करना पडता है। न उन्हें युनियन बनाने का हक है और न ही उसके अनुकूल परिस्थितियाँ।
– समाज में बढती हुई हिंसा की शिकार भी अधिकतर औरतें ही होती है। इसका सूचक है ये आंकडें जो बोलते है–
– प्रत्येक 26 मिनट में एक यौन हिसा की घटना
– प्रत्येक 54 मिनट में एक बलात्कार
– प्रत्येक 42 मिनट में एक दहेज सम्बन्धी हिंसक घटना
– गैरकानूनी होते हुए भी बालविवाह जारी है।
– 1829 में अवैध घोषित सति प्रथा का आज भी गुणगान कर प्रोत्साहित किया जा रहा है।
– जनसंख्या का आधा हिस्सा होते हुए भी समाज में औरतों को दोयम दर्जा दिया जाता है और उन्हे आज भी परिवार में समान अधिकार प्राप्त नही है, जैसे
– बच्चों के संरक्षण और अभिभावक होने के मामले और बच्चा गोद लेने का मामला
– उत्तराधिकार और वैवाहिक सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार
– परिवार के लिए किए गए परिश्रम और योगदान की कोई मान्यता नहीं और न ही घर के बोझिल काम को समानतापूर्वक बांटा जाता है।
–यहाँ तक कि औरतों को जीवित रहने का मौलिक अधिकार भी नही दिया जाता। इसका उदाहरण है–लिंग जाँच के बाद मादा भ्रूणों का गर्भपात कराना और बालिका-वध जैसी प्रथाएं। इनके अतिरिक्त कुपोषण ,समुचित स्वास्थ्य सेवा के अभाव और हिंसा के कारण औरतों की मृत्यू-दर पुरुषों की तुलना में बढ़ गई है। इसका असर लिंग अनुपात पर पडा है। सन 1901 में 1000 पुरुषों के मुकाबले में जहाँ 972 औरतें थी, आज उनकी संख्या 927 ही रह गई है। इसके अलावा अन्य बीमारियों के कारण मरने वालों में औरतों की संख्या अधिक पायी जाती है क्योंकि उचित समय पर उन्हें अस्पताल नहीं ले जाया जाता । नीचे लिखे आंकडें इस बात के सूचक हैं–
– औरतों की जीवन प्रत्याशा की दर 51.6 वर्ष है जब कि पुरुषों के लिए यह 52.6 वर्ष है।
– 60 से 70 प्रतिशत औरतें अनीमिया से ग्रस्त हैं।
– प्रसव के समय केवल 33 प्रतिशत औरतों को ही प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों की सेवा उपलब्ध होती है।
– मातृ मृत्यु दर 1,00,000 जीवित शिशुओं पर 460 है।

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम का एक लम्बा इतिहास है, जिसके अन्तर्गत जन्म-दर कम करने के लिए सरकार ने जबरदस्ती करने वाली नीतियाँ लोगों पर थोपी । शोध और परीक्षणों मे शामिल औरतों की जानकारी के आधार पर सहमति लेने की नैतिकता को ताक पर रखकर औरतों पर नेट-एन्,डेपो प्रोवेरा ,नॉरप्लाण्ट,क्विनाक्रिन,प्रजनन विरोधी टीका इत्यादि खतरनाक और जानलेवा गर्भ-निरोधकों का प्रयोग किया जा रहा है।

सदियों से औरतों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया, जो आज भी जारी है। आज जहाँ 68 प्रतिशत पुरुष साक्षर है वहाँ साक्षर औरतों की संख्या केवल 39 प्रतिशत है। सांस्कृतिक और सामाजिक पूर्वाग्रहों के कारण लड़कियों की शिक्षा को अभी भी महत्व नही दिया जाता । इसके अलावा स्कूल व कॉलेज की शिक्षा से हटाये जाने वाले बच्चों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या अधिक पाई जाती है। औरतो की स्थिति सुधारने के लिए ऐसे सामाजिक रवैये को बदलने में और देरी नही होनी चाहिए। और जब तक मौलिक अधिकार सुनिश्चित नहीं किये जाते तब तक हाशिए पर रहने वाले लोग और औरतें बेड़ियों मे जकड़े रहेंगे, जो देश के विकास के हित में नहीं । परन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति योगदान दे तो समाज में आमूल परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

## सभी के लिये अर्थपूर्ण आजादी सुनिश्चित करने के संघर्ष में जुडें!

# सहेली

न्यूज़लेटर

निजी वितरण हेतु

सहयोग राशि 5 रूपये


## सितम्बर 1998

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न

महेश्वर बांध संघर्ष

नाभिकीय परीक्षण

क्विनाक्रिन


**कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न**

- एक अनुभव 2

**महेश्वर बांध संघर्ष**

- महिलायें फिर एक बार मोर्चे पर 4

**नाभिकीय परीक्षण**

- आक्रामकता की राजनीति 6

**क्विनाक्रिन नसबन्दी विरोधी अभियान**

- प्रतिबंध कहां तक प्रभावी होगा? 10

- स्वास्थ्य मंत्री के नाम खुला पत्र 12



मुद्रित सामग्री / बुक पोस्ट

कृपया निम्नलिखित पते पर लौटा दें:

सहेली वूमेन्स रिसोर्स सेन्टर, दुकान नं. 105-108 के ऊपर, डिफेन्स कालोनी फ्लाईओवर मार्केट, नई दिल्ली 110024, टेलीफोन: 4616485 (बुध और शनिवार)

# कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न और सर्वोच्च न्यायालय के दिशा निर्देश

## - एक अनुभव

महिला संगठनों के सक्रिय अभियान के जवाब में, गत वर्ष, 13 अगस्त 1997 को सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को दण्डनीय अपराध घोषित करते हुए कुछ बाध्यकारी दिशा निर्देश जारी किये। सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले को एक महत्वपूर्ण और सकारात्मक कदम बताया गया। व्यापक पैमाने पर इसका स्वागत करते हुए आशा व्यक्त की गई कि ये दिशानिर्देश महिलाओं को,कार्यस्थलों पर सुरक्षित व सम्मानपूर्वक वातावरण प्रदान करने में सहायक होंगे। परंतु व्यावहारिक स्तर पर ये दिशानिर्देश कितने सहायक सिद्ध हुए इसकी झलक एक मामले में प्राप्त अनुभव से मिलती है जिसका विवरण हम नीचे दे रहे हैं।

सुशीला (असली नाम नहीं) गाजियाबाद में औषधि बनानेवाली कंपनी में एग्जेक्यूटिव के पद पर कार्यरत थी। अच्छी कर्मचारी होने के नाते , दो वर्षो के उसके कार्यकाल में , प्रबंधकों को उससे कोई शिकायत नही थी – न उसके काम को लेकर और न ही उसके आचरण के बारे में । इसके बावजूद पिछला एक वर्ष सुशीला के लिए मानसिक तनाव और संघर्ष से पूर्ण रहा। कारण था कंपनी के सफाई ठेकेदार राजेंद्र सैनी द्वारा उसका यौन उत्पीड़न। जैसा कि आम तौर पर होता है सैनी के अभद्र व्यवहार की अवहेलना करते हुए वह अपने कार्य में मग्न रही। सैनी अक्सर सुशीला को देखते ही अश्लील गाने गाता और अश्लील संकेत करता । सुशीला के कई बार मना करने पर भी वह अपनी हरकतों से बाज नही आया। स्थिति उस दिन चरम सीमा पर पहुंची जब 3 नवंबर 1997 की सुबह सैनी अनचाहे शारीरिक संकेतों पर उतर आया। सुशीला की सहनशक्ति जवाब दे गई। इस तरह की पीडा व अपमान वह अब और सहन न कर सकी। उसने उसी दिन कंपनी के प्रशासन प्रबंधक से सैनी के खिलाफ शिकायत की । वहीं से शुरुआत हुई उसके अनन्त व चौतरफा संघर्ष की।

### प्रबन्धकों की भूमिका

सुप्रीम कोर्ट दिशानिर्देश : *यदि यौन उत्पीड़न के लिए कोई बाहरी व्यक्ति या कोई तीसरा व्यक्ति जिम्मेदार हो तो नियोक्ता या प्रभारी उत्पीड़ित महिला को समर्थन देने और कार्रवाई में सहायता के लिए सभी आवश्यक एवं समुचित कदम उठायेगा।*

इस मामले में अपराधी कंपनी का कर्मचारी नहीं था ,बल्कि एक बाहरी व्यक्ति था जिसने एक नियमित कर्मचारी का यौन उत्पीड़न किया। सफाई ठेकेदार की हैसियत से उसे कार्यस्थल पर आने-जाने की छूट थी। सुशीला की लिखित शिकायत के बाद सैनी का कंपनी के परिसर में प्रवेश तो बंद कर दिया गया पर उसका ठेका रद्द नही किया गया।

दूसरी ओर, उत्पीड़न का स्पष्ट मामला होते हुए भी, सुशीला को उसी दिन से निलंबित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों के अनुसार , सुशीला की शिकायत का निवारण करने के बजाय, प्रबंधको ने उसे एक पत्र दिया। इस पत्र में सुशीला पर आरोप लगाया गया कि उसने सैनी के प्रति अनुचित भाषा का प्रयोग किया और उसे चप्पल से मारा, जो एक घोर दुराचरण है और कंपनी के अनुशासन को भंग करता है। प्रबंधकों के इस रवैये का यही तात्पर्य है कि महिलाएं यौन उत्पीड़न को चुपचाप सहती रहें और उसके खिलाफ कोई आवाज न उठाएं।

दिशानिर्देश: *संस्था और कार्यस्थलों के नियोक्ताओं एवं अन्य जिम्मेदार व्यक्तिओं की जिम्मेदारी होगी कि वे यौन उत्पीड़न की घटनाओं को रोकने , उनके समाधान व आवश्यक निपटारे एवं अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने के लिए सभी प्रकार के आवश्यक कदम उठाएं।*

इस मामले में कंपनी प्रबंधकों ने न केवल अपनी जिम्मेदारी भी नहीं निभाई, बल्कि एक कदम आगे बढ़कर, यौन उत्पीड़न के वास्तविक मुद्दे से पूरी तरह आंखें फेर लीं। यही नहीं, उल्टा इस मामले को 'श्रम-विवाद', यानि की दुराचरण का मुद्दा बनाकर, सुशीला को ही दण्डित किया।

हमने बहुत प्रयास किया कि प्रबंधक इस मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य में देखें। उन पर दबाव भी डाला कि इसे यौन उत्पीड़न का मामला मानें। और ऐसे मामलों के निपटारे के लिए सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों से उन्हें ज्ञात भी कराया। परन्तु वे यौन उत्पीड़न की घटना को लगातार नकारते रहे। उन्हें किसी महिला संगठन का हस्तक्षेप करना पसंद नहीं आया और' सहेली' की हैसियत पर सवालिया निशान लगा, वे इस बात पर जोर देते रहे कि यह एक 'श्रम-विवाद' का मामला है जिसमें 'सहेली' को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।

ऐसी स्थिति में जहां एक ओर प्रबंधकों के साथ बातचीत चल रही थी, वहीं दूसरी ओर हम प्रयास कर रहे थे कि कंपनी के विरुद्ध न्यायालय की अवज्ञा करने का फौज़दारी मुकद्दमा दायर करें और इसी दौरान,सुशीला के विरुद्ध अपराधी द्वारा दायर किए फौज़दारी मामले में भी कार्रवाई कर रहे थे।

प्रबंधकों ने मामले की 'जाँच' करवाई। इस में कंपनी की तीन महिला कर्मचारियों ने, जो घटना की प्रत्यक्ष साक्षी थीं,सुशीला के विरुद्ध गवाही दी। इस 'आन्तरिक'(घरेलू) जाँच-पड़ताल में सुशीला को दुराचरण का दोषी ठहराया गया। और 2-4-1998 को उसे नौकरी से निकाल दिया गया।

## शिकायत समिति

जी हां, शिकायत समिति का गठन किया तो गया। मगर विश्वास करना मुश्किल होगा कि समिति का गठन उस दिन किया गया जिस दिन सुशीला को नौकरी से निकाला गया था। इस विलम्बित कार्रवाई का कारण था सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील द्वारा भेजा गया कानूनी नोटिस। इस के जरिए कंपनी को सूचित किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों द्वारा निर्धारित दायित्व व कर्तव्य का पालन न करना न्यायालय की अवज्ञा माना जायेगा, जिसके लिए कंपनी के विरुद्ध दण्डनीय कार्रवाई की जा सकती है।

सुप्रीम कोर्ट दिशानिर्देशः

*उत्पीड़ित महिला की शिकायत पर कार्रवाई के दौरान यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उस महिला को और उत्पीड़ित न किया जाय ।*

यहाँ यह विडम्बना नहीं तो और क्या है कि शिकायत समिति उस उत्पीड़ित महिला की शिकायत की जाँच कर रही थी जो तब तक नौकरी से निकाली जा चुकी थी। अब चूंकि शिकायत समिति का गठन किया जा चुका था तो प्रबंधकों को उम्मीद थी कि सुशीला,समिति की जाँच-कार्रवाई में उपस्थित होगी। सुशीला ने समिति को एक लिखित अर्जी में बताया कि यह प्रक्रिया सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों के अनुसार नहीं है क्योंकि शिकायत समिति का दायरा केवल कर्मचारियों के मामलों तक ही सीमित था। अतः उसने निवेदन किया कि पहले उसे नौकरी पर बहाल किया जाए, फिर वह समिति की कार्रवाई में उपस्थित हो पाएगी। उसने यह आश्वासन भी दिया कि जब यह मौलिक आवश्यकता पूरी हो जाएगी तो वह खुशी से समिति के समक्ष उपस्थित होगी।

परन्तु प्रबंधकों ने सुशीला के निवेदन और उसे नौकरी पर बहाल करने की वैधता की ओर कोई ध्यान नही दिया और शिकायत समिति की जाँच को जारी रखा। इस तरह शिकायत समिति का गठन केवल एक दिखावा था जिसका मकसद था कंपनी के हितों की सुरक्षा करना और उसके निष्पक्ष और न्यायप्रिय होने की छवि को प्रस्तुत करना। इसलिये जब शिकायत समिति इस परिणाम पर पहुंची कि सुशीला के प्रति कोई यौन उत्पीड़न की घटना नहीं घटी तो उस पर कोई हैरानी नहीं हुई।

## फौज़दारी मामले

दिशानिर्देश : *जहाँ ऐसे व्यवहार भारतीय दण्ड संहिता या किसी अन्य कानून के दायरे में आते हों तो नियोक्ता को उचित प्राधिकार के पास शिकायत करनी चाहिए। भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत यदि यौन उत्पीड़न दण्डनीय अपराध है तो कानूनी तौर पर नियोक्ता का कर्तव्य भी है और जिम्मेवारी भी कि वह फौज़दारी मुकद्दमा दायर करने की उचित कार्यवाही प्रारंभ करें।*

सुशीला के मामले में, अपराधी का कृत्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा 509 (औरत की मर्यादा का अपमान), और धारा 354 (औरत की मर्यादा का घोर अपमान करने के उद्देश्य से उस पर प्रहार या आपराधिक बल का प्रयोग) के तहत दण्डनीय अपराध है।

एक बार कंपनी के सुरक्षा कर्मचारी ने सुशीला को एक दस्तावेज देते समय, उसे पढ़ने नहीं दिया और बलपूर्वक उसके हस्ताक्षर लेने की कोशिश की। सुशीला ने इसकी लिखित रपट पुलिस को दी, परन्तु पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट (F.I.R.) को दर्ज भी नहीं किया।

प्रबंधकों ने इस मामले में जो कार्रवाई की वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 504 (शांतिभंग कराने के आशय से अपमान), धारा 506(आपराधिक रुप से डराना ) और धारा 509 (औरत की मर्यादा का अपमान) के तहत दण्डनीय अपराध है। सुशीला ने कंपनी के खिलाफ ,न्यायालय की अवज्ञा करने की याचिका दायर कर आरोप लगाया कि कंपनी ने सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों का पालन नहीं किया।

यह किस्सा यहीं खत्म नहीं होता। अपराधी ने मामले को एक अनोखा मोड़ दिया। उसने न्यायिक दण्डाधिकारी के जरिये शिकायत करवाकर सुशीला के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 325 (स्वेच्छा से हानि पहुंचाने का कार्य करना),धारा 500 (मानहानि),धारा 501(मानहानिकारक कथनों को छापना) और धारा 506 (आपराधिक रूप से डराना) के तहत फौजदारी मुकद्दमा दायर किया। नतीजतन सुशीला की गिरफ्तारी के वॉरंट जारी हुए। और वह जमानत के लिए भागदौड़ करने लगी। अभी यह मामला सत्र न्यायालय के यहां विचाराधीन है।

असली मुद्दे से ध्यान हटाकर ,सुशीला के खिलाफ इस तरह के झूठे व निराधार मुकद्दमों को दायर करने के पीछे ,उसे और उत्पीड़ित करने का आशय साफ जाहिर होता है। इन झूठे मुकद्दमों को रद्द करवाने के लिए सुशीला को उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ा।

औरतों को,फौज़दारी मुकदमों के पीछे भागते रहने में, जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है, वह इस बात से स्पष्ट होती है कि 'सहेली' के हस्तक्षेप और भागदौड़ के बावजूद सुशीला की प्रथम सूचना रिपोर्ट (F.I.R) भी दर्ज नही हो पाई जबकि इस सिलसिले में 'सहेली' की कार्यकर्ता पुलिस के उच्चाधिकारियों व शहर के दण्डाधिकारी से मिलीं और जिला दण्डाधिकारी को पत्र भी लिखा।

## श्रम न्यायालय

सुशीला ने जिला श्रम आयुक्त के कार्यालय में अपनी शिकायत दायर की। वहां सुनवाई के दौरान ,'सहेली' ने सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों का मामला उठाया। परंतु सहायक श्रम आयुक्त ने प्रतिकूल रवैया अपनाया। और दावे से कहने लगे कि सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों से इन का कोई वास्ता नहीं और उनकी जाँच पड़ताल के साथ 'यौन मामलों' का कोई 'सरोकार नही'।' सहेली' के हस्तक्षेप से पहले जिला श्रम आयुक्त मामले को रफादफा करने वाले थे। उनका तर्क था कि सुशीला को नौकरी से निकाले जाने के बाद ही यह मामला 'उपयुक्त' मामला बनेगा। चूंकि , जिला श्रम आयुक्त कार्यालय एक मध्यस्थता करने वाला निकाय है, उसे अपने निर्णयों व आदेशों को लागू करवाने के अधिकार प्राप्त नहीं हैं। 'सहेली' के हस्तक्षेप के बाद जिला आयुक्त को मजबूरन एक और जाँच करवा उसकी रिपोर्ट तैयार करवानी पड़ी।

जिला श्रम आयुक्त एक महिला थी। और जब पहली बार सहेली की कार्यकर्ता उनसे मिलीं तो उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों में अपनी रुचि व्यक्त की। तब तक वे उनके बारे में अनभिज्ञ थीं।

जिला श्रम आयुक्त जैसे कार्यालयों में संवेदनशीलता की कमी के बारे में सभी जानते हैं, इसलिये उसे यहाँ दोहराने की जरुरत नहीं । ऐसे में एक अहम् सवाल उठता है कि इस तरह के श्रमिक व महिला विरोधी संस्थान क्या महिलाओं की कुछ भी सहायता कर सकते हैं? आमतौर पर श्रमिक विवादों से संबंधित वकील सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों के बारे में जानकारी ही नहीं रखते । 'सहेली' के सुझावों के बावजूद,सुशीला का वकील इन दिशानिर्देशों को सृजनात्मक रुप से प्रस्तुत कर, इस तथाकथित श्रम विवाद में उनका इस्तेमाल नहीं कर पाया। श्रम न्यायालय के न्यायाधीश भी सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय के बारे में नहीं जानते थे। और न ही वे ऐसे मुद्दों को महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में देखने को तैयार थे। ऐसी परिस्थितियों में महिला संगठनों की भूमिका को जल्द ही परिभाषित करना बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक है।

सुशीला की गाथा अभी खत्म नहीं हुई । न्याय पाने के लिए वह अभी भी संघर्षरत है। ■

# महेश्वर बांध संघर्ष
# महिलायें फिर एक बार मोर्चे पर

राज्य प्रशासन और निजी पूँजी गठबन्धन द्वारा किए गए दमन के बावजूद महेश्वर बांध पर जनता की घेराबंदी जारी है। औरतों की अगुआई में हज़ारों लोग अप्रैल-जून की तीखी धूप और मानसून की बारिशों को झेलते हुए अपने घरों, खेतों और गांवों को बचाने के लिए सड़कों पर आ गए। खरगोन जिले के गांव जालूद में नर्मदा पर बन रहा महेश्वर हाइड्रो -इलेक्ट्रिक प्रोजेक्ट निजी क्षेत्र में देश की पहली मुख्य जल-विद्युत् योजना है। मध्य प्रदेश सरकार ने इस बांध निर्माण और 400 मेगावाट बिजली बनाने का काम एक निजी कम्पनी एस्. कुमार को सौंपा है जिसकी 51 प्रतिशत हिस्सा पूँजी है। बाकी हिस्सा पेसिफीक जैनरेशन कंपनी, सीमन्स,एशिया ब्राऊन बवेरी और एक जर्मन बैंक का होगा। पूरी लागत का 76 प्रतिशत विदेशी स्त्रोतों से आयेगा।

इस पूरे प्रोजेक्ट में 61 गांवों की उपजाऊ भूमि पानी में डूब जायेगी। नर्मदा के किनारों पर निमाड की नीची जमीन बेहद उपजाऊ है और इसे सिंचाई की सुविधाएं अच्छे से उपलब्ध हैं। खेती से साथ के जिलों से आनेवाले प्रवासी श्रमिकों को भी रोजगार मिलता हैं। पूरा क्षेत्र हज़ारों कामगारों, नाविकों, मछुंआरों , कारीगरों ,नदी किनारे पर तरबूजों और कद्दू की बाड़ियों में काम करनेवालों को रोजगार प्रदान करता है। उन 2200 परिवारों के इलावा जो इस बांध निर्माण से विस्थापित होंगे हजारों लोगों की, जिनका नर्मदा नदी से गत्यात्मक नाता रहा है, जीविका समाप्त हो जायेगी। इतने बड़े पैमाने पर विस्थापन के बावजूद, मार्च 1997 मे बनाई गई एक उच्चस्तरीय समिति ने पाया कि पर्यावरण और बन मंत्रालय द्वारा निर्धारित प्रतिबंधो के बावजूद, पुनर्स्थापन के लिए कोई योजना तैयार नहीं की गई है । इसके विपरीत बहुत ही कम मुआवजा देकर सरकार ने जबरदस्ती जमीन ले ली है।

इस क्षेत्र के लोग नर्मदा बचाव आंदोलन के झण्डे तले, इस प्रोजेक्ट के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। एक साल के संघर्ष के बाद, मध्य प्रदेश सरकार ने 30 जनवरी 1998 को एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार बांध, बिजली निर्माण और जमीन लेने से संबंधित सारे काम तब तक के लिए रोक दिए जाएं , जब तक की इससे जुड़ी लागत के फ़ायदे और विकल्पों के बारे में व्यापक पुर्नरीक्षण न किया जाय। लेकिन मार्च 1998 में ही एस्. कुमार्स ने मानसून की वजह से खाईयों मे दरारें पड़ने से रोकने के लिए दीवार बनाने के बहाने से चोरी छिपे बांध पर काम फ़िर से शुरू किया। निर्माण कार्य 1500 पुलिसकर्मियों की सुरक्षा व्यवस्था में और बांध के क्षेत्र में निषेधाज्ञा जारी कर के किया गया ताकि विरोध के लिये लोग इकट्ठा न हो सकें।

22 अप्रैल को कई हजार गांव के लोगों ने लाठी चार्ज सहते हुए और जेल जाकर महेश्वर बांध पर कब्जा कर लिया। महिलाओं ने शांतिपूर्ण तरीके से सड़कों पर लेटकर मानवशृंखला बनाकर बांध निर्माण के लिए समान ले जाते हुए ट्रकों को रोका। इस प्रक्रिया में उनके साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया। राष्ट्रीय अखबारों ने गांव के लोगों, विशेषकर महिलाओं पर हुए पुलिस अत्याचारों की खबरें दीं। नर्मदा बचाव आंदोलन को समर्थन दिए जाने के लिए 'सहेली' को अपील की गई । दिल्ली में अन्य महिला संगठनों और प्रगतिशील संगठनों की मदद से घटना की सच्चाई जानने के लिए एक स्वतंत्र, निष्पक्ष जाँच-दल बनाया गया।

पांच सदस्यीय दल ने प्रभावित गांवों का दौरा किया और विस्थापितों, ग्रामीणों और अधिकारियों से बातचीत की। दल ने पाया कि जालूद गांव जो सबसे पहले पानी में डूबेगा, उसमें पुलिस की भयभीत करने वाली उपस्थिति, ग्रामीणों के रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित कर रही है। उनके रोजमर्रा के क्रियाकलाप रुक गये हैं क्योंकि पुलिस की घेराबंदी की वजह से मंदिरों, सब्जियों के खेतों ,पशुओं की चारागाह इत्यादि पर जाना मुश्किल हो गया है। इसके अलावा बांध पर बारुद के विस्फोटों की वजह से जालूद में घर टूट गए हैं। लेपा में लोग अपने घरों के बाहर सोते हैं , क्योंकि विस्फोटों की वजह से मकान टूट सकते हैं। दल ने यह भी पाया की ग्रामीणों को कई प्रकार की गलत जानकारी दी जा रही है ताकि उन्हें सही बात का पता न चल सके। उदाहरण के लिए, मध्यप्रदेश बिजली बोर्ड ने जालूद में केवल 190 परिवारों के प्रभावित होने की जानकारी दी है जबकि प्रोजेक्ट के नक्शे के अनुसार 285 परिवार प्रभावित होंगे। इसी प्रकार, 1982 में नर्मदा घाटी विकास निगम द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार जलमग्न होने का स्तर मध्यप्रदेश बिजली बोर्ड के बताए स्तर से नीचा होगा। किसी भी स्थिति में पानी के अधिकतम स्तर को जानना बेहद जरुरी है क्योंकि यह जीवन और संपत्ति को काफी नुकसान पहुंचा सकता है।

जाँचदल उन घायल औरतों से भी मिला जो 22-23 अप्रैल को पुलिस बर्बरता का शिकार हुई थीं। इन औरतों को लाठियों से पीटा गया था,उनके कपड़े फाड़ दिये गये और पुलिस और ब्लैक कमाण्डो ने इनके साथ दुर्व्यवहार किया । उन्हें डराया,''यदि तुम अपनी 'इज्जत' बचाना चाहती हो तो सीधे घर चली जाओ।' मेडिकल कर्मचारियों ने भी पुष्टि की कि ये चोटें गिरने या धक्कामुक्की से ही नहीं आई हैं (जैसा कि प्रशासन का दावा था।) बल्कि लाठियों और तेज धार के औजारों के प्रहारों से आई है। साइट इंजीनियर ने दल को बताया कि जो दीवार बनाई जा रही थी वह पावर हाऊस का हिस्सा थी, यानि कि बांध का हिस्सा थी। इसका अर्थ यह हुआ कि 30 जनवरी के सरकारी आदेश का खुले तौर पर उल्लंघन हुआ था। प्रशासन का एस्. कुमार्स के पक्ष में पक्षपातपूर्ण रवैया एस्.डी.एम्. के साथ हुए साक्षात्कार में खुलकर सामने आया। एस्.डी.एम्. ने जोर देकर कहा कि बांध के क्षेत्र में निर्माण कार्य केवल एक 'सुरक्षा दीवार' बनाने के लिए है जिसे बाद में तोड़ दिया जाएगा।

जाँच दल ने तथ्यों के आधार पर राज्य प्रशासन और निजी पूँजी के बीच जनता के हितों के खिलाफ हुई मिलीभगत का संकेत दिया। दल ने सिफारिश की कि बांध पर हो रहे काम को तुरंत तब तक के लिये रोक दिया जाए जब तक कि पुर्नरीक्षण के लिए एक टास्क फोर्स की रपट,जो कि 30 जनवरी से आनी बाकी है, न आ जाए। इसके बाद से राष्ट्रीय मानवाधिकार कमीशन और राष्ट्रीय महिला आयोग , इस क्षेत्र का दौरा कर चुके हैं और उन्होंने भी इन्हीं मांगो को दोहराया है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने घायल औरतों को मुआवजा देने और 22-23 अप्रैल की घटना की न्यायिक जाँच कराने की भी सिफारिश की है।

17 जून को मुख्य मंत्री दिग्विजय सिंह, एस्.कुमार्स के बांध निर्माता विकास कासलीवाल, प्रशासन अधिकारियों और नर्मदा बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने मण्डलेश्वर में एक सार्वजनिक बहस में हिस्सा लिया। पुनर्स्थापन के दावे के बावजूद मुख्य मंत्री और कंपनी अधिकारी लागत, फायदों और विस्थापन और अन्य आर्थिक व सांस्कृतिक मुद्दों से जुड़े प्रश्नों का जवाब न दे पाए। जुलाई में हुई टास्क फोर्स की बैठक में मुख्य मंत्री ने बांध के पुर्नरीक्षण के लिए टास्क फोर्स की अवधि बढ़ाने की घोषणा की और यह भी कहा कि नर्मदा सागर प्रोजेक्ट की वजह से जो क्षेत्र जलमग्न होंगे, उससे होने वाले प्रभावों का अनुमान लगाया जाए। महेश्वर के और नर्मदा घाटी में रहने वाले सभी लोगों के लिए संघर्ष ही एकमात्र रास्ता है जिसके माध्यम से वे 'विकास' के नाम पर बनने वाले बड़े बांधो और बिजली परियोजनाओं से होने वाले खतरों को आम जनता के सामने लाते रहेंगे, ताकि वास्तव में जनहित से जुड़ा विकास हो सके।

( नर्मदा समाचार तथा स्वतंत्र जांच दल की रिपोर्ट पर आधारित)

# नाभिकीय परीक्षण आक्रामकता की राजनीति

11 और 13 मई 1998 को भारत में और फिर 28 और 30 मई को पाकिस्तान में किए गए परमाणु-विस्फोटों का दोनों देशों में राष्ट्रीय स्तर पर जोर-शोर से स्वागत हुआ। भारत में आम माहौल ऐसे देशप्रेम के उन्माद से ग्रस्त था जो परमाणु बम को राष्ट्रीय गौरव के समरूप मान रहा था और इसे एक महान् वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय उपलब्धि के रूप में पेश कर रहा था। सौभाग्य से यह सुखानुभूति जल्द ही समाप्त हो गई। इसका श्रेय विरोध की आवाजों को जाता है जिन्होंने इस निर्णय की नैतिकता और तार्किकता के बारे में सवाल उठाए।

हमारा यह मानना है कि परमाणु शक्ति को किसी भी देश की ताकत समझना न केवल विनाशकारी शस्त्रों की दौड़ को बढ़ावा देगा बल्कि लोगों के जनजीवन पर भी गम्भीर प्रभाव डालेगा; क्यूंकि शिक्षा,रोजगार और अन्य सेवाओं पर हो रहे खर्चों को कम करके पहले से ही सीमित मात्रा में उपलब्ध पैसा और संसाधन परमाणु शस्त्र बनाने और उनके रखरखाव पर खर्च किये जाएंगे । इस सबका असर विशेष रुप से समाज के पहले से ही दबे वर्गो ,विशेष तौर पर महिलाओं पर, बहुत गम्भीर होगा क्यूंकि वैचारिक स्तर पर भी यह निर्णय हिंसा और आक्रामकता को बढ़ावा देता है और डर व असुरक्षा का माहौल बनाता है।

## परमाणु-विस्फोटों पर भाजपा सरकार की सफाई

मिली-जुली सरकार होने के बावजूद सत्ता में आने के कुछ हफ्तों बाद ही भाजपा सरकार ने परमाणु परीक्षण कर अपने परमाणु कार्यक्रम(अजेण्डा) को आगे बढ़ाने की भरपूर कोशिश की। सरकार का दावा था कि ये परीक्षण राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए जरूरी थे और बिगड़ते हुए सुरक्षा माहौल में इस प्रकार के परीक्षण के लिए वे मजबूर थे। परमाणु परीक्षणों के पक्षधरों का यह कहना है कि परमाणु हथियारों का होना किसी भी विदेशी (यानि कि पाकिस्तानी) आक्रमण के खतरे को कम करता है क्यूंकि इस ताकत से शत्रु देश को डराया जा सकता है। उनका कहना है कि यह हथियार आक्रमण करने के लिये नहीं है, बल्कि अपनी सुरक्षा के लिए हैं। परमाणु ताकत होने की सार्वजनिक घोषणा कर सरकार समझती है कि उसने सीमाओं से जुड़े प्रश्नों पर अपनी स्थिति और मुदृढ़ कर ली है।

पिछली सभी सरकारें–जिनमें कॉंग्रेस और संयुक्त मोर्चा शामिल है–बीते वर्षो में परमाणु शक्ति के विकास का समर्थन करती रहीं हैं। लेकिन उन्होंने अपने विवेकाधार का प्रयोग करते हुए 1974 के पोखरण विस्फोट के बाद कोई और परमाणु परीक्षण न करना तय किया, लेकिन भाजपा सरकार ने सत्ता में आते ही इस बारे में जल्दबाजी से निर्णय लिया ।

भाजपा-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ(रा.स्व.सं.)गठजोड़ ने हमेशा यही प्रचार किया है कि परमाणु शस्त्रों का विकास ताकत और मजबूती के लिए आवश्यक है । यह विचार उनकी पुरुषश्रेष्ठता की विचारधारा में सटीक बैठता है। हिंदू राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में , भाजपा / राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पाकिस्तान और कुछ हद तक चीन को मुख्य शत्रुओं के रूप में देखते हैं । इसलिए पाकिस्तान से आगे बढ़ना भी इस नीति का मुख्य हिस्सा है। भारतीय परमाणु विस्फोटों के बाद और पाकिस्तानी विस्फोटों से पहले का राष्ट्रीय उन्माद इस बात का सबूत है कि दोनों देशों की सरकारें इसी प्रकार की राजनीति को आगे बढ़ाने में लगी हैं।

इसके अलावा भाजपा सरकार इन परीक्षणों के माध्यम से राजनीतिक लाभ भी उठाना चाहती है जिससे सहयोगी दलों का समर्थन प्राप्त हो सके और विपक्ष को चुप कराया जा सके। इस उद्देश्य में उसे विस्फोटों के बाद के कुछ दिनों में सफलता भी मिली। लेकिन पाकिस्तान द्वारा सफलता पूर्वक परमाणु विस्फोट करने के बाद यह सहानुभूति जाती रही। और भाजपा नेतृत्व की सरकार पर फिर एक बार राजनैतिक अनिश्चितता छाने लगी।

## परमाणु शस्त्रों के निर्माण और उनके इस्तेमाल करने से जुड़े खतरे

सरकार द्वारा परमाणु के विनाशकारी परिणामों को नजरअंदाज किया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा का तर्क वास्तव में शत्रु देशों को परमाणु युद्ध के

संभाव्य खतरों से डराने पर आधारित है या फिर शत्रु द्वारा किये गये परमाणु हमले का उत्तर देने के लिए ऐसे ही हथियारों को इस्तेमाल करने की क्षमता हासिल करने के लिए है। अभी भारत के पास ऐसे किसी परमाणु हमले की संभावना का पता लगाने के लिए जरूरी उपकरण भी नहीं है। यदि ऐसे उपकरण या व्यवस्था उपलब्ध हो भी जाएं तो यह भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध निवारण का काम नही करेंगे क्यूंकि एक परमाणु प्रक्षेपास्त्र (missile)को एक देश से दूसरे देश को पहुंचाने का समय सिर्फ दो से तीन मिनट है जब कि अमेरिका और रूस जैसे परमाणु देशों के बीच यही समय लगभग तीस मिनट है। यह अंतराल शायद इतना मौका दे जिससे परमाणु हमले का पहले से पता लगाया जा सके और उसे रोक पाने की कुछ संभावना बन सके। लेकिन ऐसी कोई संभावना भारत और पाकिस्तान के पास नही होगी। बल्कि अगर कोई परमाणु बम पाकिस्तान के किसी शहर पर गिराया जाए तो भारतीय भी उसके प्रभाव से बच न सकेंगे। परमाणु विस्फोट के बाद होने वाली तेज बरसात और आँधी-तूफान आसानी से रेडियो किरणों को सीमा के पार पहुंचा देंगे क्यूंकि तेज हवा और बारिश जैसी प्राकृतिक ताकतें सीमाओं के बन्धन नहीं समझती।

## परमाणु हमले: अब और नहीं

हिरोशिमा- **6** अगस्त **1945**
सुबह **8.15** बजे
**1,40,000** लोग मारे गए

नागासाकी- **9** अगस्त **1945**
सुबह **11.02** बजे
**70,000** लोग मारे गए

भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों ने क्यूंकि अब परमाणु क्षमता हासिल कर ली है यह जान लेना जरुरी है कि परमाणु बम कितना और किस प्रकार का विनाश कर सकते है। परमाणु बम परंपरागत शस्त्रों से बेहतर तरीके से अपने लक्ष्य पर हमला करेगा, यह जरूरी नहीं है। वास्तव में परमाणु इन्धन के उपायोजन की क्षमता को देखते हुए वह परंपरागत अस्त्रों जैसे कि टी. एन्.टी.वाले केमिकल बम से परमाणु बम कम कार्यक्षम होगा।

इस वजह से परमाणु विस्फोट के बाद बेकार या अनुपयुक्त परमाणु ऊर्जा लक्ष्य के आसपास बड़े क्षेत्र में फैल जाती है और रेडियोधर्मिता का फैलाव बड़े पैमाने पर विनाश का कारण बनता है। जनजीवन वाले क्षेत्र में तो परमाणु विस्फोट अनर्थकारी सिद्ध हो सकते है। अनुमान है कि 15 किलो टन वाले छोटे बम को अगर 20,000 प्रति वर्ग मील के घनत्व वाले शहर पर गिराया जाए तो लगभग दो लाख लोगों के मरने की संभावना है। और एक लाख प्रतिवर्ग मील वाले घनत्व वाले शहर में 7-8 लाख लोगों के मरने की संभावना है। भारत ने जिस ताप नाभिकीय यंत्र ( Thermo-Nuclear Device) का परीक्षण हाल ही में किया, अगर उसका इस्तेमाल किया जाय तो यह संख्या दस लाख तक हो सकती है। ये अनुमान मुंबई, कराची और इस उपमहाद्वीप के अन्य कई शहरों पर लागू होते हैं।

परमाणु विस्फोट के तात्कालिक प्रभावों में दो-तीन किलोमीटर के दायरे में लोगों का गंभीर रूप से जलना और मरना, पौधों और पशुधन का संपूर्ण विनाश तथा कई अन्य प्रकार के दुष्प्रभाव शामिल हैं। परमाणु विस्फोट के बाद बड़ी मात्रा में रेडियो किरणें निकलती हैं जो कि आनेवाले हजारों वर्षों के लिए मिट्टी, जमीन, पानी और हवा को प्रदूषित कर देंगी। मनुष्यों, जानवरों और पौधों की जननिक क्षमताएं विस्फोट से निकली विकिरणों के प्रभाव में आ जाती हैं और इस वजह से जो परिवर्तन आ जाते हैं उनके दूरगामी दुष्परिणाम आने वाली पीढ़ियों पर पड़ेंगे। मनुष्यों में इस वजह से कई प्रकार के कैन्सर हो सकते हैं। इससे प्रभावित महिलाओं के बच्चों में जन्म से ही कई प्रकार के दोष/शारीरिक विकार हो सकते हैं। युवा और बच्चों, जो इन विकिरणों के प्रभाव में आ जाते हैं, उनका विकास रुक जाता है और वे अनुर्वर( infertile) हो सकते हैं, अगर वे लम्बे समय तक जीते हैं। आज भी जहां पर परमाणु पदार्थ को संशोधित किया जाता है--चाहे परमाणु ऊर्जा या परमाणु अस्त्र बनाने के लिए – इनमें काम करनेवाले मजदूरों के स्वास्थ्य और जीवन को गंभीर खतरे हो सकते है। भारत में इस प्रकार के कई प्लाण्ट बंद भी किए जा चुके हैं।

## परमाणु विस्फोटों के अप्रत्यक्ष प्रभाव

परमाणु शस्त्रों की दौड़ में अब भारत की सक्रिय भागीदारी और उससे जुड़ी तकनीक और उसको लगातार बेहतर करने की जरुरत की वजह से इस क्षेत्र पर खर्चे बहुत अधिक बढ़ जाएंगे। जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय की अर्थशास्त्र की प्रोफेसर, डा. जयती घोष ने भाजपा सरकार द्वारा पेश किए गए बजट के आधार पर रक्षा संबंधी मामलों पर बढ़ने वाले खर्चों का हिसाब लगाया है। उनके अनुसार इस बजट में रक्षा क्षेत्र में 14 प्रतिशत की बढ़ौत्तरी हुई है । इसके अंदर 4038 करोड़ रुपये का राजस्व खर्चा और 1063 करोड़ का पूंजीगत खर्च शामिल है। ऐसे खर्चे, जिन्हें परिभाषित नहीं किया गया है, परंतु रक्षा विकास के कामों पर खर्च किए जा सकते है, के अलावा परमाणु कार्यक्रमों पर अधिक पैसा लगाने के प्रस्ताव हैं,जैसे कि अणु ऊर्जा के विभाग के व्यय 987 करोड़ रुपये से बढ़ा कर 1569 करोड़ रुपये (59 प्रतिशत की बढ़त) और अंतरिक्ष विभाग के व्यय 850 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 1381 करोड़ रुपये (62 प्रतिशत की बढ़त) कर दिये गये है। यदि

इन आंकड़ों की हम सरकारी व्यय के दूसरे आंकड़ों से तुलना करें तो स्थिति कुछ साफ नज़र आएगी। जैसे स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का खर्च 1998-99 के बजट में 3684 करोड़ रुपये रखा गया है जो कि रक्षा व्यय से काफी कम है। अंतरिक्ष व अणुशक्ति विभागों के खर्चे, स्वास्थ्य खर्चों में वृद्धि से पांच गुणा ज्यादा है , शिक्षा पर केंद्रीय सरकार के खर्चे से 52 गुणा ज्यादा है और ग्रामीण रोजगार और गरीबी निवारण कार्यक्रमों पर होने वाले खर्चों से 72 गुणा ज्यादा है। इन आंकड़ों को देखकर इस बात का संकेत मिलता है कि सरकार स्वास्थ्य ,शिक्षा और गरीबी निवारण संबंधित कार्यक्रमों को कितनी प्राथमिकता देती है।

परमाणु शक्ति बनने के कारण न केवल कल्याणकारी योजनाओं पर सरकारी खर्चा कम हो जायगा और परमाणु शस्त्रों को बनाने और परमाणु युद्ध या विस्फोट के कारण होने वाले विनाश से बचने के उपायों को विकसित करने पर सरकारी खर्चा बढ़ जाएगा, इस प्रकार की नीति का समाज के अनेक वर्गों, विशेष तौर पर महिलाओं, पर वैचारिक प्रभाव भी होगा। सुरक्षा और रक्षा पर केंद्रित कर परमाणु विस्फोटों को एक महान वैज्ञानिक उपलब्धि के रूप में पेश करना, वास्तव में राष्ट्रीय भावनाओं को भड़काने के लिए है और इस के फलस्वरुप उपमहाद्वीप में शस्त्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला है। यह प्रक्रिया शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में स्कूली किताबों, शिक्षण संस्थाओं और सांस्कृतिक स्तर पर व्यवस्थित रूप से घुसपैठ से जुड़ी हैं। मानव संसाधन विकास मन्त्री ने हाल ही में एक 'सांस्कृतिक नीति' की चर्चा की है। भाजपा के इतिहास को देखते हुए इस नीति का मुख्य उद्देश्य'हिन्दू' संस्कृति का गुणगान करना है। इस प्रकार के प्रचार का प्रभाव न केवल हिन्दू औरतों के लिए बल्कि दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों की औरतों के लिए भी चिन्ता का विषय है। देश की सुरक्षा का दावा जो कि भाजपा सरकार द्वारा परमाणु ताकत बनने का महत्वपूर्ण कारण बताया गया है, वास्तव में एक ऐसे सांस्कृतिक और वैचारिक माहौल पर आधारित है जो कि आक्रामक, हिंसात्मक,बदले की भावना से भरा हुआ और उग्र राष्ट्रीयता को बढ़ावा देने वाला है। इस वजह से न केवल शांति और सहनशीलता का माहौल पीछे पड़ गया है बल्कि इस वजह से समाज के पहले से ही दबे हुए और पिछड़े हुए लोगों में असुरक्षा और भय का माहौल बन गया है।

यानि की मुद्दा केवल वास्तव में परमाणु युद्ध होने का नहीं है,बल्कि ऐसे माहौल के बन जाने का है जो कि घृणा, दुश्मनी और जान और माल के नुकसान के डर, आतंकवादी या सम्प्रदायवादी हिंसा की वजह से होने वाली शारीरिक और मानसिक पीड़ा से भरा है। आक्रामकता और क्रूरता जैसे मूल्यों को आगे बढ़ाना, अपनी बात मनवाने के लिए हिंसा के इस्तेमाल की वैधता को बढ़ावा देता है।

औरतें, जो कि हमेशा से ही अदृश्य या प्रत्यक्ष हिंसा का शिकार रही हैं इस प्रकार की माहौल में और अधिक उत्पीड़न का सामना करेंगीं। हमने समान कानून संहिता की बहस के संदर्भ में यह बात कही है कि हिंसा के माहौल में औरतें अपने समुदाय के पुरुषों पर और अधिक निर्भर हो जाती हैं और इस प्रकार बिरादरी के दबाव उन पर और अधिक बढ़ जाते हैं।

## हम परमाणु शस्त्रीकरण का विरोध क्यों कर रहे हैं ?

परमाणु शक्ति और अस्त्रों का पूरा विरोध और भारत सरकार की ओर से इन हथियारों के इस्तेमाल न करने का पक्का प्रण और विश्वव्यापी परमाणु निःशस्त्रीकरण, यही 'सहेली' की मांग है। परमाणु शस्त्रों की खासियत यह है कि ये पृथ्वी पर हजारों वर्ष के लिए जनजीवन समाप्त करने की क्षमता रखते हैं और इसी वजह से हम इन शस्त्रों का विरोध कर रहे है ।

हमारे विचार में किसी भी देश का परमाणु शस्त्रीकरण करने का निर्णय गलत है। इसलिए केवल भारत और पाकिस्तान ही नहीं, चीन, फ्रान्स, रूस, इंग्लैण्ड और अमेरिका को भी परमाणु निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा बनना चाहिए और सक्रिय रूप से इन शस्त्रों को समाप्त करने के लिए कदम उठाने चाहिएं। विभिन्न देशों में इस आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए कि उसके पास परमाणु शक्ति है या नही। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सीटीबीटी तथा *फिसाईल मटेरियल कटऑफ संधि* ( एफ.एम.सी.टी.) को लागू करने के लिए की जा रही पहलकदमियों को वैश्विक स्तर पर नाभिकीय निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा माना जा सकता है।

परमाणु परीक्षणों के बाद आक्रामकता, हिंसा और शत्रुता की संस्कृति को बढ़ावा मिला है। राजनैतिक नेता और आम लोग पड़ौसी देशों के साथ युद्ध के बारे में ज्यादा बात कर रहे थे और सहयोग और शांतिवार्ता के बारे में कम। साफ है कि परमाणुकरण की प्रक्रिया असुरक्षा और डर बढ़ा देती है। यह इस प्रकार के भ्रम का प्रचार करती है कि आर्थिक दबाव व सामाजिक समस्याओं के हल हिंसात्मक शस्त्रों को इकट्ठा करने से मिल सकते है। अपने कथित शत्रुओं के खिलाफ हिंसा इस्तेमाल करने की सक्षमता बढ़ाना किसी स्तर पर शत्रुओं की स्त्रियों के खिलाफ हिंसा को न्यायसंगत बना देता है। कुल मिला कर ऐसा प्रतीत होता है कि परमाणु बम परीक्षण की वजह से सरकार ने हमें शान्ति और सौहार्द के रास्ते से पीछे कर दिया है।

हमारी चिन्ता इस बात से भी है कि रक्षा के बढ़ते हुए खर्चे की वजह से सामाजिक कार्यक्रमों और स्वास्थ्य इत्यादि पर खर्चे कम होते जा रहे हैं । स्वास्थ्य क्षेत्र को पहले ही राष्ट्रीय बजट में कम हिस्सा मिलता रहा है। समाज के गरीब वर्गों को सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा प्रदान की स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं बहुत ही असंतोषजनक है। स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्तता का प्रभाव पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों पर अधिक पड़ता है। समाज कल्याण,स्वास्थ्य, शिक्षा और

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का खत्म होते जाना, लाखों लोगों के जीवन पर असर डाल रहा है। यह भविष्य के लिए बहुत ही निराशाजनक है। वित्त मंत्री द्वारा पेश किया गया बजट, भाजपा सरकार को समाज के निम्न वर्गों के प्रति उदासीनता का संकेत है।

> अंतरिक्ष व अणुशक्ति विभागों के खर्चे में वृद्धि स्वास्थ्य खर्चों पर वृद्धि से पांच गुणा ज्यादा है। शिक्षा पर केन्द्रीय सरकार के खर्चे से **52** प्रतिशत ज्यादा है । ग्रामीण रोज़गार और गरीबी निवारण कार्यक्रमों पर होनेवाले खर्चे से **72** प्रतिशत ज्यादा है।

परमाणु परीक्षण के माध्यम से भाजपा/आर.एस्.एस्. गठबंधन ने अपने हमले का केन्द्र पाकिस्तान को बनाया है। यह उनकी हिंदू मूलभूतवादी राजनीति के अनुरुप है। इस प्रकार की राजनीति ने मुस्लिम विरोधी उन्माद को बढ़ावा दिया है जिससे न केवल सीमाओं पर तनाव बढ़ गया है बल्कि इसकी वजह से लोकविरोधी प्रक्रियाएं भी तेज हुई है। पाकिस्तान सरकार ने परमाणु विस्फोटों के बाद आपात्कालीन स्थिति की घोषणा कर दी। इस घोषणा के बाद देश में इस्लामीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया गया। इस तरह के सरकारी निर्णयों के, विशेष रूप से इस्लामीकरण जैसी प्रक्रियाओं का औरतों की स्थिति पर ,सरकारी आश्वासनों के बावजूद गंभीर असर हो सकते है।

हालांकि भारत में सरकार के द्वारा इस प्रकार के कदम नहीं उठाए गए हैं, लेकिन पाकिस्तान विरोधी (जो कि वास्तव में मुस्लिम विरोधी है) भावनाओं को भड़काने से अल्पसंख्यक वर्गो में असुरक्षा की भावना बढ़ी है।

## हम अपना विरोध प्रकट करने के लिए क्या कर रहे हैं ?

परमाणु परीक्षण के विरोध में पहली आवाज सार्वजनिक तौर से 16 मई 1998 को उठाई गई जब पर्यावरण, मानव अधिकार, महिला अधिकार, विकास, शांति इत्यादि अनेक क्षेत्रों से जुड़े बहुत सारे बुद्धिजीवी, पत्रकार और कार्यकर्ता दिल्ली में आई.टी.ओ. के पास जमा हुए और उन्होंने अपने विरोध के प्रदर्शन करते हुए मण्डी हाऊस तक पैदल मार्च किया । इस विरोध के बाद दो ग्रुप बने जिनमें अनेक व्यक्ति और विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधि शामिल हैं। हम इन दोनों समूहों की गतिविधियों में सक्रिय तौर पर हिस्सा ले रहे हैं। परमाणु बम विरोधी आंदोलन, दिल्ली के विभिन्न हिस्सों में हर शुक्रवार को शांतिप्रदर्शन आयोजित करता रहा है। जिनका उद्देश्य न केवल सरकार के निर्णय के विरुद्ध विरोध प्रकट करना है बल्कि लोगों से बातचीत कर उन्हें परमाणु विस्फोटों के खतरों से अवगत कराना भी है। दूसरे समूह, भारत में परमाणु निःशस्त्रीकरण के लिए आंदोलन (MIND) ने शांति का संदेश पहुंचाने के लिए कई सम्मेलन किए। 6 अगस्त 1998 को, हिरोशिमा में 1945 में फेंके गए एटम बम की याद में एक रैली आयोजित की गई जिसमें 5000 लोगों ने हिस्सा लिया। यह दोनों समूह आगे भी जन-सभाओं और पर्चों के माध्यम से शांति के संदेश का प्रचार करने का अभियान जारी रखेंगे।

हम पूरे भारत, पाकिस्तान और सारे विश्व में इसी प्रकार सोचने वाले लोगों के साथ जुड़ने, जानकारी बांटने और विश्व परमाणु निःशस्त्रीकरण के अभियान को आगे बढ़ाने में एक दूसरे की मदद करने की आशा करते हैं। इन समूहों की गतिविधियों के माध्यम से भी हम भारत और पाकिस्तान में हुए परमाणु परीक्षणों का विरोध करते रहे हैं। ■

प्रिय मित्र,

भविष्य के अंकों के सहायता हेतु और पत्रिका के मुद्रण और डाकखर्च चलाते रहने के लिए हम चाहेंगे कि आप पत्रिका के लिए वार्षिक सहयोग राशि रूपये **35** भेजने का कष्ट करें।

आप के पत्रों, प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हमें इन्तजार रहेगा।

अपनी प्रतिक्रिया अवश्य लिखें।

न्यूजलेटर में छपी सामग्री को आप पुनर्मुद्रित कर सकते हैं। मगर इसका श्रेय 'सहेली' को देना न भूलें। सम्भव हो तो एक कापी भेजें। हमें इस बात की खुशी होगी।

नाम _____

संस्था _____

पता _____

फोन _____

भुगतान कैश,मनीऑर्डर,डिमांड ड्राफ्ट या चेक के जरिये करें। चेक तथा ड्राफ्ट *सहेली वूमन्स रिसोर्स सेन्टर* **(Saheli Women's Resource Centre)** के नाम से भेजें।

# क्विनाक्रिन नसबन्दी विरोधी अभियान

## प्रतिबन्ध कहां तक प्रभावी होगा?

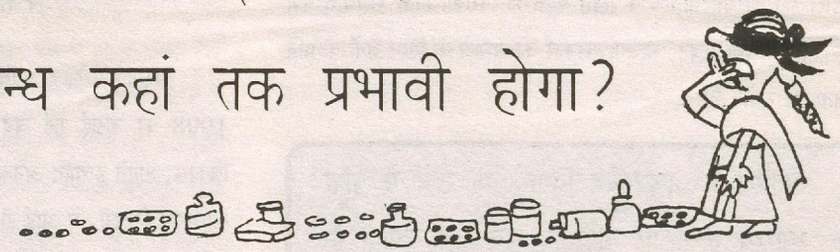

महिला नसबन्दी के लिए क्विनाक्रिन के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने और सम्बन्धित डाक्टरों व क्विनाक्रिन गोली के वितरकों के विरुद्ध उचित कार्रवाई की मांग करते हुए एक लोकहित याचिका दायर की गयी थी। मार्च '98 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस याचिका पर अपना फ़ैसला सुनाया जो दिसम्बर 1998 में भारत के औषधि नियंत्रक (Drug Controller of India) के संदेश (विवरण के लिए'सहेली' का मार्च 1998 का अंक देखें) का समर्थन करता है। महिला नसबन्दी के लिए क्विनाक्रिन गोली के आयात, उत्पादन,वितरण और विक्री को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया है। इस बात की अधिसूचना अगस्त 1998 के सरकारी गजट में छप भी चुकी है। खेद की बात है कि जो लोग इस खतरनाक औषधि का उपयोग कर हजारों महिलाओं के जीवन से खिलवाड़ कर रहे थे, उन्हें छोड़ दिया गया है। उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नही की गई।

सरकार की जनसंख्या नियंत्रण की आक्रमणकारी नीतियों का विरोध हम पहले भी करते रहे है और आगे भी करते रहेंगे। लगभग एक वर्ष पहले हमने मांग उठायी थी कि औरतों की रासायनिक नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन के उपयोग पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगाया जाय और अवैध रुप से परीक्षण करने वालों के विरुद्ध सख्त कार्रवाई की जाए। उसी समय से हमारा क्विनाक्रिन नसबंदी विरोधी अभियान जारी है जिसने देश के अन्य हिस्सों में भी जोर पकड़ा।

क्विनाक्रिन नसबंदी व उसके प्रभाव

चावल के छोटे दाने के आकार में क्विनाक्रिन की गोली, पिचकारी नुमा निवेशक के जरिए, गर्भाशय में निवेश की जाती है। इस तात्कालिक तरीके के लिए अस्पताल में भर्ती होने की आवश्यकता नही होती । बाहरी रोगी(Out patient) प्रक्रिया यानि कि सामान्य जाँच के दौरान इसका निवेश किया जा सकता है। चिंता की बात यह है कि अभी तक क्विनाक्रिन नसबंदी की निरापदता प्रमाणित नही हो पाई है। जैसा कि हम पहले भी बता चुके है , इस उपाय के नैतिक व वैज्ञानिक परीक्षण भी पूरी तरह नहीं किए गए हैं। उपलब्ध जानकारी के अनुसार , इसका उपयोग औरतों के स्वास्थ्य को खतरे में डाल सकता है, जैसे नली में गर्भ ठहरने (Ectopic pregnancy), कैंसर को प्रेरित करने की सम्भावना इत्यादि। नसबन्दी के पारंपारिक उपायों की तुलना में ,अभी तक इस उपाय के अल्प कालिक व दीर्घ कालिक प्रभाव भी प्रमाणित नही हो पाये हैं। आशंका है कि इस उपाय की विफलता का सम्बन्ध जेनेटिक (genetic) असामान्यताओं से भी हो सकता है जिसका नतीजा मन्दबुद्धि का बच्चा पैदा होना है।

इस सब के बावजूद इस उपाय के प्रोत्साहक इसको देश भर में बड़े पैमाने पर लागू करने के अभियान चला रहे हैं। उनका तर्क है कि यह एक बहुत ही सरल और सस्ता उपाय है। और व्यापक पैमाने पर नसबन्दी करने के लिए, जनसंख्या नियंत्रण के समर्थक, इस उपाय को एक सहज हथियार के रुप में देख रहे हैं। औरतों के लिए यह उपाय जानलेवा भी हो सकता है, इस बात की उन्हें कोई चिंता नहीं।

ऐसी परिस्थितियों में, अवैध घोषित होने के बावजूद, क्विनाक्रिन नसबंदी के जारी रहने की आशंका को नकारा नही जा सकता। खासकर, दूरवर्ती इलाकों में, कानूनी प्रबन्धकों की नजरों से दूर, और पहले ही की तरह, पिछड़े इलाकों की औरतों को ही इस उपाय का निशाना बनाने की संभावना अधिक है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल में डाक्टर और गैर-सरकारी संस्थान अभी भी इस उपाय का व्यापक रुप से इस्तेमाल कर रहे हैं। हो सकता है कि अन्य राज्यों में भी यह पद्धति जारी हो। इस बारे में पता लगाना जरुरी है। हमारा अनुरोध है कि यदि आपको इस उपयोग के बारे में कुछ जानकारी हो या पता लगे तो अपने इलाके के औषधि नियंत्रक को पत्र के जरिये तुरन्त सूचित करे और इस पत्र की प्रति 'सहेली' को भी भेजें।

हमें चिंता इस बात की है कि औरतों को पर्याप्त व उचित जानकारी दिए बिना क्विनाक्रिन नसबंदी के लिए निशाना बनाया जा सकता है। सरकारी अस्पताल या प्राइवेट क्लिनिक या औषधालय के डाक्टर, दाई या स्वास्थ्यकर्मी क्विनाक्रिन नसबंदी को सस्ता उपाय बताकर या उसे निःशुल्क देकर प्रोत्साहित कर सकते है। यह भी संभावना है कि वे औरतों को कापर-टी और क्विनाक्रिन

यदि आपको संदेह है कि आपकी ,या किसी अन्य महिला की जो आपके सम्पर्क में आयी हो या आपकी किसी सखी अथवा रिश्तेदार महिला की अज्ञानतापूर्वक क्विनाक्रिन नसबंदी की गई हो तो आप नीचे दिए गए दो तरह की भिन्न स्थितियों के प्रश्नों का उत्तर देकर जान पाएंगी कि आपका संदेह सही है या नही।

नसबंदी के तरीकों का फर्क भी न बताए कि जहां कापर-टी एक अस्थायी व प्रत्यावर्ती(reversible )तरीका है वही क्विनाक्रिन एक स्थायी और अप्रत्यावर्ती (irreversible ) तरीका है । इसको मद्देनजर रखते हुए हमने सोचा कि क्विनाक्रिन निवेश/नसबन्दी का पता लगाने के लिए कुछ जानकारी अपनी बहनों के साथ बॉटी जाय।

नीचे दिए प्रश्नों के अधिकांश उत्तर यदि सकारात्मक हैं तो हो सकता है कि पारम्परिक ट्यूबेकटामी(अण्ड नलियों को बन्द करने) या लैपरोस्कोपिक(दूरबीन द्वारा) ट्यूबेक्टॉमी या परिवार नियोजन के 'आपरेशन' के बजाय आपकी क्विनाक्रिन नसबन्दी की गई हो।

1- क्या आप किसी डाक्टर/नर्स/दाई/स्वास्थ्यकर्मी के पास पारम्परिक या लैपरोस्कोपिक ट्यूबेक्टॉमी या परिवार नियोजन के 'आपरेशन'के लिए गई थीं ? _____ हां/नही

2- क्या आपकी नसबन्दी बिना आपरेशन के की गई थी ? _____ हां/नही

3- क्या नसबन्दी बेहोश किये बिना की गई थी ? _____ हां/नही

4- क्या नसबन्दी चीरा दिये बिना की गई थी? _____ हां/नही

5- क्या नसबन्दी बाहरी रोगी प्रक्रिया में की गई थी ? _____ हां/नही

6- क्या योनि में कुछ निवेश किया गया था ? _____ हां/नही

और क्या यह निवेश 6-8 सप्ताह बाद दोहराया गया था? _____ हां/नही

7- निवेशन के तुरन्त बाद क्या आपको पीले स्राव या दर्द की शिकायत हुई थी ? _____ हां/नही

8- क्या यह उपचार आपको निःशुल्क दिया गया था ? _____ हां/नही

---

नीचे दिये गये प्रश्नों के अधिकांश उत्तर यदि नकारात्मक है तो हो सकता है कि कापर-टी के बजाय आपकी क्विनाक्रिन नसबन्दी की गई हो।

1- क्या आप किसी डाक्टर/नर्स/दाई/स्वास्थ्यकर्मी के पास पारम्परिक या लैपरोस्कोपिक ट्यूबेक्टॉमी या परिवार नियोजन के 'आपरेशन' के लिए गई थीं ? _____ हां/नही

२- निवेशन से पहले क्या आपको कापर-टी उसके निवेशक सहित दिखाई गई थी ? _____ हां/नही

३- क्या आप योनि के अन्दर नायलॉन के धागे को छू सकती है ? _____ हां/नही

४- क्या आपको बताया गया कि कापर-टी बदलवाने के लिए ३-५ वर्षो के बाद आना ? _____ हां/नही

५- क्या आपको नसबन्दी के लिए नई औषधि के बारे में बताया गया ? _____ हां/नही

६- क्या इस उपाय के लिए आप से कुछ पैसे लिए गए ?_____ हां/नही

---

अपने पड़ोस की महिलाओं के साथ इस विषय पर बात-चीत करें और पता लगाएं। हो सकता है कि आपकी कुछ सहेलियों की , बिना उनकी जानकारी के, क्विनाक्रिन नसबन्दी की गई हो। अपने संदेह की पुष्टि के लिए दूसरे डाक्टर/नर्स/दाई/स्वास्थ्यकर्मी जिससे यह उपचार न करवाया हो, को दिखाएं। प्रत्येक राज्य के राजधानी में औषधि नियंत्रक का दफ्तर है। क्विनाक्रिन के अवैध उपयोग के बारे में उन्हें सूचित किया जाना चाहिये। *क्विनाक्रिन नसबंदी के प्रयोगकर्ता एक गैरकानूनी तरीके को जारी रखने के अपराधी हैं और उनका यह अपराध दंडनीय है। यदि आप किसी ऐसे प्रयोगकर्ता के बारे में जानते है तो आप हमे पूरे ब्यौरे के साथ लिखें। उसे हम दिल्ली स्थित भारत के औषधि नियंत्रक के पास उचित कार्रवाई हेतु भेजेंगे।*

गर्भ निरोधक और नसबंदी के कई अन्य उपाय भारत में उपलब्ध हैं जो अधिक सुरक्षित व प्रभावी हैं। उनमें से अधिकतर उपाय निःशुल्क प्राप्त किये जा सकते हैं।

स्वयं को, अपनी सहेलियों को और पड़ोसिनों को नसबंदी के इस अवैध उपाय का शिकार बनने से रोकिये।

# क्विनाक्रिन के खिलाफ अभियान

## विश्व जनसंख्या दिवस पर केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री के नाम खुला पत्र

आदरणीय श्री दलित ऐजिमलि

निवेदन है कि हम-सहेली की ओर से 11 जुलाई 1998 , विश्व जनसंख्या दिवस के अवसर पर आपका ध्यान देश में प्रचलित अनैतिक चिकित्सा पद्धतियों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। सहेली एक स्वायत्त महिला संगठन है जो पिछले 17 साल से महिला स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर कार्यरत है। हमारे देश की हजारों महिलाएं - खासकर गरीब व हाशिये पर रहने वाली - इन अनैतिक चिकित्सा पद्धतियों की शिकार बनी हैं।

एमरजेंसी के दौरान जबरदस्ती से की गई पुरुष नसबंदी के परिणाम को देखते हुए सभी पदोचित सरकारों ने अपनी आक्रमणकारी जनसंख्या नीति को महिलाओं पर केंद्रित किया। उन कार्यक्रमों के अंतर्गत महिलाओं पर जबरदस्ती की गई, उन पर घातक गर्भनिरोधक थोपे गए । और तो और वे गर्भनिरोधक शोध की अनैतिकता का भी शिकार हुई।

पिछले वर्ष, 11 जुलाई 1997 के विश्व जनसंख्या दिवस के अवसर पर सहेली ने ''क्विनाक्रिनः औरतो की रासायनिक नसबंदी की घिनौनी कहानी'' नामक एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें क्विनाक्रिन नसबंदी के इतिहास और महिलाओं पर उसके दुरुपयोग का पूर्ण विवरण दिया गया। महिला नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन गोली का उपयोग विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रतिबंधित है। इस पद्धति के असुरक्षित ,अप्रभावकारी व जानलेवा प्रमाणों को देखते हुए इन्डियन काउंसिल आफ मेडिकल रिसर्च( आय.सी.एम.आर)ने अपने परीक्षण बीच में ही छोड़ दिए। औषधि नियंत्रक ने आय.सी.एम.आर. के अलावा और किसी संस्था या व्यक्ति को परीक्षणों या नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन गोली के उत्पादन व आयात की स्वीकृति नहीं दी। इसके बावजूद लगभग दो दशकों से क्विनाक्रिन नसबंदी के समर्थक न केवल खुले आम इस पद्धति का प्रसार करते आ रहे है बल्कि अवैध रूप से गोलियों का आयात कर उसके परीक्षण भी कर रहे हैं। और इस तरह हजारों महिलाओं के जीवन व स्वास्थ्य को खतरे के घेरे में डाल दिया है। इसके अलावा इन परीक्षणों में जानकारी पर आधारित सहमति और परीक्षणों के बाद नियमित जाँच पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । ये अवैध परीक्षण निजी चिकित्सकों, गैरसरकारी संस्थाओं और सरकारी अस्पतालों के डाक्टरों द्वारा किए जा रहे है। औषधि नियंत्रक के पास डा.जे.के.जैन ( जैन मेडिकल सेंटर, दिल्ली ) व अन्य डाक्टरों -बी. मल्लिक(कलकत्ता),एस.भतेजा व पी.किनी( बंगलोर ),ए.सरीन(पटियाला ) और डा. एम. सूद(दिल्ली) की इन परीक्षणों में भागीदारी के पूर्ण जानकारी और प्रमाण उपलब्ध है। डा. जे. के.जैन भारत में क्विनाक्रिन गोली के मुख्य वितरक हैं।

गत वर्ष, महिला व स्वास्थ्य संघटनों ने क्विनाक्रिन नसबंदी के विरोध में देश भर में प्रचार किया । फलस्वरुप, औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड के सुझाव पर औषधि नियंत्रक ने रासायनिक नसबंदी के लिए क्विनाक्रिन के आयात,उत्पादन,वितरण व बिक्री पर ड्रग्ज एण्ड कॉजमेटिक एक्ट प्रावधानों 10 ए व 26 ए के तहत प्रतिबंध लगा दिया। और सर्वोच्च न्यायालय ने 16 मार्च 1998 को इस प्रतिबंध को अनुमोदित किया। परंतु यह प्रतिबंध हो चुके अवैध परीक्षणों को घेरे में नही लेगा। और तो और परीक्षकों या वितरकों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करने के लिए औषधि नियंत्रक अपने आपको बंधा महसूस करते है। इस तरह अवैध व अनैतिक परीक्षणों से जुड़े लोग खुले आम घूम रहे है, जबकि महिलाएं इस प्रयोग के परिणामों दर्द, बिगड़ी रक्तस्राव की स्थिति व इससे उत्पन्न अन्य समस्याओं को भोग रही है। प्रक्रिया के असफल होने से अनचाहा गर्भ ठहरने की और शारीरिक परीक्षणों के बाद नियमित जाँच के अभाव की स्थितियों से जूझ रही हैं।

आदरणीय मंत्रीजी, एक साल पहले सहेली ने आपकी पूर्वाधिकारी माननीय रेणुका चौधरी जी को देशभर में किए जा रहे क्विनाक्रिन नसबंदी परीक्षणों से संबंधित नैतिक व कानूनी उल्लंघनों से अवगत कराया था। परंतु इस घातक पद्धति के कट्टर समर्थकों के खिलाफ कोई कार्रवाई शुरू नहो की गई है। परिणामस्वरुप , वे बेहयाई से अपना कार्य आगे चला रहे है । अमरीका के डा. एल्टन केस्सल क्विनाक्रिन के मुख्य प्रस्तावकों में से है और डा. जैन के सहयोगी है। भारत में क्विनाक्रिन पर प्रतिबंध लगने पर उनकी प्रतिक्रिया ध्यान देने योग्य है-''क्विनाक्रिन का भविष्य ग्रामीण दाईयों के हाथ में होगा। वे इतनी बिखरी हुई हैं कि सरकार के लिए रोक लगाना बहुत ही कठिन होगा।''(वॉल स्ट्रीट जर्नल 19 जून 1998).

क्विनाक्रिन नसबंदी का मामला अपने आप में अकेला मामला नहीं है। पिछले दो दशकों में अनैतिक शारीरिक परीक्षणों और गंभीर व घातक चिकित्सा पद्धतियों के अनेक उदाहरण मिलते रहे। नारप्लांट, नेट इन इत्यादि घातक गर्भ निरोधकों पर किए गए परीक्षणों में जानकारी-आधारित सहमति की नैतिकता के उल्लंघन के लिए आय. सी.एम.आर. स्वयं दोषी पाया गया। और हाल ही का एक उदाहरण है इन्स्टिटयूट आफ साइटोलाजि एण्ड प्रिवेंटिव आंकालाजि, दिल्ली (जिसका वित्तदाता आय.सी.एम. आर. है।) द्वारा महिलाओं में सरवाइकल डिसप्लासिया(cervical dysplasia) कैंसर पूर्व स्थिति के बारे में किया गया अध्ययन। इसी प्रकार सरकार द्वारा राशि-प्राप्त राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान ने जननक्षमता विरोधी टीके के परीक्षणों में जानकारी-आधारित सहमति और परीक्षणों के बाद नियमित जाँच की अवहेलना की।

इस तरह आज शारीरिक परीक्षणों तथा चिकित्सा प्रणाली के नैतिक निर्देशों का खुले आम उल्लंघन हो रहा है। यदि सरकार इस तरह की अनुचित चिकित्सा पद्धतियों की ओर से आँखें फेर लेगी तो अपराधियों के हौसले बुलन्द रहेंगे और महिलाएं सरकार की उदासीनता का मूल्य चुकाती रहेंगी। आपने अपने कार्यकाल के सौ दिन पूरे कर लिए है। हम जानना चाहते है कि इस दौरान ऐसे घोर उल्लंघनों को रोकने के लिए आपने क्या कदम उठाए है। स्वास्थ्य सेवाओं को निजीकरण कर सरकार अपनी कई जिम्मेदारियो से हाथ धों चुकी है। परंतु जनता के स्वास्थ्य को पूर्णतया त्याग देना न केवल समाज बल्कि देश के लिए भी घातक हो सकता है।

शारीरिक परीक्षणों की अनुमति देने व उनकी देख-रेख के लिए ऐसे तंत्र का विकास किया जाना चाहिए जो अनैतिकता व अवैध पद्धतियों को रोक सके, तथा गर्भ निरोधकों और घातक औषधियों की बिक्री व दुरुपयोग को भी नियंत्रित कर सके। हमारी मांग है कि अपराधियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जाए ताकि वे महिलाओं के जीवन व स्वास्थ्य से खिलवाड़ न कर सकें। महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता तभी नजर आएगी जब अपराधियों को कानून पालन के लिए बाध्य किया जाएगा। विश्व जनसंख्या दिवस पर हम मांग करते है कि आक्रमणकारी जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों और पद्धतियों को तुरंत समाप्त किया जाए ताकि उनसे पहुंचने वाली तकलीफों से महिलाओं को छुटकारा मिल सके।

– सहेली

# सहेली

न्यूज़लेटर

निजी वितरण हेतु सहयोग राशि 5 रूपये

**फरवरी 1999**


## बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड

## गर्भ निरोधक टीकों के विरूद्ध अभियान

## 'फ़ायर' फ़िल्म पर विवाद


**बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड**

~ क्या यह महिलाओं के प्रति बढ़ती हुई हिंसा का समाधान है? 2

**गर्भ निरोधक टीका के विरूद्ध अभियान** 6

**शिवसेना को गुस्सा क्यों आता है?**

~ 'फ़ायर' फ़िल्म पर विवाद 11



बुक पोस्ट

कृपया निम्नलिखित पते पर लौटा दें:

सहेली वुमेन्स रिसोर्स सेन्टर, दुकान नं. 105-108 के ऊपर, डिफेन्स कालोनी फ्लाइओवर मार्केट, नई दिल्ली 110024, टेलिफोन: 4616485 (बुध और शनिवार)

# बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड

## क्या यह महिलाओं के प्रति बढ़ती हुई हिंसा का समाधान है?

पिछली जुलाई से महिलाओं के प्रति बढ़ते हुए अत्याचारों को देखते हुए गृह मन्त्री, एल० के० आडवानी, बलात्कार करने वालों को मृत्युदण्ड देने के लिए बलात्कार सम्बन्धी कानून में संशोधन के लिए बल दे रहे थे। सरकार द्वारा इस प्रकार के संशोधन को संसद के शरदकालीन सत्र में पेश करने का प्रस्ताव भी था। भारतीय जनता पार्टी महिला मोर्चा ने भी इस प्रस्ताव की प्रशंसा करते हुए कहा कि इससे अपराधियों की हिम्मत टूटेगी और महिलाओं में सुरक्षा की भावना जागेगी सोशल वेलफेयर बोर्ड की प्रधान मृदुला सिन्हा का कहना है, "उन पुरुषों के मन में, जो कुछ भी करने से डरते नहीं है, डर पैदा करने के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसा कानून बने। इस प्रकार के बढ़ते हुए अपराध को रोकने के लिए केन्द्रीय सरकार ने यह उचित निदान सोचा है। छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार करने वालों को तो फांसी ही दे देनी चाहिए।" तथ्य भी यही बताते हैं कि महिलाओं के प्रति अत्याचार बढ़ते ही जा रहे हैं। प्रति 53 मिनट में एक बलात्कार होता है और प्रति सातवें मिनट में एक यौन उत्पीड़न की घटना घटती है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या मृत्युदण्ड का प्रावधान इस प्रकार के अपराधों को रोकने और न्याय दिलाने में मदद देगा? क्या महिलाओं के विरूद्ध बढ़ती हुई क्रूरता पर इस का असरदार प्रभाव पड़ेगा? या फिर इस प्रकार के सरकारी फ़ैसले मात्र सनसनी फैलाने वाले राजनैतिक हथकण्डें हैं। मृत्युदण्ड देने में तथाकथित तर्क यही है कि ये बलात्कारियों के लिए एक प्रभावी ***तरीका*** साबित होगा और इस प्रकार के प्रावधान से सतायी गई महिलाओं को ***समुचित न्याय*** मिल सकेगा। क्योंकि पीड़ित महिला को यह महसूस होगा कि जुर्म की भयावहता के अनुरूप अपराधी को सज़ा मिली है।

सबसे महत्वपूर्ण बात जिससे अपराधियों को वास्तव में अपराध करने से रोका जा सकता है वह है कि ***निश्चित*** और अनिवार्य रूप से दण्ड का मिलना, न कि दण्ड का सख्त और भयावह होना। भारत में बलात्कार के मामलों में सजा पाने वाले केवल 4 प्रतिशत रहे हैं, जैसा कि स्वंय गृह मंत्री, एल० के० आडवानी ने लोकसभा में बताया। वास्तव में यह संख्या और भी कम है। भंवरी देवी के बहुचर्चित मामले में, गूजर समूह ने सरकार द्वारा चलाए जा रहे महिला विकास कार्यक्रम की एक साथिन भंवरी देवी के साथ बलात्कार किया क्योंकि वह गूजर जाति में प्रचलित बाल-विवाह प्रथा का विरोध कर रही थी। किन्तु जयपुर न्यायालय में बलात्कारियों

**प्रति 53 मिनट में एक बलात्कार होता है और प्रति 7वें मिनट में एक यौन उत्पीड़न की घटना घटती है।**

को इस आधार पर रिहा कर दिया गया कि पूरे सबूत नहीं थे। इसी तरह हाल ही में जलगांव यौन शोषण मामले में मुख्य अभियुक्त ओंकार सकपाले को मुम्बई न्यायालय ने बरी कर दिया, जबकि एक विशेष न्यायालय द्वारा उसे ७ साल की सजा दी गई थी। इस मामले में भी न्यायालय ने वही घिसे पिटे कारण दिये है : जैसे ठोस सबूत न मिलना, महिला का अन्य पुरुषों के साथ शारीरिक सम्बन्ध होना और प्रथम सूचना रिपोर्ट देरी से दर्ज कराना। इस प्रकार के निर्णयों से अनेकों बलात्कारियों और युवा औरतों को आतंकित और ब्लैकमैल करने वालों को स्पष्ट रूप से यह संकेत दिए गए हैं कि इस प्रकार के घिनौने अपराध करने के बाद भी उनका कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

***दूसरी बात जो बलात्कार रोकने में सहायक हो सकती है वह है जल्द से जल्द दण्ड देना।*** कानून में बलात्कार के लिए निर्धारित दण्ड है, 10 साल तक की कैद और अधिक से अधिक आजीवन कारावास। तथापि केस दर्ज कराने और फैसला होने के बीच का लम्बा समय न्याय का तमाशा ही बना कर रख देता है। कभी-कभी तो फैसला होने में दस-बारह साल तक लग जाते हैं। इस बीच वह महिलाबलात्कार की भीषण यादों के साथ जीने को मजबूर हो जाती है। अपराध की सफल रोकथाम के लिए आवश्यकता है कि सुनिश्चित समय के भीतर मुकदमें की छानबीन हो और उसके बाद अपराधी को समुचित दण्डमिले। बलात्कार के मुकदमों की कार्यवाही में लगातार यह देखा गया है कि यह कार्यवाही बलात्कार की तरह ही दिल दहला देने वाली होती है। मौजूदा न्यायिक व्यवस्था के अनुसार एक

## बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड समस्या का हल नहीं है क्योंकि मुकदमे के दौरान उत्पीड़ित महिला को एक भयावह दौर से गुज़रना पड़ता है

'अच्छी' महिला वह है जो कि कुँवारी है और पवित्र चरित्र वाली है। जिस महिला के साथ बलात्कार होता है वह समाजिक मूल्यों के अनुरूप भी अपवित्र और दूषित करार दी जाती है।' 'सीता सावित्री के देश में' सरकार का बलात्कारियों को मृत्युदण्ड देना इस विश्वास पर आधारित है, कि बलात्कार मृत्यु से भी बढ़ कर है। यह सोच इस धारणा पर टिकी हुई है कि बलात्कार की शिकार औरत अपना सतीत्व खो देती है और इसलिए उसका समाज में कोई स्थान नहीं रह जाता है। "बर्बाद कर दी गई औरत" की धारणा को चुनौती देने की जरूरत है। बलात्कार महिलाओं के ऊपर किया जाने वाला अत्याचार है जिसका चरित्र, नैतिकता और व्यवहार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

***आपराधिक न्यायिक व्यवस्था भी बलात्कार की शिकार महिला के विरूद्ध है,* जहाँ उसके चरित्र और विश्वसनीयता की परीक्षा ली जाती है।** इसके अतिरिक्त वर्तमान बलात्कार कानून भी ना काफी है और कानून को लागू करने वालों का रवैया कई तरह से पितृसत्तात्मक है। जैसे कि :

1. बलात्कार की सीमित ***परिभाषा*** में केवल शारीरिक सम्पर्क को ही महत्व दिया गया है जबकि छड़ी, चाकू इत्यादि का इस्तेमाल उतना ही या और अधिक कष्टकारी हो सकता है।

2. महिला की ***सहमति*** का सवाल अभी भी सन्तोषजनक तरीके से तय नहीं हो पाया क्योंकि यह सिद्ध करना महिला पर निर्भर करता है कि सम्भोग में उसकी सहमति नहीं थी यानि कि प्रभावित पक्ष को सिद्ध करना पड़ता है कि उस पर अत्याचार किया गया और दोषी पक्ष निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसे दोषी सिद्ध न कर दिया जाए। हाँलाकि महिला संगठनों द्वारा किये गए अभियानों की वजह से 1983 में कुछ विशेष परिस्थितियों, जैसे कि हिरासत में किए गए बलात्कार, यानि कि पुलिस द्वारा, जेल में या हस्पतालों में, सामूहिक बलात्कार या छोटी आयु की बालिकाओं के साथ बलात्कार वगैरा के मामलों में ***बलात्कार सिद्ध करने का भार*** दूसरे पक्ष पर डाल दिया गया, जिसका मलतब हुआ कि अब दोषी पक्ष को सिद्ध करना पड़ेगा कि उनकी ओर से ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं हुई बल्कि महिला ने सहमति दी थी। यानि कि जहाँ यह सिद्ध कर दिया गया कि संभोग हुआ है और औरत ने कचहरी में यह कह दिया कि उसकी सहमति नहीं थी तो अदालत को मानना पड़ेगा कि औरत ने सहमति नहीं दी थी। कानून में किए गए इस संशोधन से ज़्यादा फर्क नहीं पड़ा क्योंकि शारीरिक सम्बन्धों को तो अभी भी साबित करना पड़ता है। इस के अतिरिक्त और समस्याऐं भी हैं जैसे तुरन्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराना, डाक्टरी जांच, पुलिस द्वारा प्रमाण जुटाना इत्यादि। पीपल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइटस (पी०यू०डी०आर०) के एक अध्ययन से मालूम पड़ा कि हिरासत में किए गए बलात्कार के मामलों में अभियुक्तों ने महिला के पुराने यौन-सम्बन्धों का हवाला देते हुए, सहमति न देने के कथन को झुठलाने की कोशिशें की। पी०यू०डी०आर० ने पता लगाया कि 1983 में संशोधन के बाद के दस सालों में हिरासत के दौरान किए गए बलात्कार के 25 मामलों में एक भी पुलिस वाले को सज़ा नहीं मिली। ऐसी स्थिति में मृत्युदण्ड की सज़ा कहाँ तक कारगर होगी यह एक विवादास्पद मुद्दा है।

3. *बलात्कार का* ***मामला दर्ज कराने में देरी*** करने के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारणों की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। बलात्कार की शिकार महिला घबराई हुई अवस्था में होने के कारण अपनी शिकायत दर्ज नहीं करा पाती। यह भी हो सकता है कि उसको और उसके परिवारवालों को रिपोर्ट दर्ज न कराने की धमकी दी गई हो। क्योंकि बलात्कार एक सामाजिक कलंक के रूप में देखा जाता है इसलिए अपने मित्रों और परिवारवालों को बताने में भी बेहद संकोच होता है। ऐसी परिस्थिति में थाने जा कर असंवेदनशील पुलिस वालों से बात करने में तो और मुश्किल होती है। हिरासत में किए गए बलात्कार के मामलों में जहाँ कानून के रखवाले और सरकारी मुलाज़िम ज़िम्मेदार हों, वहाँ तो शिकायत दर्ज कराना असंभव सा हो जाता है।

4. ***पुलिस के महिला-विरोधी पूर्वाग्रह*** बलात्कार का मामला दर्ज कराने में रुकावट बनते हैं। अक्सर कानून के रखवालों का यौन-जनित व्यवहार इतना भयावह होता है कि महिला को पुलिस के पास रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए भी बड़ी कठिनाईयों से गुज़रना पड़ता है :- जैसे कि उससे असभ्य और गन्दे सवाल पूछे जाना, परीक्षण के लिए उससे कपड़े मांगना आदि अनेकों अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता है। क्योंकि छान-बीन और मुकदमा चलाने की ज़िम्मेदारी राज्य की है पीड़ित महिला का इन सब पर कुछ नियन्त्रण नहीं रहता और वह पुलिस या सरकारी वकील को नाराज़ करने का ख़तरा भी मोल नहीं ले सकती।

5. ***हस्पताल जाने में और डाक्टरी परीक्षण*** कराने में देरी भी हो सकतहै। उसके अलावा डाक्टरों और पूरी चिकित्सा व्यवस्था के भी पूर्वाग्रह हो सकते हैं। उदाहरण के लिए परीक्षण के बाद यदि डाक्टर कहे कि औरत को सहवास की आदत है, तो यदि

वह कुँवारी है तो यह बात उसके ख़िलाफ़ जाती है। इसके अलावा अगर अपने बचाव के लिए की गई हाथापाई के निशान उसके शरीर पर नहीं है जो यह साबित करें कि उसने बलात्कार से अपने को बचाने की कोशिश की, तो डाक्टर कह सकते हैं कि यह बलात्कार नहीं था और इसमें औरत की सहमति थी। यह इस बात को भी नज़रअन्दाज़ करता है कि औरत विभिन्न धमकियों के दबाव में आकर भी बलात्कार का शिकार हो सकती है न कि सिर्फ़ शारीरिक बल से।

6. ***शादी में बलात्कार*** का प्रश्न अभी कानून के दायरे से बाहर है। कानूनन इस प्रकार का बलात्कार, बलात्कार नहीं कहलाता। अत: कानून इस धारणा को बल देता है कि एक पति का अपनी पत्नी के शरीर पर पूरा हक होता है और वह पत्नी की सहमति के बिना भी उससे सम्भोग कर सकता है, यानि कि उसका बलात्कार कर सकता है।

बलात्कार का पूरा मुकदमा औरत के यह सिद्ध करने पर निर्भर करता है कि उसने शारीरिक सम्बन्ध के लिए सहमति नहीं दी। बलात्कार के बहुत कम मामलों में गवाह मिलते हैं, और वे भी आगे आकर गवाही देने में हिचकिचाते हैं। जब बलात्कार को प्रतिशोध के लिए या एक जाति या समुदाय द्वारा अपनी ताकत दिखाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है तो उसे सिद्ध करना और भी कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसे मामलों में जहाँ सुरक्षा दल अथवा सेना के द्वारा प्राय: पूरे गांव या कबीले पर दहशत फैलाने या उन्हें दबाने के लिए बलात्कार एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, जैसा कि कश्मीर और उत्तरपूर्व में हुआ, वहाँ उसे सिद्ध करना, असम्भव सा हो जाता है। इन परिस्थितियों में, क्योंकि पूरा समुदाय या कबीला आंतक के माहौल में रहता है, बलात्कार का मामला दर्ज कराने में देरी की सम्भावनाऐं बहुत बढ़ जाती हैं, पर न्यायालयों में इन समस्याओं को अनदेखा कर दिया जाता है।

बलात्कार कानून में कमियों के अलावा भारतीय प्रमाण कानून (Indian Evidence Act) में भी अनेक आपत्तिजनक प्रावधान हैं। जैसे कि सेक्शन 155 (4) के अनुसार, जब एक आदमी पर बलात्कार के लिए मुकदमा दायर किया जाता है तो मुकदमा दायर करने वाली औरत के चरित्र पर सवाल उठाए जा सकते हैं। दूसरी तरफ सेक्शन 54 अपराधी को संदेह का लाभ देता है। यानि कि आपराधिक मामलों में यह तथ्य कि दोषी व्यक्ति चरित्रहीन है कोई मायने नहीं रखता। इसलिए आश्चर्य नहीं कि औरतें अपने साथ हुए बलात्कार को मानने में संकोच करती हैं। यह बहुत ज़रूरी है कि 1872 में बनाए गए इस कानून में ज़बरदस्त बदलाव लाए जाऐं। कानून निर्माताओं और न्यायधीशों की सोच में परिवर्तन लाने की भी सख़्त ज़रूरत है ताकि वे समझें कि बलात्कार औरत के विरूद्ध हिंसा का घृणित रूप है जिसका उसके चरित्र और नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड समस्या का हल नहीं है क्योंकि मुकदमे के दौरान उत्पीड़ित महिला को एक भयावह दौर से गुज़रना पड़ता है, जिसमें पूछताछ के दौरान थका देने वाले, असंवेदनशील और अपमानजनक सवालों का जवाब देना पड़ता है, दोषी और उसके परिवारवालों की धमकियाँ सुननी पड़ती हैं, सामाजिक प्रताड़ना और विरोधी पुलिस, वकीलों और जजों का सामना करना पड़ता है।

वास्तव में बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था करने से एक विपरीत असर यह होगा कि इससे उन परिस्थितयों को जानने के प्रयासों से ध्यान हट जाएगा जो इस प्रकार की हिंसा को बढ़ावा देती है और बलात्कारियों को साफ छूट जाने का मौका देती हैं। दरअसल विश्व में प्रबुद्ध आपराधिक न्यायशास्त्र मृत्युदण्ड को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। जैसे-को-तैसा पर आधारित मृत्युदण्ड का उसूल जंगली और असभ्य लोगों के न्याय का तरीका है न कि सभ्य कहलाने वाले समाज का।

मृत्युदण्ड की अनिवार्य सज़ा न्याय के भी विरूद्ध जाता है। भारत का उच्चतम न्यायालय मृत्युदण्ड को ऐसे चुने हुए अपराधों के लिए सुरक्षित रखता है, जहाँ अपराध हर शक और सन्देह से ऊपर सिद्ध हो चुका हो। अत: न्यायाधीश भी बलात्कार के लिए दोषी को मृत्युदण्ड देने में हिचकिचाऐगें क्योंकि यह दण्ड अपरिवर्तनीय है। इस का परिणाम यह होगा कि बलात्कार के मामलों में जुर्म साबित होना और दण्ड मिलना और भी कम हो जाएगा। महिला आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता और वकील फ्लेविया एगनेस ने बलात्कार के मामलों का गहन अध्ययन कर के यह बात बताई की सज़ा सख़्त कर देने से अपराध सिद्ध करने के मामले कम हो गए। फिर इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि अधिकतर बलात्कार जाने पहचाने लोगों या रिश्तेदारों द्वारा किए जाते हैं। छोटी बच्चियों के मामलों में अधिकतर अपराधी चाचा, ताऊ, रिश्ते के भाई, पिता और परिवार के मित्रों में से होते हैं। अत: ऐसे मामलों में जहाँ निकट सम्बन्धी या मित्र या परिवार का कोई सदस्य अपराध में शामिल हो, मृत्युदण्ड के खौफ़ से मामला ही दर्ज नहीं कराया जाएगा।

संसार के 55 देशों में मृत्युदण्ड समाप्त किया जा चुका है। अन्य 42 देशों के दण्ड प्रक्रिया संहिता में हालांकि इसका प्रावधान है, परन्तु व्यवहार में इसका इस्तेमाल नहीं किया जाता। कई अध्ययनों से पता चलता है कि मृत्युदण्ड जैसी सख्त सज़ा में अपराध को कम करने या रोकने की क्षमता नहीं है। उदाहरण के तौर पर 1946 में ट्रावन कोर राज्य में मृत्युदंड समाप्त कर देने से अपराध में कोई वृद्धि नहीं हुई। मृत्युदंड कानून द्वारा स्वीकृत एक नृशंस हत्या है। यह जानबूझकर कानून की आड़ में जीने का अधिकार छीनने वाली बात है। जब राज्य सरकार स्वंय ही हिंसा करने का और किसी व्यक्ति की जान लेने का अधिकार ग्रहण कर ले तो बहुत से सवाल उत्पन्न होते हैं। राज्य के शोषणात्मक और

**मृत्युदंड कानून द्वारा स्वीकृत एक नृशंस हत्या है। राज्य को इस तरह का अधिकार देने की मांग अत्यंत ख़तरनाक साबित हो सकती है ।**

जन विरोधी चरित्र को देखते हुए यह अधिकार राज्य को देना प्रजातन्त्र के उसूलों के भी ख़िलाफ़ है। अनुभव से पता चलता है कि जब भी सरकार किसी की जान लेने का अधिकार लेती है, जैसे कि सुरक्षा दलों में, तब निश्चय ही अलोकतान्त्रिक और दमनकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। जैसे कि हमें कश्मीर, पंजाब और उत्तरपूर्व में देखने को मिला। किन्तु सरकार व पुलिस को विशेष अधिकार देने, जैसे कि देखते ही गोली मार देना या बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड जैसे दण्ड प्रावधानों से अपराधों में कमी नहीं आती।

मृत्युदण्ड की सज़ा की मांग नारी आन्दोलन की ओर से नहीं आई है, यह सरकार की ओर से आई है जो कि मानती है कि स्त्रियों के प्रति हिंसात्मक अपराधों को रोकने का यही हल है। इस प्रकार के मामलों को बड़ी सावधानी से देखने और सरकार के उद्देश्यों को समझने की ज़रूरत है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि बलात्कार अकेला मामला नहीं है जिसके लिए मृत्युदण्ड का सुझाव आया है। गृहमंत्री ने उन उग्रवादियों के लिए भी यह दण्ड निर्धारित किया है जिन के पास से आर०डी०एक्स० (RDX) पकड़ा जाएगा। ऐसे लोगों को उग्रवादी क़रार करके उन्हें यह दण्ड दिया जाएगा। यह मात्र संयोग नहीं है कि अधिकतर निम्न सामाजिक वर्ग और आर्थिक स्तर के लोगों को ही मृत्युदण्ड मिलता है। कई बलात्कार के मामलों में देखा गया है जिन लोगों की जान पहचान उच्च वर्ग के लोगों और राजनैतिक ताकतों के साथ होती है, (जैसे कि भंवरी देवी, जलगांव का मामला और जे०सी०बोस होस्टल केस में) वह कानून की गिरफ़्त से साफ़ छूट जाते हैं। पुलिस में और कचहरियों में इतना भ्रष्टाचार है कि पैसे वाले और जान पहचान वाले बलात्कारी आसानी से अपनी आज़ादी ख़रीद सकते हैं।

राज्य व्यवस्था का अपराधीकरण रोजमर्रा के जीवन के हर पहलू में रिस गया है और औरतों के विरूद्ध अपराध पूरे देश में व्याप्त है। केन्द्र और राज्य स्तर की विभिन्न सरकारों के कार्यकालों में औरतों के विरूद्ध हिंसा के मूल कारणों को जानने और उनका निदान करने की कोशिशों का नितान्त अभाव रहा है। इस प्रकार की हिंसा के मूल कारणों पर ध्यान न देना और बलात्कारियों को अनेक प्रकार से बचाने की कोशिश करना इस बात का संकेत है कि महिलाओं के अधिकारों के सवाल इन शासकों के एजेण्डे पर दूर दूर तक नहीं है। इस पृष्ठभूमि में बलात्कारियों के लिए मृत्युदण्ड जैसी लोकप्रिय घोषणाऐं विश्वस्त नहीं करती।

यदि कुछ औरतें बलात्कार के लिए मृत्युदण्ड की सज़ा का समर्थन करती है तो वह इस घोर निराशा की वजह से है, जो इस कुकृत्य के लिए बलात्कारियों को सजा ना मिलने से उत्पन्न होती है। यह निराशा बच्चियों और शिशुओं के बलात्कारों की वीभत्सता से और बढ़ जाती है। यह प्रतिक्रिया उन औरतों के गुस्से, मानसिक आघात और निराशा से भी उत्पन्न होती है, जिनका बलात्कार होता है। यह निराशाजनक तथ्य, कि अधिकतर बलात्कारी सज़ा पाए बिना छूट जाते हैं, भी औरतों के लिए घोर निराशा की स्थिति उत्पन्न करते हैं। इसलिए मुकदमों में फौरन कार्यवाही और दण्ड मिलने का आश्वासन उन्हें यह सन्तोष देगा, कि उनके साथ न्याय होगा।

ज़्यादा महत्व की बात यह है कि छानबीन के तौर तरीकों में सुधार किया जाए जिससे बलात्कार की शिकार महिला से पूछताछ के दौरान संवेदनशीलता से पेश आया जाए। बलात्कार की शिकार औरतों के लिए राहत केन्द्र, समय पर डाक्टरी सहायता और दूसरे समर्थन ढांचे, बलात्कार की शिकार औरतों को राहत देने में महत्वपूर्ण हो सकते हैं। मुआवज़ा और मुआवज़ा देने के लिए प्रस्तावित बोर्ड की स्थापना भी मदद दे सकती है।

बलात्कार के विरूद्ध अपनी बात रखने का मतलब यह नहीं है कि बलात्कारियों के लिए दण्ड कम किया जाए। ना हीं मृत्युदण्ड का विरोध करने का अर्थ है कि बलात्कार करने वालों से नरमी से पेश आया जाए। बलात्कार एक वीभत्स और जघन्य अपराध है और इसके लिए कड़ी सज़ा दी जानी चाहिए। इसके लिए कानूनी प्रक्रियाओं में इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिए कि अपराधी को सज़ा मिले। शीघ्र और प्रभावशाली कार्य प्रणाली अपनाने से ही यह अपराध कम हो सकता है। महिलाओं के विरूद्ध हिंसात्मक घटनाओं को प्रकाश में ला कर उन्हें रोकने के प्रयास आवश्यक हैं। फिर भी राज्य को मृत्युदण्ड के रूप में मारने का अधिकार देने के दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। शक्तिशाली सरकार का अर्थ है कमज़ोर नागरिक, जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं। महिलाऐं जितनी कमज़ोर होगीं उतना ही पुरुषों द्वारा हिंसात्मक उत्पीड़न का शिकार होगीं। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन और महिलाओं के प्रति व्यवहार में बदलाव आवश्यक है जिससे शक्ति सम्बन्धों को बदला जा सके ताकि पुरुष औरतों पर अपनी ताकत का इस्तेमाल न कर सकें।

# गर्भ निरोधक टीकों के विरूद्ध अभियान

दुनिया भर में स्त्री या पुरूष शरीर मे ऐसे उपयुक्त स्थानों की खोज के अथक प्रयास जारी हैं जो गर्भ निरोधक प्रक्रिया हेतु गर्भ निरोध टीकों (ग० नि० टी०) के लिए उपयोगी सिद्ध होगें। भारत मे विश्व-भर की तरह वर्षो से चल रहे मानव एवं पशुओं पर प्रयोगों के बावजूद ग० नि० टी० आज भी वैज्ञानिक स्तर पर जोखिमपूर्ण और असुरक्षित हैं।

गत कई वर्षो से महिला संगठन इन खतरनाक गर्भ निरोधकों के विरूद्ध अपनी मुहिम चलाते आ रहें हैं। हमारी मांग है कि इस क्षेत्र में बुनियादी फेर-बदल की आवश्यकता है। हम विशेष रूप से महिला स्वास्थ्य के प्रति जोखिम भरे इन शोध कार्यों पर फौरी तौर पर पांबदी लगाए जाने के हक में हैं।

27-30 अक्टूबर 1998 मे दिल्ली मे सातवीं अंतर्राष्ट्रीय प्रजनन प्रतिरक्षण विज्ञान कांग्रेस का आयोजन किया गया। इस कांग्रेस मे प्रतिरक्षण गर्भ निरोधक सें सम्बन्धित से ताज़ा-तरीन संवृद्धियों पर भी विचार किया गया। यह बैठक 1-6 नवम्बर 1998 मे चलने वालो अतंर्राष्ट्रीय प्रतिरक्षण कांग्रेस की पूर्व सूचक मानी जा सकती हैं।

विभिन्न वैज्ञानिक तथा आर्युवैज्ञानिक अमलों द्वारा इन महिला विरोधी शोध परियोजनाओं की मुख़ालफ़त दर्ज़ करने के लिए यह सुनहरा मौका था। एक स्थान पर इकट्ठे हुए इतने वैज्ञानिकों और शोध कर्त्ताओं से हमने बातचीत की और उनके कार्य की दिशा की आलोचना प्रस्तुत की। साथ ही उनके सामाजिक दायित्वों का एहसास भी कराया गया। इस प्रकार गर्भ निरोधक से सम्बन्धित अवांछनीय और अनैतिक शोध कार्यो को जन दृष्टि मे लाया जा सका।

लगभग पांच वर्ष पूर्व संसार भर से महिला एवं स्वास्थ्य गुटों ने एक पहल के तहत जनसंख्या नियन्त्रण और उससे उपजी निरोधन गतिविधियो मे शोध कार्यो हेतु बेबाक छूट, तीसरी दुनिया की महिलाओं पर जोखिम पूर्ण गर्भ निरोधकों का प्रयोग जैसे गम्भीर मुददो पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। हमने जनसंख्या नियन्त्रण, हानिकारक और खतरनाक गर्भ निरोधन प्रक्रिया के खिलाफ अंतराष्ट्रीय मुहिम का गठन किया। क्रमश: नई दिल्ली स्थित 'सहेली' और मुंबई स्थित फोरम फौर विमेन्स हैल्थ इस पहल मे काफी सक्रिय हैं। इस मुहिम के तहत ग० नि० टी० प्रयोगों पर रोक लगाए जाने पर विशष ध्यान दिया गया है। इसी वजह से अक्तूबर 1998 में मुख्तलिफ़ गुटों

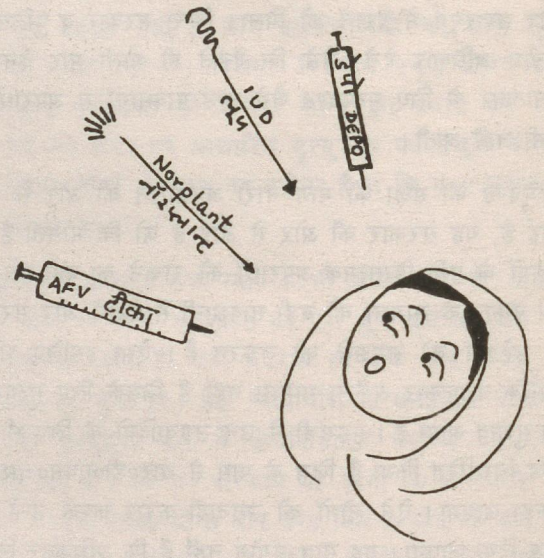


ने एक साथ मिल कर वैज्ञानिक और जनसंख्या नियन्त्रण तंत्र की मुख़ालफ़त करने का फैसला किया।

## गर्भ निरोधक टीके

### जनसंख्या नियन्त्रण हेतु एक और हथियार

बढ़ती आबादी को लेकर जनसंख्या नियन्त्रण हुक्काम द्वारा पैदा तथा प्रोत्साहित की जा रही सनक के कारण महिलाओं को दमनकारी नीतियों का शिकार बनाया जा रहा है। ऐसी नीतियों के चलते महिलाओं पर आक्रमणशील गर्भ निरोधकों की आज़माइश की जा रही है। और अधिक विकल्प मुहैय्या कराए जाने के नाम पर देर तक असरदार तथा जोख़िमपूर्ण निरोधकों को महिला शरीर में प्रविष्ट किया जाता है। नॉरप्लांट, और इन्जेकशन रूप में नेट-एन और डेपो प्रोवेरा को विकासशील देशों की न जाने कितनी महिलाओं पर परीक्षण और इस्तेमाल किया जा चुका है। लगभग तीन दशकों से प्रतिरक्षण प्रतिक्रियाओं को वजूद में ला कर महिला जनन क्षमता को नियन्त्रित करने हेतु वैज्ञानिक कोशिशें जारी हैं।

महिला शरीर में ग० नि० टी० के लिए उपयुक्त स्थानों की यह बे-परवाह खोज काफी विवादास्पद रही है। महिला एवं स्वास्थ्य गुटों की राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कार्यवाही ने गर्भ निरोधन की दिशा में टीकाई रुख-जिसके तहत गर्भ धारण को एक रोग माना जाता है - अपनाए जाने का विरोध किया है। इन गुटों ने ऐसे शोध कार्यों के अनैतिक और गलत साईन्सी बुनियादों को उभारा है। साथ ही महिला स्वास्थ्य और उनसे पनपे सामाजिक दुष्प्रभावों को भी परिपेक्ष में लाया गया है।

एक ओर तो इस विवाद ने वैज्ञानिक तन्त्र को स्वास्थ्य कर्मियों के प्रति और अधिक जवाबदेह बना दिया है, दूसरी ओर ऐसी कोशिशें भी जारी हैं जिनके अन्तर्गत असली तथा बुनियादी मुददों पर पर्दा किया जा रहा है। ग० नि० टी० के केवल नाम बदले जाने से - उदाहरणत: 'जन्म नियन्त्रण टीके' के स्थान पर 'प्रजनन विनियमन टीका' तथा 'प्रतिरक्षणात्मक गर्भ निरोधन' आदि ऐसा नहीं हुआ है कि इन अविष्कारकों के नजरिए में कोई बुनियादी फेर-बदल आया है।

स्वंय को महिला समर्थक बताने वाले शोध संस्थान तथा पैसा मुहैय्या कराने वाली संस्थाऐं यह जोर से कहने में नहीं चूकते कि पुरूषों पर प्रयोग में लाए जाने वाले ग० नि० टी० टीकों पर भी शोध जारी है। किन्तु पुरूष स्वास्थ्य को ले कर जोखिमों पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। साथ ही साथ, बुनियादी असलियत यह है कि ऐसे अधिकांश टीके महिलाओं पर प्रयोग करने हेतु विकसित हो रहे हैं।

## गर्भाधान के विरूद्ध प्रतिरक्षण प्रतिक्रिया एक जोखिमपूर्ण सिद्धान्त

प्रजनन प्रतिरक्षण या ग० नि० टी० का तात्पर्य यही है कि शरीर में गर्भाधान के विरूद्ध एक प्रतिरक्षण प्रतिक्रिया पैदा की जा सके। ऐसे टीकों में निहित मूल अवधारणा, को समझने के लिए व ये टीके किस प्रकार से असर करते है और इन से स्वास्थ्य को क्या खतरे हो सकते है, यह सब जानने के लिए शरीर की प्राकृतिक प्रतिरक्षण व्यवस्था पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालना आवश्यक है। यह व्यवस्था नासिकाओं, इन्द्रियों, कोष्ठिकाओं तथा अणुओं की एकीकृत व्यवस्था है। इसकी सहायता से मानव शरीर संक्रामक रोगों से सुरक्षित रहता है। बाहरी तत्वों, यह जटिल शारीरिक व्यवस्था इस प्रकार से बनी है जिससे रोगजनक कीटाणु, परजीवनी कीटाणु तथा जीवाणुओं की फौरी पहचान होती है, जिसके फलस्वरूप शरीर में सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं जो इन बाहरी तत्वों से लड़ती हैं। किसी भी ऐसे बाहरी तत्व के विरूद्ध शरीर की ऐसी पहली प्रतिरक्षात्मक प्रतिक्रिया धीमी रहती है तथा प्रभावशाली नहीं हो पाती है। किन्तु एक बार ऐसा होने से क्रमश: शरीर उस विशेष बाहरी तत्व के विरूद्ध अपनी प्रतिरक्षण व्यवस्था सुगठित करता चला जाता है। पारम्परिक प्रतिरक्षण टीके इसी सिद्धान्त पर रोग विशेष के विरूद्ध शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता बढ़ाते हैं ('पारम्परिक टीके बनाम ग० नि० टी० : समीक्षात्मक विभेद' पर बाक्स देखें)।

किन्तु, यह महत्वपूर्ण है कि ऐसे किसी भी टीके से शरीर की प्रतिरक्षण व्यवस्था के संतुलन पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए, तथा न ही उसकी प्रभावकारी क्षमता में कोई कमी। शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता का यह सिद्धान्त अन्य टीकों के साथ ग० नि० टी० जो प्रतिरक्षण व्यवस्था में दखल कर प्रजनन प्रक्रिया को विघटित करने पर लक्षित हैं-पर उतना ही लागू होता है।

मानवों पर किए गए परीक्षणों में जो जोखिम सामने आए हैं वे हैं, एलर्जी, हाइपरसेन्सटिविटी, प्रतिरक्षण संबंधित रोग तथा

### पारम्परिक टीके बनाम ग० नि० टी० *समीक्षात्मक विभेद*

*ग० नि० टी० तथा संक्रामक रोग रोकथाम के टीकों को ले कर कई रूपरेखाओं में चर्चा की जा सकती है। उदाहरणत: जीव-वैज्ञानिक रूपरेखा, प्रतिरक्षणात्मक उददेश्य, लाभार्थी वर्ग आदि। अन्य स्तरों पर भी यह चर्चा हो सकती है जैसे, उन्हें विकसित करने वालों, उपलब्ध कराने वालों तथा इस्तेमाल करने वालों के परिपेक्ष्य एवं समझ में भिन्नता : तथा नियन्त्रण की ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमों को जनता पर थोपने का राज्य का तथा कथित अधिकार।*

*ऐसी भिन्नताएं सामाजिक, आर्थिक तथा लिंग-भेद आधारित वास्तविकताओं में निहित हैं। पारम्परिक टीके अशक्तता तथा जान-लेवा रोगों की रोकथाम हेतु हैं। ग० नि० टी० का उददेश्य गर्भाधान रोकना है, जो कि एक सहज शारीरिक क्रिया है, कोई रोग नहीं। इसलिए पारम्परिक टीकों का प्रयोग केवल रोग-ग्रस्त व्यक्तियों तक सीमित है जबकि ग० नि० टी० का प्रयोग स्वस्थ एवं प्रजनन-आयु के प्रत्येक व्यक्ति पर लक्षित है। साथ ही साथ, हालांकि सैद्धान्तिक तौर पर कहा जाता है कि ग० नि० टी० का प्रयोग स्त्री एवं पुरूष दोनों के लिए है, किन्तु असलियत यह है कि इनको इस प्रकार से विकसित किया जा रहा है कि इन का प्रयोग केवल महिलाओं पर ही हो सकेगा।*

*इसके अलावा, पारम्परिक टीकाकरण, साधारणत: 'बूस्टर' की सहायता से, आजीवन प्रतिरक्षण प्रदान करने पर लक्षित है। पुन: संक्रमण से शरीर का बचाव होता रहता है। दूसरी ओर, ग० नि० टी० केवल एक सीमित और निश्चित अवधि के लिए ऐसा करते हैं। पुन: प्रतिरक्षण के लिए उनका बार-बार उपयोग की आवश्यकता है।*

प्रजनन क्षमता का विघटन। ग० नि० टी० पर शोध आरम्भ होने के लगभग तीन दशक बाद आज भी इस अनुक्रम की प्रभावकारी दर 80% से अधिक नहीं है, इसकी सुरक्षापूर्णता सन्देहास्पद हैं, इसके दीर्घकालीन प्रभावों में विषाक्तता तथा वैरूपकीयता आदि संभावनाएं ज्यों-की-त्यों बनी हैं। किसी भी गर्भनिरोधन के तरीके का प्रत्यावर्तन उसका महत्वपूर्ण आयाम होता है। उपरोक्त अनुक्रम में यह भी संदेहास्पद है। एच० आई० वी० संक्रामकता पर ग० नि० टी० के क्या प्रभाव हो सकते हैं इस पर भी पर्याप्त अध्ययन नहीं हुए हैं। ग० नि० टी० को बढ़ावा देने वाले वैज्ञानिकों और शोध संस्थानो का कहना है कि जानकारी के अभाव में ग० नि० टी० शोध आगे नहीं बढ़ सकती, लेकिन महिला गुटों और स्वास्थ संस्थाओं ने इसी दलील का क्रमबद्ध प्रतिरोध किया है।

गर्भाधान को एक रोग या विकार मानना तथा उसके प्रतिरोध रूप शरीर में प्रतिरक्षण प्रतिक्रिया उत्पन्न करना, इस मूल सिद्धान्त की सर्वथा मुखालफत की गई है। ग० नि० टी० की अन्य विशेषताएं; उदाहरणत: प्रभाव की दीर्घकालीनता, व्यापक स्तर पर उपयोग, बिना स्वीकृति या जानकारी के लोगों पर प्रयोग किया जाना चिन्ता का विषय है क्योंकि यह इन्हीं के दुर्पयोग का सम्भावना पैदा करता है। संसार भर में महिलाओं के अनुभव उपरोक्त प्रयोग के साक्षी हैं। भारत के सन्दर्भ में यह बात और भी प्रासांगिक है क्योंकि यहां राज्य द्वारा चलाए जा रहे 'जनसंख्या नियन्त्रण' प्रयासों का अनुभव महिलाओं के लिए अकल्याणकारी सिद्ध हुआ है।

## शोध एवं ग० नि० टी०
## अनैतिकता का इतिहास

ग० नि० टी० को ले कर अब तक किए गए शोध से ऐसी आशंकाएं और सम्भावनाएं और भी प्रबल हो जाती हैं (देखें बाक्स : ग० नि० टी० पर विश्वव्यापक शोध : पैसा कहाँ से आता है?) पशुओं पर बिना पर्याप्त अध्ययन किये, मानवों पर परीक्षण शुरू कर दिए गए। विज्ञान की व्यवहारिकता की नैतिकता की तमाम कसौटियों को ताक पर रख तथा प्रयोगार्थी के हितों के ऊपर विज्ञान और समाज के हितों को महत्व दिया गया है।

भारत में तो यह शर्मनाक पहल एच० सी० जी० - प्रतिरोधी टीकों के महिलाओं पर प्रयोग के दूसरे चरण में ही प्रारम्भ हो गई थी। दिल्ली, मुम्बई एवं चण्डीगढ़ में पशुओं पर बिना पर्याप्त अध्ययन किए नौवें दशक के प्रारम्भ में इनके प्रयोग शुरू हो गए थे। ग० नि० टी० के जनक प्रो० जी० पी० तलवार ने स्तन-पान कराती महिलाओं पर परीक्षण किए।

### ग० नि० टी० पर विश्व-व्यापी शोध
### *पैसा कौन देता है ?*

*निम्नलिखित पांच प्रमुख संस्थान ग० नि० टी० पर शोध एवं विकास कार्य कर रहे हैं : वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाईजेशन स्विटजरलैंड, नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ इम्युनालाजी दिल्ली, कान्ट्रसैप्टिव रिसर्च एण्ड डिवलपमैंट प्रोग्राम (कौनराड) यू० एस० ऐड०, पापुलेशन काउन्सिल तथा नेशनल इन्सटिय्यूट ऑफ चाईल्ड हेल्थ एण्ड ह्यूमन डेवलप्मेंट द्वारा संचालित सैंटर ऑफ पापुलेशन रिसर्च, यू० एस० ऐ०। इस प्रयास में सम्मिलित अन्य संस्थाएं हैं : नेशनल इन्सटीय्यूट ऑफ साइन्स, बैन्गलौर स्थित सैन्टर फॉर रिप्रौडक्टिव बायलजी एण्ड मॉलीक्यूलर एण्डिक्रोनोलजी, इन्टरनेशनल सैन्टर फॉर जैनेटिक इन्जिनीयरिंग एण्ड बायोटेक्नौलजी, दिल्ली तथा स्टैन्थीक्लाईड यूनिवर्सिटी, यू० के०।*

*डब्लयू० एच० ओ०, कौनराड, एन० आई० एच०, पापुलेशन काउन्स्ल, यू० एस० ऐड०, मैडिक्ल रिसर्च कॉउन्सिल (यू० के०) तथा इन्टरनेशनल डैवलपमैन्ट एण्ड रिसर्च सैन्टर, कैनेडा ने भी इस विश्व-व्यापी शोध के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है। अमरीका स्थित कुछ निजी न्यास, जिनकी सोच में बढ़ती आबादी विश्व सुरक्षा के लिए खतरा है, ने भी शोध के ऐसी इमदाद मुहय्या कराई है। ये हैं जॉर्ज जो० हेश्ट फन्ड, एन्ड्रयू डब्लू० मेल्लन फांउन्डेशन, राकॅफैलर फाउन्डेशन आदि। औषधि उत्पादक कम्पनियों - जैसे सैन्डोज, जानसन एण्ड जानसन, ऑर्गेनॉन फार्मेस्युटिकल, आर्थो फार्मा, जॅनेजन इनकार्पोरेटड आदि तथा रिप्रोडेक्टिव बायोटेक्लानाजीज लिमिटेड ने मुनाफे की दृष्टि से इस शोध में अपनी पूंजी लगाई है।*

*वर्तमान में 27 से अधिक टीकों पर शोध कार्य चल रहा है। इनमें से एच० सी० जी० विरोधी टीके, जी० आर० एच० विरोधी टीके, शुक्राणु विरोधी तथा अण्डाणु टीके शामिल हैं। यद्यपि अधिकांश टीके अभी पशु-परीक्षण या प्रथम चरण में हैं, वहीं एच० सी० जी० विरोधी टीके दूसरे चरण - यानि मानव परीक्षण में आ चुके हैं।*

स्पष्ट है कि विज्ञान और समाज के तथाकथित कल्याण हेतु प्रयोगार्थी के हित और कल्याण को ताक पर रख दिया गया। इस तथ्य पर भी ध्यान देना जरूरी है कि गर्भ निरोधन शोध के प्रयास जनसंख्या नियन्त्रण की अनिवार्यता द्वारा निर्धारित होते रहे हैं।

## प्रजनन प्रतिरक्षण कांग्रेस की कार्यवाही

### समाजिक दुष्प्रभावों की नजरअंदाजी

'जनसंख्या नियन्त्रण, अनुचित तथा जोखिमपूर्ण गर्भनिरोधन के विरूद्ध अर्न्तराष्ट्रीय अभियान' के कई सदस्यों ने (कनाडा, जर्मनी, नाईजीरिया तथा भारत से) 'प्रजनन प्रतिरक्षण कांग्रेस' की बैठक में हिस्सा लेते हुए कई प्रांसगिक विषय उभारे। उदघाटन सत्र में हमने प्रो० तलवार का यह निन्दनीय कथन सुना, "ग० नि० टी० पर शोध के औचित्य का और क्या प्रमाण हो सकता है, जब से यह सत्र प्रारम्भ हुआ है भारत की जनसंख्या में 2054 की और वृद्धि हो चुकी है"।

बैठक के पूरे काल में इस शोध की नैतिकता तथा सामाजिक प्रयोज्यता से सम्बन्धित विषयों का कोई जिक्र नहीं हुआ। फलस्वरूप, बैठक के अन्तिम दिन 'अभियान' की ओर से एक संयुक्त वक्तव्य में हमने ग० नि० टी० से जुड़े मुख्य प्रश्न, महिला स्वास्थ्य के लिए उनकी जोखिमता तथा शोध की ऐसी दिशा में निहित खतरों को उजागर किया। उपस्थित वैज्ञानिकों तथा शोधकर्ताओं की प्रतिक्रिया काफी उग्र रही। उनकी राय थी कि इस बैठक में यह विषय प्रासंगिक नहीं हैं। उपस्थित लोगों से हमने आर्युविज्ञान शोध के सामाजिक संदर्भ के बारे में बातचीत की। कुछ ने हमारी बात ध्यान से सुनी।

## अभियान प्रबल करने की आवश्यकता

### प्रतिवाद को स्वर

30 तारीख की दोपहर को सहेली तथा फोरम फार विमेन्स हेल्थ द्वारा संयुक्त रूप से एक संवाददाता सम्मेलन का आयोजन किया गया। अंतर्राष्ट्रीय अभियान के सदस्यों ने भी संवाददाताओं से बातचीत की। यद्यपि भारत के संदर्भ में ग० नि० टी० तथा गर्भनिरोधन-शोध ज्वलंत विषय नहीं हैं, यह स्पष्ट है कि विगत वर्षों में हमारे प्रयासों द्वारा ये प्रकाश में आए हैं। इन पर लोगों का ध्यान गया है। प्रेस भी इस विषय पर सचेत हुई तथा इस विषय पर रिपोर्टिंग की। सहेली ने 'ग० नि० टी० शोध तथा महिला स्वास्थ्य' नाम से एक विस्तृत रिपोर्ट जारी की, (बाक्स देखिये)।

31 को अक्तूबर सहेली तथा फोरम फॉर विमेन्स हेल्थ द्वारा एक बैठक का समायोजन किया गया। यद्यपि दिल्ली के बाहर से

कुछ समूह इसमें उपस्थित थे परन्तु अधिकांश स्थानीय थे। बैठक के पूर्वान्ह सत्र में भारत की स्वास्थ्य नीति का जायज़ा लिया गया। साथ ही साथ, प्रजनन स्वास्थ्य नीति में हो रहे परिवर्तनों पर दृष्टि डाली गई। तदोपरान्त, गर्भ निरोधक की दिशा तथा राजनीति तथा महिला आन्दोलन के समक्ष उपस्थित चुनौतियों पर एक प्रस्तुतिकरण किया गया। अपरान्ह सत्र **अर्न्तराष्ट्रीय अभियान** पर रहा। तदोपरान्त, वैज्ञानिकों के सामाजिक दायित्व को ले कर चर्चा हुई। अन्त में रणनीति योजन को लेकर एक सत्र हुआ जिसमें जनसंख्या नियन्त्रण अमलों द्वारा महिला आन्दोलन के महत्वपूर्ण मुद्दों के सहयोजन को लेकर चर्चा हुई।

1 नवम्बर को राष्ट्रपति श्री के० आर० नारायणन ने **अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिरक्षण कांग्रेस** का उदघाटन किया। इस अवसर पर हमने एक विरोध प्रदर्शन किया। इसका आयोजन तमाम वैज्ञानिक समुदाय को ग० नि० टी० के अनैतिक तथा अवांछनीय आयामों तथा हमारी तत्सम्बन्धी आपत्तियों से अवगत कराने के उद्देश्य से किया गया था। इस प्रदर्शन में सबला संघ, डैमोक्रैटिक स्टूडैन्टस यूनियन तथा पीपल्स यूनियन फार डैमोक्रेटिक राइटस आदि समूहों ने हमारा साथ दिया। हमने

सैकड़ों उपस्थित वैज्ञानिकों में सम्बद्ध विषयों पर पर्चे बांटें, नारे लगाये तथा गीत आदि गाये।

## *महिला स्वास्थ्य की प्राथमिकताओं को पुनर्भाषित करना*

### अभी चुनौतियां और भी हैं

जहां ग० नि० टी० के विकास ने वहीं दिशा अपनाई है जो अन्य आक्रामक तथा उपलब्धकर्ता-नियन्त्रित गर्भ निरोधकों की रही है, वहीं दूसरी ओर इसके कुछ अन्य पहलू भी हैं। इन अमलों ने महिला स्वास्थ्य आन्दोलन के खिलाफ़ मीडिया को निरन्तर अपने साथ लिया है। आन्दोलन की दीर्घ कालीन प्रभावकारी तथा उपलब्धकर्ता नियन्त्रित गर्भनिरोधन पर आपत्तियों का उल्टा अर्थ निकालने के प्रयास किये गए हैं। शोधकर्ता दावा करते हैं कि ग० नि० टी० हॉरमोनल संतुलन तथा मासिक धर्म चक्र में अविरोध नहीं करते। यह दावा इस तथ्य को छिपाने का प्रयास है क्योंकि ग० नि० टी० द्वारा पूरी शरीर व्यवस्था में हस्तक्षेप होता है, हार्मोनल सन्तुलन बिगड़ता है तथा स्वास्थ्य को जोखिम उत्पन्न होते हैं। शोधकर्ता यह भी दावा करते हैं कि इनकी दीर्घकालीन प्रभावशीलता महिला के अहित में है, कि ये उपलब्धकर्ता-नियन्त्रित नहीं हैं क्योंकि महिला के समक्ष ग० नि० टी० को चालू न रखने का विकल्प है। एक ओर तो ग० नि० टी० द्वारा महिला गर्भाधान क्षमता को किसी भी प्रकार से विघटित करने के प्रयास हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर इनके विकास द्वारा महिलाओं को और अधिक विकल्प मुहैय्या कराये जाने की बात कही जा रही है।

यह स्पष्ट है कि ग० नि० टी० जैसी गर्भनिरोधन शोध अधिकांश महिलाओं के यथार्थ से हट कर की जा रही है। प्रजनन आयु वाली **90%** महिलाओं में रक्त की कमी तथा कुपोषण हैं: पर्याप्त भोजन, पानी एवं बुनियादी स्वास्थ्य रक्षा उनकी पहुंच के बाहर हैं। जनसंख्या नियंत्रण तंत्र द्वारा महिलाओं की गर्भनिरोधन सम्बन्धित जरूरतों का गलत फायदा उठाया जा रहा है। उन पर ऐसी निरोधन विधियां थोपी जा रही हैं जिन पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं है।

हम यह बात पुन: जोर दे कर कहना चाहती हैं कि महिलाओं को गर्भ निरोधन की आवश्यकता है किन्तु सुरक्षित और असरदार तथा जिन पर उनका नियन्त्रण हो। इस प्रकार की ऊपर से थोपे गए और बहुत पैसा लगाकर किए जाने वाले शोध समाज में प्रभुत्वशाली ताकतों के हित में ही हो सकते हैं। गर्भ निरोधन शोध में एक बुनियादी फेर बदल हेतु आवश्यक है ताकि महिलाओं के लिए सुरक्षापूर्ण एवं प्रभावकारी विधियां


**टार्गेट प्रैक्टिस : गर्भ निरोधक टीके शोध एवं महिला स्वास्थ**
***सहेली द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट***

*सहेली द्वारा तैयार की गई यह (अंग्रेज़ी) रिपोर्ट गर्भ निरोधक टीके के विकास को रेखांकित करने का प्रयास है। यह रिपोर्ट प्रतिरक्षण सम्बन्धी सोच में निहित खामियों को उजागर करती तथा महिला स्वास्थ के प्रति जोखिमों को प्रकाश में लाती है। साथ साथ इनके सम्भावित कुप्रयोग पर चर्चा करती है एवं वैज्ञानिक तथा शोध अमलों के जनसंख्या नियन्त्रण कार्यक्रम का भण्डाफोड़ करती है।*

*बहुत लम्बे समय से महिला आन्दोलन ने विज्ञान की घोषित तटस्थता पर सवाल खड़े किए हैं तथा उसके पैतृक्त्व एवं वर्ग से मुताल्लिक पूर्वाग्रहों को भी उजागर किया है। हमने ग० नि० टी० पर चल रही बहस को मौजूदा समाज की वास्तविकताओं में ला खड़ा किया है जहां न तो महिला को समता प्राप्त है और न ही संसाधनों तक उसे बराबरी की पहुंच हासिल है। यह समस्या इस बात से और गहरा जाती है कि बजाय महिला स्वास्थ को प्राथमिकता दिये जाने के जनसंख्या नियन्त्रण पर सर्वाधिक बल दिया जा रहा है। इन टीकों के सामाजिक असरात को देखते हुए हमने इन्हें भारतीय परिपेक्ष में जांचा है। अन्ततः हमने महिला स्वास्थय की प्राथमिकताओं को पुनः परिभाषित करने पर जोर दिया है।*

*यह रिपोर्ट रू० 25/- सहयोग राशि में सहेली से उपलब्ध है। डाक हेतु रू० 8/- अतिरिक्तद्ध प्रति या अन्य जानकारी के लिए कृप्या हमें लिखें।*

विकसित की जाएं जो कि न केसल महिलाओं के नियन्त्रण में हो बल्कि दम्पत्तियों में बेहतर समझ बनाने में भी मद्दगार हो। गर्भ निरोध में पुरूषों की जिम्मेवारी के सवाल पर भी ध्यान दिया जाना जरूरी है। वैज्ञानिक शोध को चाहिए कि वह लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को निगाह में रखे। इस सन्दर्भ में अति-आवश्यक है कि पैतृकवाद तथा वर्ग सम्बन्धित पूर्वाग्रहों को चुनौती दी जाय। पुरूष और महिलाओं के बीच असमानता ओर महिलाओं की जरूरतों की तरफ ध्यान देना ही परिवर्तन की दिशा में लाभकारी होगा।

जनसंख्या नीति की आवश्यकता पर प्रश्न खड़े किए जाने चाहिएं और सामाजिक बहस की शर्तें एवं मुददे बदलने चाहिएं। भूमि सुधार कानून, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तथा सभी के लिए भोजन, मकान, स्वास्थ्य एंव शिक्षा का बराबर तौर पर मुहैय्या कराया जाना एक समता आधारित एवं सुदृढ़ समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होना।

हमारा आहवान है कि गर्भ निरोधन प्रतिरक्षण की शोध एवं दिशा पर फौरी पाबन्दी लगाई जाए। इसमें निहित स्वास्थ्य जोखिम, संभावित कुप्रयोग अ-सामाजिक तथा लोक-विरोधी हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरूष का कल्याण वैज्ञानिक उददेश्यों से परे है।

**जनसंख्या नीति एवं मुनाफाख़ोरी का गर्भ निरोधन शोध में कोई स्थान नहीं है !**

# शिवसेना को गुस्सा क्यों आता है ?

## 'फ़ायर' फ़िल्म पर विवाद

3 दिसम्बर 1998 को 'फ़ायर' फ़िल्म को दिखाए जाने के ख़िलाफ़ दिल्ली के रीगल सिनेमा हाल पर कुछ शिवसैनिकों द्वारा हमला किया गया। सिनेमा हाल के अन्दर और बाहर तोड़-फोड़ द्वारा शिवसैनिकों ने थियेटर के प्रबन्धकों और आम जनता व दर्शकों के बीच भय का वातावरण बनाया। यह हमला, देश के विभिन्न हिस्सों में 'फ़ायर' दिखाने वाले थियेटरों पर हमलों की कड़ी का हिस्सा था। चार दिन बाद, 7 दिसम्बर को शिवसेना की गुण्डागर्दी के खिलाफ़ इसी थियेटर के बाहर एक प्रदर्शन किया गया जिसमें बड़ी संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया। इस प्रदर्शन में ३२ संगठनों ने हिस्सा लिया जिनमें महिला समूह, 'गे' और 'लैस्बियन' समूह, जनतान्त्रिक संगठन, थियेटर और फिल्म निर्माण से जुड़े लोग शामिल थे। शिवसेना द्वारा समलैंगिकता को भारतीयता-विरोधी और अनैतिक प्रचारित किए जाने के विरूद्ध इन प्रदर्शनकारियों ने बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और भारत में समलैंगिकता को मान्यता देने की मांग की।

इससे पहले 2 दिसम्बर 1998 को शिवसेना और बजरंग दल ने बम्बई के दो थियेटरों पर हमला किया था। उसके बाद दिल्ली और देश के अन्य हिस्सों में इसी प्रकार की तोड़-फोड़ की गई, जिसके परिणाम स्वरूप इन थियेटरों के मालिकों ने इस फ़िल्म को दिखाना बन्द कर दिया। सेंसर बोर्ड द्वारा अनुमति प्राप्त फ़िल्म पर यह एक प्रकार की निजी पाबन्दी थी जो कि हिन्दूवादी ताकतों के द्वारा लगाई गई थी, जिस ने आम जनता को एक फ़िल्म को देखने और उसका आकलन करने के अधिकार से वंचित किया। इन दक्षिण-पन्थी ताकतों की इस प्रकार की प्रतिक्रिया के कारणों को समझने से पहले फ़िल्म का एक संक्षिप्त मूल्यांकन किया जा रहा है:

# फ़िल्म की कहानी और उसकी सीमाएं

'फ़ायर' फ़िल्म शादीशुदा औरत के अकेलेपन २और औरत की यौनिकता की अभिव्यक्ति की खोज को दर्शाती है। निर्देशिका दीपा मेहता ने एक परंपरागत संयुक्त परिवार के ढांचे में कहानी को बुना है, जिसमें परिवार में दो भाई हैं। बड़ा भाई अपनी पत्नी (शबाना आज़मी) की तरफ़ ध्यान नहीं देता है क्योंकि वह बच्चा पैदा नहीं कर सकती। छोटा भाई एक दूसरी औरत से सम्बन्ध रखता है परन्तु फिर भी शादी कर एक पत्नी (नंदिता दास) को घर ले आता है। परिवार में इनके अलावा बीमार लकवाग्रस्त सास और एक घरेलू नौकर है। फ़िल्म की दोनों नायिकाऐं ऐसी परिस्थितियों में है जो न तो ख़ुशी देती हैं और जिनमें न ही आगे कभी ख़ुशी मिलने की आशा है। अपने पतियों से उपेक्षित, परिवार द्वारा चलाए जा रहे रेस्टोरेंट के और घर के रोजमर्रा के कामों को करते हुए वे भावनात्मक और शारीरिक रूप से एक दूसरे की तरफ़ आकर्षित होती हैं।

फ़िल्म दो औरतों के बीच आत्मीयता, जिसमें यौनिक आत्मीयता भी शामिल है, को बहुत ही संवेदनशील तरीके से दर्शाती है। इस प्रकार के लैस्ब्यिन (Lesbian) सम्बन्धों को दो अन्य भारतीय फ़िल्मों (मराठी की 'उम्बराधा' और हिन्दी में 'सुबह') में पहले भी दर्शाया गया है। इस फ़िल्म की विशेष बात यह है कि यह पुरानी फ़िल्मों से हट कर लैस्बियन सम्बन्ध की अभिव्यक्ति और विकास को विस्तार से चित्रित करती है। लेकिन इस चित्रण का महत्व इस बात से कम हो जाता है कि इस सम्बन्ध ा को दोनों औरतों के वैवाहिक जीवन में ख़ुशी और सम्पूर्णता के अभाव से उपजा दर्शाया गया है। हालांकि इस प्रकार के शारीरिक आर्कषण के कारणों के बारे में अलग-अलग प्रकार की व्याख्याऐं हो सकती हैं, इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि समलैंगिकता (Homosexuality) या लेस्बियनिज़्म की विद्यमानता का कोई औचित्य देना ज़रूरी नहीं है। फ़िल्म में जैसे-जैसे यह सम्बन्ध बनता है, सास और घरेलू नौकर, जो दिन भर घर में रहते हैं, के चरित्रों के माध्यम से इस सम्बन्ध को हल्के उपहास का विषय बना कर दिखाने से समलैंगिकता के मुद्दे को महत्वहीन सा कर दिया गया है।

यदि स्त्री-यौनिकता की खोज फ़िल्म का मुख्य मुद्दा है तो यह बहुत ही दु:ख की बात है हस्तमैथुन जैसे दुश्य से फ़िल्म में हंसी पैदा करने के लिए इस्तेमाल किया गया है। हालांकि यौनिक सुखप्राप्ति के मुद्दें को मुख्य चरित्रों के माध्यम से बहुत ख़ूबसूरती से पेश किया गया है, नौकर के मामले में इसी चीज़ को हँसी पैदा करने का ज़रिया बना दिया गया। इस प्रकार के दृश्यांकन से हस्तमैथुन से जुड़े अपराधबोध और अर्न्तद्वन्द को बढ़ावा मिलता है। इस के अतिरिक्त, एक गम्भीर विषय का चित्रण करते हुए भी, नौकर के माध्यम से फ़िल्म में हँसी के दृश्य लाना, मुख्य सिनेमा की पुरानी चाल रही है, जिस से निर्देशिका भी बच नहीं सकी हैं।

एक और रूढ़िगत चित्रण जिसका निर्मात्री ने पूरा इस्तेमाल किया है वह है छोटे भाई की प्रेमिका का। यह 'दूसरी औरत'/ 'रखैल' एक ब्यूटी पार्लर चलाती है जहां पर अक्सर अश्लील क़िस्म के सौदे होते हैं। यह औरत चीनी है और अकेली रहती है। वह आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर है और उसने संयुक्त परिवार की ज़िम्मेदारियों से अलग रहने का फैसला किया है। वह यौनिक दृष्टि से सन्तुष्ट है और उसे अपने चुनावों के बारे में कोई दु:ख या असमंजस नहीं है। यह हैरानी की बात है कि यह सशक्त चरित्र फ़िल्म निर्मात्री के लिए कोई महत्व नहीं रखता, जो कि इसे केवल एक लुभाने वाले चरित्र के रूप में पेश करती है, जिसके माध्यम से छोटे भाई की लम्बे समय के लिए घर से अनुपस्थिति दर्शाई गई है।

फ़िल्म में 'रामायण' सीरियल के बहुत अधिक दृश्य दिखाए गए हैं। और यह फ़िल्म की कहानी से जोड़े भी गए हैं। फ़िल्म में दर्शाए गए पारम्परिक पारिवारिक ढांचे के अनुरूप रामायण के माध्यम से पितृसत्तात्मक मूल्यों को बढ़ावा दिया गया है। फ़िल्म के आख़िर में जब बड़ा भाई अपनी पत्नी से सफ़ाई मांगता है, रसोईघर को आग लग जाती है और उसकी पत्नी उसमें से साफ़ बच कर निकल आती है। इस प्रकार रामायण का बार-बार इस्तेमाल इस स्तर तक किया गया है कि वास्तव में 'अग्नि-परीक्षा' तक दिखाई गई।

फ़िल्म का अन्त साकारात्मक रूप में किया गया है क्योंकि फ़िल्म के मुख्य चरित्र स्वंय निर्णय लेते हैं जो कि उनके समलैंगिक प्यार के पक्ष में किया गया चुनाव है। दोंनों नायिकाऐं घर छोड़कर नए जीवन की शुरूआत के लिए एक सूफ़ी जगह पर मिलती हैं। वे परिवारिक सम्बन्धों के खालीपन और घुटन से निकलकर नए जीवन की खोज के लिए यह कदम उठाती हैं। अपने इस चुनाव के लिए वे अपने सामाजिक और भौतिक सुखों का त्याग करती हैं। यदि इस दृष्टिकोण से देखें तो फ़िल्म परिवार और अनिवार्य इतरलैंगिकता (Heterosexuality) पजलब्ध की समीक्षा है। यह अपने आप में एक दुर्लभ उपलब्धि है, विशेष रूप से ऐसे समाज में जो पितृसत्तात्मक और मूलभूतवादी मान्यताओं पर आधारित है और जहाँ औरतें अपनी यौनिकता की अभिव्यक्ति के लिए संघर्षरत हैं।

जब से फ़िल्म दिखाने पर एक प्रकार से पाबन्दी लग गई है, तब से निर्मात्री दीपा मेहता सुर्ख़ियों में है। यूरोप में पोस्टरों में इस फ़िल्म को लैस्बियन फ़िल्म के रूप में पेश किया गया है जबकि भारत में दीपा मेहता इस बात से इन्कार करती हैं। इस से यह समझ में नहीं आता कि क्या वह फ़िल्म के माध्यम से मात्र पैसा बना चाहती है या 'फ़ायर' की कहानी ख्याति प्राप्त करने के लिए एक दम सटीक थी। 'फ़ायर' और 'द बैन्डिट

क्वीन' के निर्माता, बॉबी बेदी का इस फ़िल्म के साथ सम्बन्ध इस बारें में संशय पैदा करता है इस फ़िल्म को बनाने के पीछे व्यावसायिक हितों का कितना हाथ है।

इन सब कमियों के बावजूद फ़िल्म के संदेश का समर्थन करना ज़रूरी है। सिनेमा और कहानी दोनों ही दृष्टिकोणों से फ़िल्म आलोचनात्मक बहस को प्रेरित करती है। शिवसेना द्वारा किए गए हमले ने इसे प्रचार माध्यमों में चल रहे दिलचस्प विवादों का केन्द्र बना दिया है। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि फ़िल्म द्वारा उठाए गए मुद्दे और इससे जुड़े विवाद हमारे लिए, विशेष रूप से नारी आन्दोलन से जुड़े होने की वजह से अति महत्वपूर्ण हैं।

**"हम अपने जीवन, अपने शरीरों, अपनी यौनिकता और अपने सम्बन्धों का चुनाव करने के अधिकार की मांग करते है। हममें कुछ अकेली है, कुछ शादी-शुदा है। हममें से कुछ के पुरुषों के साथ भावनात्मक/लैंगिक/शारीरिक/आत्मीय सम्बन्ध है और कुछ के औरतों के साथ। हममें से कुछ ऐसी भी है जिनके कोई यौन सम्बन्ध नहीं है। हम यह महसूस करते है कि हमें ऐसे समर्थन के ढांचों का निर्माण करना चाहिए जो इन सब चुनावों को एक अर्थपूर्ण वास्तविकता में बदल सके।"**

6 दिसम्बर 1997, रांची में हुए छठे नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन के घोषणा पत्र से उद्धृत।

## हिन्दुत्व विचारधारा और स्त्री यौनिकता

शिवसेना के कई प्रवक्ताओं ने सार्वजनिक रूप से फ़िल्म के ख़िलाफ़ अपनी शिकायतें दर्ज कराई हैं। किसी स्तर पर उनका यह कहना है कि वे समलैंगिकता की विद्यमानता से इन्कार नहीं करते, लेकिन यह महसूस करते हैं कि इसका इस प्रकार से चित्रण नहीं होना चाहिए। इस का मतलब क्या यह है कि क्योंकि समाज अभी इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है इसलिए यह भी ज़रूरी है कि ऐसे सम्बन्धों को फ़िल्मों में भी दर्शाया न जाए। इस प्रकार की रोक से यह सवाल भी उठता है कि यदि एक फ़िल्म को 'व्यस्क' सर्टीफिकेट दे कर पास कर दिया गया है, उस पर रोक लगा कर क्या व्यस्कों के फ़िल्म देखने और जांचने के अधिकार पर हमला नहीं किया गया। 'फ़ायर' में ऐसा क्या है जिससे शिवसेना इतनी भयभीत है? और फ़िल्म में ऐसा आपत्तिजनक क्या है जो व्यस्क भारतीय नहीं देख सकते? उनका उन्माद उस विचारधारा से प्रेरित है जो विवाह और परिवार की समस्याओं का कड़ा समर्थन करती है। और इस व्यवस्था से हट कर अगर कुछ भी किया जाता है तो वह मान्य नहीं है। 'फ़ायर' फ़िल्म कुछ इसी प्रकार की कोशिश है, जिस वजह से भारतीय नैतिकता के ठेकेदार परेशान है।

नारी आन्दोलन ने कई दर्शकों से विवाह के अन्दर होने वाले औरत के शोषण को अनावृत करने की कोशिश की है। आमतौर से विवाह और परिवार औरत को सुरक्षा, पहचान और सम्मान प्रदान करने वाली संस्थाऐं होनी चाहिए। लेकिन फ़िल्म की कहानी परिवार में औरत के अकेलेपन और उपेक्षा को दर्शाती है। औरतों की दबी हुई यौनिकता से उत्पन्न पीड़ा शिवसेना के लिए चिन्ता का मुद्दा नहीं है। बल्कि स्त्री यौनिकता की वर्जना और उसका नियन्त्रण उनके लिए अति महत्वपूर्ण है। इसलिए, वैवाहिक सम्बन्धों में खालीपन का अनावरण करना, जिसमें स्त्री यौनिकता की खोज फ़िल्म का केन्द्र बिन्दु बन जाता है, ऐसी उथल-पुथल पैदा करता है जिसे संघ परिवार (Saffron Brigade) नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता था।

एक ऐसे समाज में जहाँ औरतों को बेड़ियों में बांध रखने की परम्परा रही हो वहाँ स्त्री यौनिकता की बदलती हुई धारणाओं के अनुरूप नारी-मुक्ति की बात करना हिन्दुत्ववादियों के लिए बड़ा ख़तरा है। शिवसेना के महिला दल महिला अघाड़ी की एक मुख्य नेता का कहना था कि "अगर औरतें औरतों के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखेगीं तो पुरुषोंका क्या होगा और प्रजनन का काम कौन करेगा।" (स्टेट्समेन, 4 दिसम्बर 1998) एक पितृसत्तात्मक और इतरलैंगिक प्रधान समाज में समलैंगिकता का होना शिवसेना के सोच के परे की बात है।

आधुनिक समाज के दबावों में शिवसेना ने भी औरतों को संगठित करने पर ध्यान दिया है। इस प्रकार औरतों को ही स्त्री-यौनिकता पर आधारित फ़िल्म के पोस्टरों को फाड़ने और शिवसेना की नैतिकता के संदेश को आगे बढ़ाने के लिए इकट्ठा किया गया। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि उन्होनें पीड़ितों को पीड़ितों के खिलाफ इस्तेमाल करने की सदियों पुरानी नीति को अपनाया है। वैसे तो कट्टरवादियों को औरतों की आर्थिक स्वाधीनता भी बर्दाशत नहीं होती। (जनसत्ता, 22 दिसम्बर 1998)। लेकिन इस प्रकार की छूट फिर भी पितृसत्ता की जकड़न को ख़तरा नहीं है क्योंकि मातृत्व का महिमामण्डन कर इस प्रकार का सन्तुलन बनाया जा सकता है जो कि औरतों को नियन्त्रण में रखने के लिए वैचारिक आधार बन जाता है।

मां की छवि को एक आदर्श और पवित्र छवि के रूप में प्रचारित करने से समाज में इसकी वजह से औरत के निम्न दर्जे को छुपा लिया जाता है। औरतों की यौनिक भूमिका को

**"इस अवसर पर हम प्रेस और जनता को यह बताना चाहेगें कि भारत में लैस्बियन रहते हैं। आज हम यहाँ है, हम भारतीय समाज का हमेशा से हिस्सा रहे है - पूरे भारत में पाए जाने वाले योगिनी मन्दिर और समलैंगिक कामुक मूर्तिकला इसके गवाह हैं और आने वाली शताब्दियों में भी औरतें औरतों के साथ प्यार करती रहेंगी। लैस्बियनिज़्म किसी एक संस्कृति, धर्म, समाज, वर्ग, भाषा समूह या क्षेत्र विशिष्ट नहीं है। लैस्बियनिज़्म उन सभी जगहों में विद्यमान है जहाँ औरतें होती हैं - पूरे विश्व में।"**

7 दिसम्बर 1998 को दिल्ली और मुम्बई के लैस्बियन समूहों द्वारा दिए गए प्रेस वक्तव्य से उद्धृत।

बच्चा पैदा करने तक सीमित कर दिया जाता है। एक कर्त्तव्य परायण पत्नी और आदर्श मां की छवि, विवाह के शोषणात्मक ढ़ांचे के अन्दर स्त्री-यौनिकता को नियन्त्रित करने का काम करती है और शादी के बाहर इसको अभिव्यक्त करने से वर्जित करती है। समलैंगिकता इस दृष्टिकोण को छिन्न-बिन्न कर देती है। प्रजनन से औरतों की मुक्ति ईश्वर-निन्दा के बराबर हो जाती है।

यह बेहतर होता अगर शिवसेना विवाह और परिवार के ढ़ांचों में छुपे पाखंडो से स्वंय को परिचित कराती। लेकिन ऐसा न होना मात्र एक भूल नहीं है, बल्कि औरतों के सवाल की ओर आखें मूंद कर रहना है। ऐसा इसलिए ज़रूरी है ताकि पुरुषप्रधानता और औरतों के दोयम दर्जे की विचारधारा को बनाए रखा जा सके। क्या नैतिक है और क्या आदर्श है वह इसी दृष्टिकोण से तय होता है। इसी पुरुष-प्रधान समाज में शिवसेना एक तरफ़ मासिकधर्म और गर्भधारण से जुड़ी अपवित्रता की धारणाओं को मज़बूत करती है और दूसरी तरफ़ कुँआरेपन, सतीत्व और पतिव्रत को शुचिता / पवित्रता के मापदण्डों के रूप में आगे बढ़ाती है। इस प्रकार के सामाजिक और नैतिक नियम बना, उन्हें स्त्री यौनिकता को नियन्त्रण के लिए स्तेमाल करना, हिन्दूवादी ताकतों के द्वारा परिकल्पित हिन्दू राष्ट्र में पितृसत्तात्मक अधिकारों को सुरक्षित करता है। यह नैतिकता के दोहरे मापदण्ड पुरुष-यौनिकता पर कोई प्रश्न नहीं उठाते। इस तरह की विचारधारा को बढ़ावा देने वाले निश्चय ही 'फ़ायर' जैसी फ़िल्म, जो कि समलैंगिक प्यार को स्वीकृति देती है, को बर्दाश्त नहीं कर सकते। शिवसेना को सार्वजनिक तौर पर इस वास्तविकता को स्वीकारना चाहिए कि शादी का मतलब हमेशा यौनिक सन्तुष्टि और ख़ुशी नहीं होता है।

प्रतिक्रिया में, समलैंगिक समूहों ने जनता का अपने असतित्व और ज़रूरतों की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। शादी की संस्था के बावजूद समलैंगिकता हमेशा से समाज में विद्यमान रही है, इस सच्चाई को पुरुष शावनवादी नकार नहीं सकते। बदलते हुए समाज पर इस प्रकार का हमला उस समय पर आया है जब कि महिला आन्दोलन के, परिवार, समाज और राज्य में व्याप्त पितृसत्तात्मक मूल्यों के ख़िलाफ कई दशकों के संघर्ष के परिणाम स्वरूप न केवल स्त्री जागरुकता बढ़ चुकी है, बल्कि सार्वजनिक तौर पर भी नारी मुक्ति के सवाल को प्रचार माध्यमों द्वारा ज़ोर-शोर से उठाया गया है।

## समलैंगिक अधिकारों के लिए अभियान

भारत में महिला समूहों ने औरतों की समानता के लिए संघर्ष में, पारिवारिक ढ़ांचें में, औरंतों द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को उठाया है। पारिवारिक हिंसा व दहेज-विरोधी, सती-विरोधी, लिंग-जांच और मादा-भ्रूण की हत्या-विरोधी, कुछ ऐसे अभियानों के उदाहरण है जो महिला समूहों द्वारा चलाए गए। इन सभी अभियानों से नारी आन्दोलन के द्वारा पारिवारिक ढांचे को चुनौती दी गई। परन्तु, एक मुद्दे के रूप में यौनिकता के सवाल को महत्व नहीं दिया गया और फलस्वरूप इस बारे में यदा-कदा ही बात हुई है। पिछले कुछ समय से नारी-आन्दोलन द्वारा इसके राष्ट्रीय सम्मेलनों में इस विषय को उठाया गया है। लेकिन समलैंगिकता के मुद्दे पर अभी भी चुप्पी का ही माहौल है।

शिवसेना के 'फ़ायर' फ़िल्म पर हमले ने समलैंगिकता के मुद्दे को सामने लाने में मदद की है। रीगल सिनेमा हाल के बाहर प्रदर्शन के बाद से कई व्यक्ति और संगठन इससे उठने वाले मुद्दों पर बहस करने और काम करने के लिए इक्ट्ठा हुए हैं। **इन व्यक्तियों और समूहों ने एक खुला संगठन बनाया है जिसका नाम है 'लैस्बियन अधिकारों के लिए अभियान'। इस अभियान के उद्देश्य हैं :**

१. समलैंगिकता को उजागर करना और इस भ्रान्ति को तोड़ना कि भारत में कोई समलैंगिक नहीं है।

२. समलैंगिकों के बारे में प्रचलित ग़लत धारणाओं और पूर्वाग्रहों को दूर करना।

३. समलैंगिकों के समानता, सुरक्षा, गरिमा और समाज में स्वीकृति के अधिकारों को समाज और राज्य द्वारा मान्यता दिलाना।

यह अभियान आने वाले वर्ष में जानकारी बाँटने और समलैंगिकता पर सार्वजनिक बहस चालू करने और जागरूकता फैलाने के

प्रयत्न करेगा। यह एक छोटी उपलब्धि नहीं है क्योंकि दिल्ली में यह इस प्रकार का पहला फ़ोरम है। इस मुद्दे को लेकर समाज के बड़े हिस्से में जो डर बैठा हुआ है उस का सामना करने की ज़रूरत है। 'फ़ायर' के सन्दर्भ में उठे विवाद की वजह से उन लोगों को धक्का पहुँच सकता है जो अपनी यौनिकता के सवाल पर कुछ फ़ैसले ले रहे हैं। लैस्बियन होने की अनुभूति इस बात से जुड़ी हुई है कि ऐसे में अभिव्यक्ति की बहुत अड़चने हैं। इस कारण से यह ज़रूरी है कि इस तरह की बहस के लिए भी जगह बनाई जाए। इसके अतिरिक्त यह बहस जनता तक ले जानी बहुत ज़रूरी है।

*17 जनवरी 1999 का सहेली ने एक आमसभा आयोजित की जिसका विषय था **फायर, समलैंगिकता और उससे जुड़े मुद्दे** । बहस 'समलैंगिक अधिकारों के लिए अभियान' के तीन सदस्यों ने छेड़ी। इस सभा मे 60 से अधिक लोगों नें भाग लिया जिसमें महिला समूहों के प्रतिनिधि, "गै" अधिकारो के लिए लड़ रहे संगठन, लोकतान्त्रिक और जनतान्त्रिक संगठन, विधार्थी और अन्य कई कार्यकर्ता भी शामिल थे। इस सभा में विभिन्न मुद्दों पर चर्चा हुई : फायर फ़िल्म, समाज में समलैंगिकता को मान्यता प्राप्त कराने की आवश्यक्ता, लेंस्बियनों द्वारा सही जाने वाली सामाजिक पीड़ाएँ, भारत व विदेश में लेंस्बियन आन्दोलन का इतिहास, समलैंगिकों का अकेलापन और इस मुद्दे को उठाने में महिला आंदोलन की भूमिका । इस बात पर भी काफ़ी चर्चा हुई कि जो कार्यकर्ता और संगठन अन्य अधिकारों के मुद्दे उठाते हैं, वे लैंगिक अल्पसंख्यकों के मुद्दों को उठाने और उन्हें समर्थन देने में क्यों हिचकिचाते हैं।*

'गे' और 'लैस्बियन' अधिकारों को मान्यता देना न केवल महिला आन्दोलन, बल्कि वाम और जन आन्दोलनों और सभी लोकतान्त्रिक ताकतों के लिए चुनौती है। सभी पीड़ित और अल्पसंख्यक वर्गों के लगातार संघर्ष से ही इस चुनौती का सामना किया जा सकता है। इस चुनौती का हिस्सा हिन्दुत्व की ताकतें भी हैं जिनके विरूद्ध सतत लड़ाई करनी होगी।

महिलाओं के दमन और शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष ने हमें अपने अधिकारों को परिभाषित करने की ताकत दी है। हम किस को चुनौती देते हैं और किस प्रकार के चुनाव करते हैं यह उस नए समाज की कल्पना से जुड़ा है जो वर्ग, जाति और पितृसत्ता के बन्धनों से मुक्त हो।

## 'अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता' को दबाने का इतिहास

**'फ़ायर' फ़िल्म पर पाबन्दी लगाने की शिवसेना की कोशिशें उसके गुण्डागर्दी के पिछले इतिहास को देखते हुए चौकाने वाली नहीं है। सत्तर के दशक की शुरुआत में शिवसेना ने मराठी नाटक 'घासीराम कोतवाल' के मंचन का विरोध किया था क्योंकि उनके अनुसार इस में मुख्य चरित्र नाना फड़नबीस का चित्रण विवादस्पद था। एक चालाक ब्राह्मण वज़ीर, एक पुरुष किसी औरत का यौनिक शोषण कर सकता है, लेकिन किसी नाटककार को उसके जीवन के इस 'काले' पहलू को दर्शाने का अधिकार नहीं है। सौभाग्यवश, शिवसेना के विरोध के बावजूद यह नाटक दिखाया जा सका।**

**पिछले वर्षों में हिन्दूवादी ताकतों ने एम०एफ० हुसैन के द्वारा बनाई गई हिन्दू देवी 'सरस्वती' की पुरानी पेन्टिग के बारे में विवाद खड़ा किया और हुसैन की कई कलाकृतियों को नष्ट कर दिया। हाल ही में शिवसेना अध्यक्ष बाल ठाकरे ने मुम्बई और बाकी भारत में पाकिस्तानी क्रिकेट खिलाड़ियों के आने पर रोक लगाई और यह भी धमकी दी कि अगर उनकी चेतावनी पर ग़ौर नहीं किया गया तो इसके गम्भीर परिणाम होगें।**

**मुस्लिम कट्टरवादियों द्वारा भी अभिव्यक्ति-स्वतंत्रता पर रोक लगाने के उदाहरण है। कुछ साल पहले, कांग्रेस पार्टी के शासन काल में सलमान रशदी की पुस्तक 'द सैटेनिक वरसिस' ;जैम ँजंदपब टमतेमेद्ध पर पाबन्दी लगाई गई।**

**इसी प्रकार नव-बौद्धवादियों के एक समूह ने धमकाया है कि डा० बाबा साहेब अम्बेडकर की आलोचना करते हुए कोई शोध या लेखन कार्य छपाया जाता है तो वे अपनी ताकत दिखाऐगें। सरकार भी इस धमकी के आगे झुक गई। हाल ही में मुम्बई में ऐसी ही ताकतें एक नाटक "मी नाथूराम गोड्से बोलतोए" पर पाबन्दी लगाने में सफ़ल हुई क्योंकि उनके अनुसार क़ातिल के पक्ष को दिखाकर यह नाटक महात्मा गाँधी की छवि को बिगाड़ रहा था।**

"अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता" किसी भी लोकतान्त्रिक समाज के मुख्य सिद्धान्तों में से एक है। लेकिन समाज के कई हिस्सों (वर्ग, जाति और धर्म पर आधारित) ने राजनैतिक स्वार्थों और फ़ायदों के लिए इसका मज़ाक बना दिया है। किसी अल्पमत के द्वारा किया कोई भी कार्य संस्कृति-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी क़रार दे दिया जाता है। इस लोकतान्त्रिक अधिकार के इस प्रकार के गलत इस्तेमाल को समाप्त करने के लिए हर एक कोशिश की जानी चाहिए।

## हमारे पाठकों से अपील

आपसे बेहतर सम्पर्क बनाए रखने और अपनी पतों को सूची का विस्तार करने के लिए, हम आपके विचार जानना चाहते हैं। निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हम तक पहुंचाने के लिए हम आपके आभारी होगें। कृप्या उपयुक्त उत्तर पर गोलाकार बनायें और विस्तार से कुछ कहने के लिए एक अन्य पृष्ठ का उपयोग करें। घन्यवाद।

1) क्या आप सहेली समाचार पत्रिका पाते है?..... हाँ / नहीं

2) क्या आप अपनी पत्रिका के बदले में हमारी पत्रिका पाते हैं?..... हाँ / नहीं

3) क्या आप इसके लिए सहयोग राशि देते हैं?..... हाँ / नहीं

4) अगर आप हमारी पत्रिका को नियमित रुप से नहीं ले रहे हैं, तो क्या आप लेना चाहेंगें ?..... हाँ / नहीं
यदि हाँ, तो अपना पूरा पता हमें लिख भेजिये

5) आप कितने समय से हमारी पत्रिका पढ़ रहे हैं?..... 1 साल / 2-5 साल / 5 से अधिक सालों से

6) आप हमारी इस पत्रिका को किस प्रकार आंकते हैं? ..... गहन गम्भीर अध्ययन के रूप में/हल्के-फुल्के पठन की तरह/
..... दिए हुए मामलों को सरसरी तौर पर देखने के ख़्याल से/
..... विषय-वस्तु की जानकारी के लिए / अन्य - बताएं

7) आपकी प्रति के कितने पाठक हैं?..... आप अकेले / 2-5 के बीच में / 5 से अधिक

8) ये पाठक कोन हैं?..... महिलायें / पुरूष / कार्यकर्ता / संस्था के सदस्य / परिवार / अन्य - बताएं

9) क्या आपको हमारी पत्रिका की विषय-वस्तु और प्रस्तुति पसन्द है..... हाँ / नहीं

10)यदि नही, तो आप इसमें क्या परिवर्तन चाहेंगे? ..... विषय वस्तु /-विषयों का चयन / लिखने का ढंग / अन्य - बताएं

11)क्या पत्रिका के लेख और रिपोर्ट आपके मन में प्रश्न उठाते हैं? ..... हाँ / नहीं / कभी-कभी /
..... आप ये अपेक्षा ही नहीं करते

12)क्या पत्रिका में उठाए गई मुद्दों पर कोई बहस होती है? ..... हाँ / नहीं

13)क्या आप पत्रिका में पाठको की हिस्सेदारी चाहतें हैं? ..... हाँ / नहीं / आवश्यक नहीं है

14)क्या पत्रिका बहुत गम्भीर या संजीदा / उपदेशात्मक है? ..... हाँ / नहीं

15)क्या आप सहेली द्वारा प्रकाशित अन्य रिपोर्ट लेना चाहते हैं? ..... हाँ / नहीं

## सहेली के प्रकाशन

| नाम | प्रकाशन वर्ष | सहयोग राशि * |
|---|---|---|
| 1. एक और व्यावसायिक जोख़िम : यौन उत्पीड़न और कामकाजी महिला (अंग्रेजी और हिन्दी में) | 1999 | रु० 15/- ( विद्यार्थी: रु० 10/-) |
| 2. Target Practice | 1998 | रु० 25/- |
| 3. Quinacrine: The sordid story of chemical sterilisations of women | 1996 | रु० 30/- |
| 4. नारी मुक्ति की ओर: सहेली लेख (अंग्रेजी और हिन्दी में) | 1995 | रु० 25/- |
| 5. आपस की बातें : गर्भ नियंत्रण, सुरक्षा और हमारा स्वास्थ्य | 1990 | रु० 25/- |
| 6. सहेली लेख (अंग्रेजी और हिन्दी में) | 1988 | रु० 15/- |
| 7. सहेली : पहले चार वर्ष | 1985 | रु० 5/- |
| 8. समाचार पत्रिकाए (अंग्रेजी और हिन्दी में) | अन्य | प्रति रु० 5/- |

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय महिला आन्दोलनों के प्रथम उत्तर क्षेत्रीय सम्मेलन (कानपुर, 1993) की रिपोर्ट भी हमारे पास उपलब्ध हैं ..... रु० 5/-

*( * दी गई सहयोग राशि केवल हिन्दी प्रकाशनों के लिए है । दिल्ली से बाहर के लिए प्रत्येक रिपोर्ट के साथ रु० 8/- और प्रत्येक समाचार पत्रिका के साथ रु० 2/- अतिरिक्त डाक ख़र्च हेतु भेजें। विदेश के लिए, हमसे सम्पर्क करें।)*